दंसण-परिक्खा

(दर्शन-परीक्षा)

मंगल आशीर्वाद :

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती
श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी
मुनिराज

ग्रन्थकार :

आचार्य वसुनंदी मुनि

ग्रन्थ	:	दंसण-परिक्खा (दर्शन परीक्षा)
मंगल आशीर्वाद	:	प.पू. सिद्धान्त चक्रवर्ती, श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज
ग्रन्थकार	:	प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज
सम्पादन	:	आर्यिका वर्धस्व नंदिनी
संस्करण	:	प्रथम (सन् 2025)
प्रतियाँ	:	1000
ISBN	:	**978-93-94199-52-1**
मूल्य	:	115/- (Not for Sale)
प्रकाशक	:	निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)
प्राप्ति स्थल	:	निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति कार्यालय मो. 9971548889, 8800091252
मुद्रक	:	मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

सम्पादकीय

सम्यगेतत्सुधाम्भोधे-र्बिन्दुमप्यालिहन्मुहुः।
जन्तुर्न जायते जातु जन्मज्वलन-भाजनः॥

—(यशस्तिलक चम्पू, 642)

जो प्राणी जिनवाणी रूपी सुधासागर की एक बूँद का भी बार-बार आस्वादन करता है वह कभी संसाररूपी अग्नि का पात्र नहीं होता।

महाव्यसनसप्तार्चिः प्रदीप्ते जन्मकानने।
अमृताय मया प्राप्तं सम्यग्ज्ञानाम्बुधेस्तटम्॥

—(ज्ञानार्णव, 1643)

महादु:खरूपी अग्नि से जलते हुए संसार रूप वन में मैंने मोक्ष रूपी जल के लिए सम्यग्ज्ञानरूपी समुद्र का तट प्राप्त किया है।

प्रस्तावना—ज्ञान का सागर विशाल है परन्तु उसका पान तभी सार्थक है जब वह जीवन को दिशा दे। मात्र तर्क व वादविवादों की शब्दमाला आत्मा को शुद्ध नहीं कर सकते, वे आत्मा की मुक्ति का साधन नहीं हो सकते। उसके लिए आवश्यक है एक ऐसी दृष्टि जो सम्यक् हो, समग्र हो और साधना से जुड़ी हो। ''**दर्शन-परीक्षा**'' इसी आदर्श का मूर्त स्वरूप है। यह ग्रन्थ मात्र सिद्धान्तों का सञ्चय नहीं, अपितु एक विचार-सभा है, जहाँ प्रत्येक दर्शन अपनी वाणी रखता है, प्रत्येक मत अपने प्रमाण और तर्क को प्रस्तुत करता है और आचार्य भगवन् की निष्पक्ष दृष्टि उन सबको परखती है।

यह ग्रन्थ एक न्यायपीठ है–जहाँ सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, वेदान्त, चार्वाक और बौद्ध–सभी मत अपनी–अपनी व्याख्या के साथ उपस्थित हैं। आचार्य भगवन् ने उन्हें सुना भी, समझा भी और फिर जैन दृष्टि की कसौटी पर उन्हें परखा भी। आचार्यश्री की वाणी केवल तर्क का कौशल नहीं बल्कि आत्मानुभव की गहराई से निकला आलोक है।

विचार की अनन्त यात्रा–मानवता का इतिहास केवल घटनाओं का इतिहास नहीं बल्कि विचारों का इतिहास भी है। सभ्यता की प्रत्येक लहर के पीछे यह जिज्ञासा रही है–"जीवन का मूल क्या है? मेरा स्वरूप क्या है? मैं कौन हूँ? जगत् का स्वरूप क्या है? और सत्य का अन्तिम प्रकाश कहाँ है।"

भारतभूमि विशेष रूप से इस अनन्त जिज्ञासा की प्रयोगशाला रही है। यहाँ सहस्त्रों वर्षों से ऋषियों और मुनियों ने मनन, ध्यान और तपस्या के माध्यम से सत्य का अन्वेषण किया। वेदों के मंत्रों से लेकर उपनिषदों की गूढ़ वाणी तक, गीता के संदेश से लेकर सूत्रग्रन्थों की तर्क प्रणालियों तक–यह भूमि एक विराट बौद्धिक परम्परा से ओतप्रोत रही है।

इसी परम्परा की अनमोल कड़ी है–षट्दर्शन–सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा और वेदांत। इनके साथ चार्वाक का लोकायत और बौद्ध का शून्यवाद भी भारतीय चिन्तन की विविधता का अंग बने ।

एकांगी दृष्टियाँ और उनकी सीमाएँ—प्रत्येक दर्शन ने अपने समय और परिस्थिति के अनुरूप सत्य को व्याख्यायित किया। सांख्य ने प्रकृति-पुरुष द्वैत पर बल दिया। योग ने समाधि और अनुशासन को मोक्ष का साधन माना। वैशेषिक ने परमाणु और पदार्थों के वर्गीकरण में जगत को समझाया। न्याय ने तर्क और अनुमान को ज्ञान का आधार ठहराया। मीमांसा ने वेद और यजकार्य को सर्वोच्च साधन माना। वेदांत ने ब्रह्मा को अद्वितीय सत्य और जगत को मिथ्या घोषित किया। चार्वाक ने भौतिक सुखवाद को धर्म का लक्ष्य ठहराया। बौद्ध ने क्षणिकता और शून्यता में जीवन का सार देखा।

ये सब दृष्टियाँ निःसन्देह अपनी गहराई और तार्किकता में अद्वितीय हैं। किन्तु प्रत्येक में एकांगी आग्रह है—किसी ने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया, किसी ने जगत् को मिथ्या कहा, किसी ने केवल अनित्य को देखा और किसी ने केवल दस ब्रह्म को। इसलिए पूर्ण सत्य का दर्शन इनसे सम्भव नहीं हुआ

अनेकान्त का आलोक—इन्हीं विविध मतों के बीच जैन दर्शन अपनी अनेकान्तवादी दृष्टि के साथ खड़ा हुआ है। जैन दर्शन का कथन है कि सत्य केवल एकांगी नहीं अपितु बहुपक्षीय है। और किसी का कथन तभी पूर्ण हो सकता है जब वह अन्य दृष्टियों के साथ समन्वय करे। किसी भी मत का कथन एक सीमा तक सत्य हो सकता है किन्तु सम्पूर्ण नहीं।

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः।।98।। स्व. स्तो.

हे प्रभु! आपकी अनेकान्त दृष्टि सच्ची है। इसके विपरीत जो एकान्त मत है वह शून्यरूप असत् है, अतः जो कथन अनेकान्त दृष्टि से रहित है, वह सब मिथ्या है।

जह सद्धाणमाई सम्मत्तं जह तवाइगुणणिलए।
धाओ वा एयरसो तह णयमूलं अणेयंतो।।176।। न.च.वृ.

जिस प्रकार तप, ध्यानादि गुणों में, श्रद्धान, सम्यक्त्व, ध्येयादि एक रस रूप से रहते हैं, उसी प्रकार नयमूलक अनेकान्त होता है अर्थात् अनेकान्त में सर्वनय (सर्व एकान्त) एक रस रूप से रहते हैं। अनेकान्त का यह आलोक न केवल दार्शनिक विवादों को सन्तुलित करता है बल्कि व्यवहार में भी हमें सहिष्णुता, करुणा और अहिंसा का मार्ग दिखाता है।

'दर्शन परीक्षा' ग्रन्थ की विशिष्टता–इसी आलोक में परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज कृत ''दंसण परिक्खा'' अद्वितीय है।

यह ग्रन्थ षट्दर्शन का विवेचन करता है, इनके प्रमाण, तत्त्व और मीमांसा का निरूपण करता है और जैन दृष्टि से इन सबका युक्तिसङ्गत खण्डन करता है एवं जैनदर्शन के अनुसार सबकी समीक्षा करता है।

यहाँ दर्शन का स्वरूप केवल ''मत-मतान्तर का विवरण'' नहीं, बल्कि ''सत्य की परीक्षा'' है। आचार्य गुरुवर ने

इस ग्रन्थ में केवल विद्वानों को सन्तुष्ट करने हेतु नहीं बल्कि साधकों और जिज्ञासुओं को प्रेरित करने हेतु लेखनी चलाई है। उनकी शैली में प्राकृत की सहजता, साधना की तेजस्विता और ज्ञान की गरिमा—तीनों का सङ्गम है।

ग्रन्थकार का गौरव—परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी मुनिराज की निर्मल परम्परा में सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्र सन्त आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज के सुयोग्य शिष्य 'परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृतभाषा चक्रवर्ती, महाकवि आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज' का योगदान जैन साहित्य को ही नहीं अपितु विश्व साहित्य को भी अमूल्य और अनुपम है। आचार्यश्री की लेखनी से जहाँ सिद्धान्तादि ग्रन्थ प्रसूत हुए, वहीं अष्टाङ्ग योग, राष्ट्र शान्ति महायज्ञ, आत्मनिर्भर भारत, विश्व धर्म, आर्यसंस्कृति जैसे सार्वभौमिक ग्रन्थ भी मानवजाति को प्राप्त हुए। इनके द्वारा लिखित शताधिक प्राकृत ग्रन्थ जैन आगमों के मोती, साहित्य के रत्न और संस्कृति के आधारस्तम्भ हैं।

आचार्यश्री की विद्वत्ता केवल शास्त्रों के पृष्ठों तक सीमित नहीं है बल्कि वह हृदय में नवऊर्जा का प्रवाह करती है, संस्कृति को संजीवनी देती है और आध्यात्म को नया आयाम प्रदान करती है। आचार्यश्री की वाणी ऋषि-मुनियों की गाथाओं जैसी, लेखनी गङ्गाजल की धारा जैसी, साधना हिमालय की शीतलता जैसी और आशीर्वचन कल्पवृक्ष की छाया जैसा है।

आचार्यश्री के द्वारा लिखित प्रत्येक प्राकृत ग्रन्थ एक प्रकाश-स्तम्भ है, जो अज्ञान के अन्धकार को दूर कर

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का मार्ग प्रदर्शित करता है। जैसे आकाश में सितारों की संख्या अनन्त होती है वैसे ही आचार्यश्री के ग्रन्थ ज्ञानलोक को आलोकित करते हुए इस इस विश्व के लिए अमर धरोहर बन गए हैं।

आचार्यश्री वसुनन्दी जी मुनिराज की इस अमूल्य देन के लिए सदियाँ सदैव उनकी ऋणी रहेंगी।

''समकालीन सन्दर्भ''–आज के समय में, जब विचारधाराएँ सङ्घर्ष और असहिष्णुता में उलझ रही हैं, जब मनुष्य ज्ञानदर्भ से अपने मत को ही अन्तिम मानकर दूसरों को अस्वीकार करता है, तब दर्शनों की परीक्षा करने वाला ''दर्शन–परीक्षा'' नामक यह ग्रन्थ अनेकान्त से एकान्त पक्षों का खण्डन करते हुए अन्तिम निष्कर्ष देता है। उसका निष्कर्ष 'अनेकान्त धर्म ही जयवन्त है', एक दिव्य उद्घोष की भाँति गूँजता है।

निष्कर्ष–इस प्रकार **''दर्शन–परीक्षा''** ग्रन्थ भारतीय दर्शन की सम्पूर्ण परम्परा का दर्पण है और साथ ही अनेकान्तवाद की विजय का उद्घोष भी। आचार्यश्री ने ग्रन्थ में प्रतिपादित भी किया है–

चक्केगेण जह जयदि बत्तीससहस्स भूवदी चक्की।
सुरिंदो देव संखा सासेदि तह अणेगंतो वि॥1020॥

जैसे एक चक्रवर्ती एक चक्र से बत्तीस हजार राजाओं को जीतता है एवं सौधर्मेन्द्र असंख्यात देवों पर शासन करता है, उसी प्रकार एक अनेकान्त भी अनेक एकान्तों को जीतता है एवं एकांतों पर शासन करता है।

अणेगंत-बलवंतो, तेण सह सव्व कहणं अविरुद्धं।
अणेगंतेणं विणा, सव्व कहणं तहा विरुद्धं।।1016।।

अनेकान्त बलवान है। उस अनेकान्त के साथ सर्व कथन अविरुद्ध होते हैं और अनेकान्त के बिना सर्व कथन विरुद्ध हो जाता है।

यह ग्रन्थ विद्वानों के लिए अध्ययन व सुचिन्तन के सूत्रों का खजाना है, साधकों के लिए साधना का पथप्रदर्शक और जिज्ञासुओं के लिए जीवन का मार्गदर्शन है।

निश्चय ही यह ग्रन्थ जैन साहित्य की अमूल्य निधि है और भारतीय दर्शन के इतिहास में एक स्थायी मील का पत्थर रहेगा।

यह 'दर्शन-परीक्षा' केवल दार्शनिक अध्ययन का ग्रन्थ नहीं बल्कि साधना और जीवन-दर्शन का दीपक है। यह शास्त्रीय कसौटी पर भी अमूल्य है और साधक के हृदय में प्रेरणा का स्रोत भी है।

परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा प्रस्तुत ग्रंथ **'दंसण-परिक्खा'** (दर्शन परीक्षा) 1044 गाथाओं में निबद्ध है। इस ग्रंथ के संपादन का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है; इसके लिए हम पूज्य गुरुदेव के सदैव कृतज्ञ रहेंगे। यद्यपि हममें ग्रंथ संपादन की योग्यता व साहस तो नहीं फिर भी सूर्य की चमक पाकर काँच भी वज्र सम दमक उठते हैं। हम कथंचित् जो कुछ भी कर पाए हैं वह सब गुरुकृपा का प्रतिफल ही है।

आचार्य गुरुवर की अविच्छिन्न लेखनी उनकी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगिता को प्रमाणित करती है। सिद्धान्त आदि के कठिन विषयों पर वा बहुजनोपयोगी सामान्य विषयों पर उनकी लेखनी सदैव प्रवर्तमान रहती है। यह समाज, देश, वा राष्ट्र युगों-युगों तक भी उनके द्वारा प्रदान किए गए श्रुत को विस्मृत न कर सकेगा एवं शताब्दियाँ उनके प्रति अपना कृतज्ञ भाव अवश्य व्यक्त करेंगी।

प्रस्तुत ग्रंथ **'दंसण-परिक्खा'** (दर्शन-परीक्षा) के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन-जन के श्रद्धापुंज परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुवर के संयम, तप, ज्ञान व साधना की सुरभि सहस्रों वर्षों तक विश्व को सुरभित करती रहे। गुरुवरश्री को आरोग्य लाभ हो एवं अपने लक्ष्य को वे शीघ्र प्राप्त करें।

परमपूज्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित योगत्रय की शुद्धि पूर्वक कोटिशः नमोस्तु.... नमोस्तु.... नमोस्तु....

जैनम् जयतु शासनम् विश्व-कल्याण-कारकम्

श्री शुभमिति अश्विन शुक्ल एकादशी
वीर निर्वाण संवत् 2551
शुक्रवार, 3 अक्टूबर 2025
श्री अतिशयक्षेत्र अहिच्छत्र **–आर्यिका वर्धस्व नंदनी**

दो शब्द

"दंसण-परिक्खा" ग्रन्थ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनन्दी जी द्वारा प्राकृत भाषा में लिखित दर्शन विषयक उच्चकोटि का ग्रन्थ है। जैन वाङ्मय में दर्शन विषयक आचार्य समन्तभद्र, आचार्य अकलंक देव, आचार्य सिद्धसेन, आचार्य विद्यानन्द, आचार्य वादिराज, आचार्य प्रभाचन्द्र एवं आचार्य हरिभद्र आदि के द्वारा लिखित संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थ हैं किन्तु समस्त भारतीय दर्शनों का समीक्षापूर्वक विवेचन करने वाला प्राकृत भाषा में लिखित यह प्रथम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में 1044 गाथाओं के माध्यम से चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन, न्यायदर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, योगदर्शन, मीमांसा दर्शन और वेदान्त दर्शन के दार्शनिक सिद्धान्तों का विस्तार से विवेचन करते हुए जैनदर्शन के प्रमाण, नय, भाव, कर्मवाद, अनेकान्त, स्याद्वाद, सप्तभङ्गी आदि का विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस एक मात्र ग्रन्थ से सभी भारतीय दर्शनों एवं जैनदार्शनिक सिद्धान्तों का ज्ञान किया जा सकता है।

किसी वस्तु, मान्यता या अवधारणा का सही-सही ज्ञान करना आवश्यक है, सही ज्ञान करने के लिए जिस विधा का भारतीय परम्परा में विकास हुआ उसे दर्शन विद्या कहा जाता है।

इसको न्याय विद्या, तर्क विद्या, अन्वीक्षा, दृष्टि, युक्ति, परीक्षा, विचार आदि अनेक नामों से जाना जाता है।

दर्शन विद्या के द्वारा संशय एवं विपर्यय से रहित वस्तु स्वरूप का सही सान करने की कला सीखी जाती है। दर्शन हमारी बुद्धि को अनेक प्रकार से निर्मल बनाता है। इससे हम सत्य-असत्य का सही निर्णय कर सकते हैं। दर्शन विद्या पक्षपात, अन्धविश्वास, पूर्वाग्रह आदि दोषों से मुक्त करने वाली है तथा शान्ति, धैर्य, युक्ति, प्रमाणावलंबन आदि सद्‌गुणों से युक्त बनाती है। आचार्य सोमदेव ने इस विद्या को अध्यात्म विषय की प्रयोजन भूत विद्या कहा है। **'आन्वीक्षिक्यध्यात्मविषये'** (नीतिवाक्यामृत 5/63)।

दंसण परीक्षा ग्रन्थ में कहा है–

दंसणं णाणरुक्खं, सिद्धंतमूलं तच्चमीमंसा।
खंधो साहा पमाण-मीमंसा अण्णुवसाहा व॥

दर्शन ज्ञानका वह वृक्ष है जिसकी जड़ें सिद्धान्त हैं, तत्त्वमीमांसा जिसका तना है, प्रमाण-मीमांसा जिसकी शाखा है एवं अन्य मीमांसा, तर्क शास्त्रादि उपशाखा के समान हैं।

परीक्षा की परिभाषा लिखते हुए श्री अभिनव धर्म भूषण यति ने कहा है–**'विरुद्ध नाना-युक्ति-प्रावल्य-दौर्बल्याव-धारणाय प्रवर्तमानो विचारः परीक्षा'** अर्थात् विरोधी अनेक युक्तियों की प्रबलता और दुर्बलता का निर्णय करने के लिए प्रवृत्त हुए विचार को परीक्षा कहते हैं। परीक्षा का महत्त्व और आवश्यकता बताते हुए आचार्य यतिवृषभ कहते हैं–

जो ण पमाणणएहिं णिक्खेवेण णिरिक्खदे अट्ठं।
तस्साजुत्तं जुत्तं, जुत्तमजुत्तं च पडिहादि॥

–(तिलोयपण्णति 1/182)

अर्थात् जो जीव प्रमाण, नय, निक्षेपों के द्वारा अर्थ की परीक्षा नहीं करता है उसे अयुक्त भी युक्त और युक्त भी अयुक्त की तरह प्रतिभासित होता है। आचार्य अमितगति ने कहा है–

लक्ष्मीं विधातुं सकलां समर्थं सुदुर्लभं विश्वजनीनमेनं।
परीक्ष्य गृह्णन्ति विचारदक्षाः सुवर्णवद् वंचन भीतचित्ताः।।

–(अमितगति श्रावकाचार 1/29)

अर्थात विचारवान पुरुष तो सर्व समर्थ लक्ष्मी प्रदान करने वाले धर्म को ठगाये जाने के भय से स्वर्ण की भाँति परीक्षा करके ही ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार आचार्य हरिभद्र ने कहा है–मुझे महावीर से कोई पक्षपात नहीं है और कपिलादि से कोई द्वेष नहीं है, परन्तु जिसके वचन युक्तिसंगत हों उसी का ग्रहण करना चाहिए। –(लोक तत्त्वनिर्णय 1/38)

इस प्रकार सभी प्रकार के पक्षपात से रहित आत्मकल्याण में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना करने वाले आचार्य श्री के चरण कमलों में बारम्बार नमोस्तु।

–डॉ. अनिल कुमार जैन
प्राचार्य–श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
सांगानेर, जयपुर

प्राक् प्रमेय

सर्वतंत्र स्वतंत्र, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, कविसम्राट आचार्य कल्प श्री वसुनन्दी जी महाराज ने जैनविद्या की विभिन्न विधाओं पर प्राकृत भाषा में अनेक मौलिक काव्य ग्रन्थों की रचनाएं कर भारतीय साहित्य श्रृंखला में महनीय योगदान किया हैं। जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करने के मार्ग पर चलने वाले सन्तों की परम्परा में अग्रगण्य आचार्यश्री ने अन्तश्चेतना से यह अनुभव किया कि मानव विविध संघर्षों, विविधताओं, विषमताओं, मतवादों, दुराग्रहों आदि में उलझकर सम्यक् मार्ग से दूर होता जाता है। उन्हें यदि वस्तु के विविध स्वरूपों और उनके अभिव्यक्त करने की विधियों का ज्ञान करा दिया जाये तो वे उन द्वंद्वों से मुक्त हो सकते हैं।

स्वाभाविक प्रवृत्तियों के विरोध के कारण विभिन्न विचारधाराओं को सैद्धान्तिक मतभेदों की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। जीव, जगत्, लोक परलोक, सुख, दुख आदि विषयक विश्व के मनीषियों के प्रारम्भिक चिन्तन में अनेक विविधताएं दृष्टिगोचर होती हैं। बाद में उन्हीं वैचारिक मतभिन्नताओं ने स्वतंत्र सैद्धान्तिक स्वरूप ग्रहण कर लिये, जिन्हें विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के रूप में पहचाना गया। जैनदर्शन के अनुसार सभी दार्शनिक सम्प्रदायों के मत सापेक्ष दृष्टि से सत्य हैं। यह सत्यता कैसे और किस विधि से स्थापित हो सकती है **'दंसण-परिक्खा'** नामक काव्यकृति में मधुर भाषा में स्पष्ट किया गया है।

सामान्य रूप से साहित्य उच्च-भावों का वाहक और उदात्त भावों का जागृत करने वाला होता है। इन भावों के साथ दार्शनिक काव्य साहित्य में ज्ञान और वैराग्य विशिष्ट युक्तियों का समाहार होता है। सद्साहित्य के गुणों की पुंजीभूत इस कृति में कवि की संयम और तप की अनुभूति ने जैन दार्शनिक सिद्धान्तों की जो अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है, वह कविहृदय की विशालता और गम्भीरता का द्योतक है। दुराग्रह या एकान्त दूसरों के लिए इष्ट नहीं होते। प्रायः यह देखा गया है कि दुराग्रही दूसरों के सम्यक् विचार को भी नही स्वीकारते। कुछ भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के विवेचक भी इससे अछूते नहीं हैं। जन भाषा प्राकृत में आचार्यश्री ने अपनी कृति में यौक्तिक ढंग से अनेक दुराग्रहों की परीक्षा कर उन्हें तर्कसंगत स्वरूप प्रदान कर इष्ट और उपयोगी बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। जहां जैनेतर भारतीय दर्शनों में स्व मत से इतर मतों की आलोचना पूर्वक अपने पक्ष को ही सम्यक् सिद्ध किया गया है, वहां जैनदर्शन का यह वैशिष्ट्य है कि एकान्त को भी सम्यक् बनाने की रीति बताकर सापेक्ष दृष्टि से उन्हें भी स्वीकार किया गया है। **'दंसण-परिक्खा'** कृति में एकान्तमतों के समाधान मूलक अनेकान्त, प्रमाण, नय, सप्तभंगी, निक्षेप, स्याद्वाद आदि सभी जैन सिद्वान्तों को भी कवि द्वारा स्पष्ट किया गया है।

आचार्यश्री ने विभिन्न भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं को षड्दर्शनों के रूप में विभाजित किये बिना उनकी परीक्षा/समीक्षा की है क्योंकि दार्शनिक सम्प्रदायों के छह

विभाजन के आधार, विपश्चितों में मतभिन्नता के विषय रहे हैं। आचार्यश्री के अनुसार जो मनुष्य आत्मा, परमात्मा, मोक्ष आदि तत्त्वों में, जन्म-मरण, पुण्य-पाप, संसार परिभ्रमण व कर्मों के फलादि में सदैव विश्वास रखते हैं, वे आस्तिक माने जाते हैं, ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानने मात्र से कोई आस्तिक नहीं हो जाता। **'दंसण परिक्खा'** दार्शनिक काव्य कृति में भारतीय काव्यकर्म विधा के अनुसार कवि द्वारा मंगलाचरण के पश्चात् प्रारम्भ में ही अनुबन्ध-चतुष्टय को स्पष्ट किया गया है। उन अनुबन्धों में ग्रन्थ का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए आचार्य श्री लिखते हैं कि जिस प्रकार सुवर्ण की परीक्षा के विना कोई उसे स्वीकार नहीं करता, उसी प्रकार विभिन्न मतों के परीक्षण के विना उनकी समीचीनता-अविरुद्ध होने का भी ज्ञान नहीं हो सकता। परीक्षापूर्वक जिन विचारधाराओं में कही विरोध उपस्थित न हो वही इष्ट के रूप में स्वीकार्य करने योग्य हैं। परीक्षा के इस क्रम में कवि द्वारा प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक मतों की सरस और मधुर काव्यशैली में पाण्डित्यपूर्ण परीक्षा प्रस्तुत कर सापेक्ष दृष्टि से उन मतों का जैनदर्शन के अनुसार समाधान प्रस्तुत किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं-चार्वाक दर्शन, वैशेषिक दर्शन, न्याय दर्शन, मीमांसा दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वेदान्त दर्शन, रामानुज, निम्बार्क, मध्वाचार्य, वल्लभवेदान्त, बौद्ध दर्शन आदि प्रमुख हैं। आचार्यश्री ने स्पष्ट किया है कि अपने मूल स्वरूप में वस्तु यथारूप है। दृष्टिभेद से वह मिथ्या व सम्यक् बन जाती है। जैनदर्शन में वस्तु अनेकान्तात्मक है। वस्तु का

अनेकान्तात्मक समग्र स्वरूप का कथन एक साथ नहीं हो सकता, इसलिए स्याद्वाद, नय और सप्तभंगी की उद्भावना की गई। परन्तु विरोधियों द्वारा इन सिद्धान्तों के प्रति हमेशा अटकलें लगाई जाती रहीं हैं। उनका मानना है कि वस्तु में अनेक धर्म नहीं हो सकते। अनेक समीक्षक विद्वानों द्वारा स्याद्वाद का अर्थ शायद या सम्भव किया जाता है। सम्भवतः यह भ्रम की स्थिति शब्दों का ठीक से अर्थ न समझने और सिद्धान्तों का सतही अध्ययन करने से उत्पन्न हुई होगी।

जैनाचार्यों द्वारा अपने ग्रन्थों में इसका सटीक समाधान प्रस्तुत किया गया है। वस्तु के समग्र स्वरूप में नय ज्ञाता के अभिप्राय के अनुसार विवक्षित अभिप्राय को अभिव्यक्त करता है। इसमें प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिससे अविवक्षित धर्मों का निषेध न हो। इस तरह विवक्षा के अनुसार वस्तु के एक देश का सापेक्ष कथन करने वाला नय कहलाता है। वस्तु के एक देश का सापेक्ष यह एकान्तिक कथन सम्यक् होता है और निरपेक्ष कथन मिथ्या माना जाता है। भ्रान्तियों के कारण एकान्तवादी यह आक्षेप करते हैं कि जब निरपेक्ष एकान्त दृष्टियां मिथ्या हैं तब इन एकान्तों का समूह अनेकान्त भी मिथ्या एकान्तों का समूह हुआ। इसलिए अनेकान्त भी मिथ्या है। प्रायः अनेकान्त के विषय में यह भी कहा जाता है कि यह एकान्तवादों का समन्वय है। आचार्य समन्तभद्र का अनुकरण करते हुए आचार्य वसुनन्दी जी महाराज ने लिखा है कि मिथ्याधर्मों का समूह मिथ्या ही है, ऐसा एकान्तवादियों का कथन ठीक नहीं है क्योंकि स्याद्वादियों

के मत में मिथ्यैकान्तता नहीं है। निरपेक्ष नय मिथ्या होते हैं। नय परस्पर सापेक्ष होकर ही अर्थक्रियाकारी हैं।

अनेकान्तवादियों के मत में एक धर्म दूसरे धर्मों का निराकरण नहीं करता अपितु प्रयोजन के अनुसार उनकी उपेक्षा कर देता है। ऐसे धर्मों का समुदाय सम्यक् है। जो दूसरे धर्मों का निराकरण करता है, वह मिथ्या है, ऐसा मिथ्या एकान्तों का समूह बनता ही नहीं है। यदि यह कहा जाये कि बन जाता है तब इसका तात्पर्य यही हुआ कि उन मिथ्या एकान्तों ने दूसरे एकान्तों को भी स्वीकार कर लिया है। इसी कारण उनका समूह बना है अन्यथा वे निरपेक्ष ही रहते। जो समन्वय को अनेकान्त मानते हैं, यदि वे समन्वय का अर्थ यह करते हैं कि सभी एकान्तों का समूह एक दूसरी की सत्ता को सापेक्ष रूप में स्वीकार करते हुए साथ हैं, तब तो वह अनेकान्त ही है। यदि मिथ्या-एकान्तों की निरपेक्ष रूप में अवस्थिति को समन्वय माना जाता है तो वह मिथ्या है। उदाहरण के लिए धागों का समूह रस्सी बनकर शक्ति की पूर्णता-वस्तु की क्रियाकारिता सूचित करती है, वे धागे सापेक्षिक समूह में एक दूसरे से मिले हुए धागे या धागों का समन्वय नहीं कहलाते, अपितु रज्जु कहलाता है, परन्तु स्वतन्त्र निरपेक्ष धागे अपूर्णता को सूचित करते हैं, भले ही वे पास पास ही क्यों न रखे हों, वे धागे ही कहलायेंगे। उसी तरह मिथ्या-एकान्तों का समूह अनेकान्त कहा जाता है। एकान्तों का समन्वय कहने से एकान्तों का निरपेक्ष स्वतन्त्र अस्तित्व द्योतित होता है। जैनदर्शन में समस्त एकान्तों (मिथ्यात्वों) की संगठित सापेक्ष व्यवस्था सम्यक्

है, जिसे अनेकान्त कहते हैं, एकान्तों का निरपेक्ष समूह या समन्वय नहीं। जैसे समस्त नदियां समुद्र में जाकर मिलती हैं, वैसे ही सम्पूर्ण दृष्टियां अनेकान्त शासन में समाविष्ट हो जाती हैं। तात्पर्य यह कि समस्त एकान्त (मिथ्या) दृष्टियां मिलकर सम्यक् हो जाती हैं, मिथ्या समूह का अस्तित्व नहीं रहता। सम्यक् दृष्टि भी कभी एकान्त दृष्टि होने पर मिथ्या बन जाती है। वस्तुतः यह सब परिवर्तन दृष्टिभेद का है, वस्तुभेद का नहीं।

इस तरह परमपूज्य आचार्य वसुनन्दि जी महाराज ने **'दंसण-परिक्खा'** नामक प्राकृत काव्य कृति लिखकर यह सन्देश दिया है कि मानव को एकान्तिक विवादों में न पड़कर उसके युक्तियुक्त समाधान की दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब सभी विरोधी मतों की सत्ता को सापेक्ष दृष्टि से स्वीकार किया जाये। भाषा, भाव विन्यास की दृष्टि से कृति सर्वोत्तम है। लघुकृति होने पर भी कवि ने मानों उसमें गागर में सागर भर दिया है। संक्षेप में भारतीय दर्शनों के मन्तव्यों और जैनदर्शन के हार्द्र को समझने के लिए प्रस्तुत कृति अत्यन्त उपादेय है।

स्थान : टीकमगढ़ **–डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन,**
दिनांक : 21 जुलाई, 2025 से. नि. प्राचार्य
मो. 9810792587

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृ.सं.
1	मङ्गलाचरण	1–5	1
2	ग्रन्थ लेखन प्रतिज्ञा	6	2
3	ग्रन्थ पीठिका	7–24	2
4	चार्वाक दर्शन	25–31	7
5	चार्वाक दर्शन समीक्षा	32–49	9
6	वैशेषिक दर्शन	50–108	14
7	वैशेषिक दर्शन समीक्षा	109–162	27
8	न्याय दर्शन	163–237	41
9	न्याय दर्शन समीक्षा	238–244	57
10	सांख्य दर्शन	245–305	59
11	सांख्य दर्शन समीक्षा	306–328	72
12	योग दर्शन	329–386	78
13	योग दर्शन समीक्षा	387–394	91
14	वेदान्त दर्शन	395–497	94
15	वेदान्त दर्शन समीक्षा	498–527	116
16	मीमांसा दर्शन	528–576	124
17	मीमांसा दर्शन समीक्षा	577–617	135
18	बौद्ध दर्शन	618–677	145
19	बौद्ध दर्शन समीक्षा	678–733	158
20	जैन दर्शन	734–1011	172
21	उपसंहार	1013–1026	236
20.	अन्तिम मङ्गलाचरण	1027–1042	240
21.	प्रशस्ति	1043–1044	244

दंसण-परिक्खा

(दर्शन परीक्षा)

मङ्गलाचरण

सव्वदुण्णयणासगा, सुहमग्गपयासगा य सद्दिट्ठी।
सण्णाण-कारणं सय, णमो सद्दिट्ठि-धारगाणं॥1॥

सर्व दुर्नय के नाशक, शुभ श्रेष्ठ मार्ग के प्रकाशक एवं सम्यग्ज्ञान के कारण स्वरूप सद्दृष्टि वा सम्यग्दर्शन एवं सुदृष्टि धारकों को सदैव नमस्कार हो।

सद्दिट्ठिजुत्तसिद्धा, अरिहा सूरी य पाढगा साहू।
सद्दिट्ठि-कहग-वाणिं, परियंदामि जिणचेइयं च॥2॥

सुदृष्टि (केवल दर्शन) से युक्त सिद्ध, अरिहन्त, सुदृष्टि (सम्यक्-दर्शन) से युक्त आचार्य, उपाध्याय व साधु, सुदृष्टि का कथन करने वाली जिनवाणी और जिन-चैत्य को मैं नमस्कार करता हूँ।

चरियचक्किं जुगपुरिस-महासूरि-संतिसायरं वंदे।
सूरिं पायसायरं, तवस्सिं भत्ति-अणुरायेण॥3॥

अज्झप्पजोगिं सिरिं, जयकित्ति-माइरियं च णमंसामि।
भारदगोरवं देसभूसणं भूसणं देसस्स॥4॥ (जुम्मं)

चारित्र चक्रवर्ती, युगपुरुष, महासूरि श्री शांतिसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, अध्यात्मयोगी आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज एवं देश

के महाभूषण स्वरूप भारतगौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज को भक्ति के अनुराग से नमस्कार करता हूँ।

सिद्धंतचक्किं रट्ठ-संतं सिदपिच्छाइरियं णमामि।
खवगराय-सिरोमणिं,सुगुरुंसूरि-विज्जाणंदं।।5।।

क्षपकराज-शिरोमणि, सिद्धान्त-चक्रवर्ती, राष्ट्रसन्त, श्वेतपिच्छाचार्य श्रेष्ठ गुरु आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थ लेखन प्रतिज्ञा

दिट्ठीइ परियट्टणे, सिट्ठि-परियट्टणं दु पडिभासेदि।
खयिदुं मिच्छा-कोणं, दंसणपरिक्खं वोच्छे हं।।6।।

दृष्टि का परिवर्तन होने पर सृष्टि का परिवर्तन भी प्रतिभासित होता है। मिथ्या दृष्टिकोण के क्षय के लिए मैं (आचार्य वसुनन्दी मुनि) **''दर्शन परीक्षा''** नामक ग्रन्थ को कहता हूँ।

ग्रन्थ-पीठिका

सव्वमूलसिद्धंतो, जम्मि विज्जेदि विसिट्ठविण्णाणं।
दंसणं अज्झाअदि, सच्चवत्ता सव्ववेक्खाहि।।7।।

दर्शन वह विशिष्ट विज्ञान है जिसमें सभी मूल सिद्धान्त विद्यमान हैं। दर्शन सर्व अपेक्षाओं से सत्यवार्ताओं का अध्ययन कराता है।

णइदिगमुल्लघत्तणं, धारणं ताणं च णियजीवणम्मि।
सगप्पजाणणं तहा, दंसणकज्जं मुणेदव्वं।।8।।

नैतिक मूल्यों का ग्रहण करना, अपने जीवन में उन्हें धारण करना तथा अपनी आत्मा को जानना, ये दर्शन के कार्य हैं।

णेदि सासयदसं पडि, अप्पं सासयसच्चंसदारेहि।
जहातहपाणजुत्तं, पुण्णविवेगणाण-दंसणं।।9।।

जो आत्मा को शाश्वत सत्यांश द्वारों से शाश्वत दशा की ओर ले जाता है, जो यथार्थता के प्राणों से युक्त है, वह पूर्ण विवेकज्ञान दर्शन है।

दंसणं णाणरुक्खं, सिद्धंतमूलं तच्चमीमंसा।
खंधो साहा पमाण-मीमंसा अण्णुवसाहा व।।10।।

दर्शन ज्ञानका वह वृक्ष है जिसकी जड़ें सिद्धान्त हैं, तत्त्वमीमांसा जिसका तना है, प्रमाण-मीमांसा जिसकी शाखा है एवं अन्य मीमांसा, तर्क शास्त्रादि उपशाखा के समान हैं।

मिच्छाणयसमूहो दु, णेव मिच्छा कयावि जिणसमयम्मि।
णिरवेक्खो मिच्छा सावेक्खो अत्थकिरियायारी।।11।।

जिनशासन में मिथ्यानयों का समूह कदापि मिथ्या नहीं होता। निरपेक्षनय मिथ्या और सापेक्षनय अर्थक्रियाकारी (समीचीन) होते हैं।

मुक्खगउण-भावेणं, वत्थुम्मि विज्जंतणेगधम्माण।
अवेक्खाणुसारेणं, कहणं कुव्वेदि सम्मणयो।।12।।

सम्यक् नय वस्तु में मुख्य व गौण भाव से विद्यमान अनेक धर्मों का अपेक्षानुसार कथन करता है।

पक्खवायो ण कुणंति, विवेगी सव्वदा गहंति सच्चं।
जुत्तिजुत्त-मग्गं सत्तूणं अवि णिप्पक्ख-णाणी॥13॥

विवेकीजन कभी पक्षपात नहीं करते, वे सदैव सत्य को ग्रहण करते हैं। निष्पक्ष ज्ञानी शत्रुओं के भी युक्तियुक्त मार्ग को ग्रहण करते हैं।

सग-दोसजुदपक्खो वि, उज्झणीयं चिय विसत्तखीरं व।
परपक्खं हिदयरं पि, सच्चं तो गहेदु ओसहीव॥14॥

अपना दोषयुक्त पक्ष भी विषाक्त दूध के समान छोड़ देना चाहिए। यदि दूसरों का पक्ष हितकर व सत्य हो तो वह भी औषधि के समान ग्रहण कर लेना चाहिए।

णो कुणमि पक्खवायं, विद्देसो ण सवरघादगमदे वि।
णो रायो जइणेसुं, जं सिआवयी णिप्पक्खो॥15॥

मैं यहाँ पक्षपात नहीं कर रहा हूँ। मेरा स्वपर के घात करने वाले मत में भी कोई विद्वेष नहीं है और जैनियों में भी कोई राग नहीं है। क्योंकि स्याद्वादी निष्पक्ष होता है।

सवरहिद-भावणाए, पकुव्वेमि सव्वदंसण-समिक्खं।
विवेगेण मदं गहदु, आवणादो चिय सुवण्णं व॥16॥

अतः स्वपर हित की भावना से मैं सर्वदर्शनों की समीक्षा करता हूँ। जिस प्रकार विवेकी दुकान से स्वर्ण को विवेकपूर्वक ग्रहण करते हैं उसी प्रकार विवेकपूर्वक मत को ग्रहण करना चाहिए।

कणग-परिक्खणं विणा, को वि ण गहदे जह अण्णाणेणं।
दंसण-परिक्खं विणा, बुह-जणा णेव दंसणं तह।।17।।

जिस प्रकार स्वर्ण की परीक्षा के बिना कोई भी अज्ञानतापूर्वक उसे ग्रहण नहीं करता उसी प्रकार दर्शन की परीक्षा के बिना बुधजन दर्शन को ग्रहण नहीं करते। अर्थात् वे दर्शन की परीक्षा करके ही सम्यक् दर्शन को ग्रहण करते हैं।

जह णयणेहि परिक्खं, कट्टु णाणी चलदे सेट्ठमग्गे।
धम्मी वत्थेण जलं, गहणजोग्गं हंदि मण्णेदि।।18।।

तह सण्णाणं धम्मं, दंसणं तच्चं मदं आयारं।
विणा परिक्खं ण गहदि, अंधविस्सासीव य कया वि।।19।। (जुम्मं)

जिस प्रकार नयनों से परीक्षा करके ही ज्ञानी श्रेष्ठ मार्ग पर गमन करता है एवं धर्मात्मा वस्त्र से जल की परीक्षा कर अर्थात् छानकर ही उसे ग्रहण करने योग्य मानता है उसी प्रकार विवेकी सम्यग्ज्ञान, धर्म, दर्शन, तत्त्व, मत व आचार की परीक्षा के बिना उन्हें अन्धविश्वासी के समान कभी ग्रहण नहीं करता।

महुयरो कंडगजुत्त-पुप्फराय-पुप्फेसुं रमदे वा।
पंकुप्पण्ण-पउमेसु, णेव दु किंसुगेसुं कया वि।।20।।

तहेव विवेगी गहदि, कणगपासाणसंजुत्त-कणगं च।
कंतिजुद-अयसपिंडं, णेव कच्चं णवरि वज्जं हि।।21।। (जुम्मं)

जैसे भौरा काँटे से युक्त गुलाब के पुष्पों पर रमण करता है एवं कीचड़ में उत्पन्न होने वाले कमल के पुष्पों पर भी

रमण करता है किन्तु टेसू के फूलों पर कदापि नहीं रमता। उसी प्रकार विवेकीजन कनक पाषाण से युक्त कनक को तो ग्रहण करते हैं किन्तु कान्तिमान् लोह पिंड को नहीं। वे काँच नहीं अपितु हीरा ही ग्रहण करते हैं।

णियदेहे उप्पण्णो, रोयो वि सया उज्झणीयो किण्णु।
विविणे जणिदा ओसही, गहणीया सेट्ठारोग्गस्स।।22।।

अपनी देह में उत्पन्न रोग भी सदा त्याज्य है किन्तु जंगल में उत्पन्न औषधि भी यदि श्रेष्ठ आरोग्य को देने वाली है तो वह भी ग्राह्य है।

अप्पहिदेच्छुगा जे वि, कस्सिं पि कुलम्मि उप्पण्णा जीवा।
अप्पहिदं कुणिदुं सक्का गहिय सुदंसणं धम्मं।।23।।

जो कोई भी जीव आत्महित के इच्छुक हैं, वे चाहे किसी भी कुल में उत्पन्न हों किन्तु वे सम्यक्-समीचीन दर्शन व समीचीन धर्म को ग्रहण कर आत्महित करने में समर्थ होते हैं।

छुहा-संतीए गहदि, णो विवेगी कालकूडविसं जह।
सुभोयण-अभावे तह, णेव सदोसमग्गं कया वि।।24।।

जिस प्रकार अच्छे भोजन के अभाव में विवेकी पुरुष क्षुधा शान्ति के लिए कालकूट विष को ग्रहण नहीं करते उसी प्रकार विवेकी कदापि सदोषमार्ग पर गमन नहीं करते।

1. चार्वाक दर्शन

सव्वाहिय-थूलो तह, लोगिगो तम्हा लोगायदो अवि।
णामेण सुप्पसिद्धा, पवट्टिदो बहस्सदि-रिसिणा।।25।।

सर्वाधिक स्थूल व लौकिक होने से यह 'लोकायत' नाम से भी प्रसिद्ध है। यह चार्वाक मत बृहस्पति ऋषि के द्वारा प्रवर्तित माना जाता है।

सिरिवीरणिव्वाणस्स, किंचिणूणचउसयवस्सपच्छा दु।
अजिदकेसकंबली दु, णेयो अस्स अग्गदूदोव्व।।26।।

चार्वाक मत का काल भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के कुछ कम चार सौ वर्ष बाद का है। अजितकेश कंबली इस मत के अग्रदूत जानने चाहिए।

पुढवि-जलग्गि-वाउ-चउ-भूदाणूहि णिम्मिद-जड-चेयणा।
मण्णेदि चव्वागो य, ताणं रूव-णाणाइ-गुणो।।27।।

चार्वाक जड़ व चेतन दोनों को ही पृथ्वी, जल, अग्नि व वायु ऐसे चतुर्विध भूताणुओं से निर्मित मानता है अथवा उनके रूप या ज्ञानादि समस्त गुण भी इन्हीं भूताणुओं के संयोग का परिणाम है, ऐसा मानता है। (आकाश का प्रत्यक्ष नहीं होने से यह मत आकाश की सत्ता को स्वीकार नहीं करता।)

इंदिय-पच्चक्खं खलु, मेत्तं पमाणं दंसणे इमम्मि।
तम्हा ण पारलोगिग-वत्थूण संगच्छदि सत्तं।।28।।

इस दर्शन में मात्र इन्द्रिय प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। इसलिए यह पारलौकिक वस्तुओं की सत्ता को स्वीकार नहीं करता।

सग्ग-मोक्ख-णिरयाणो,अत्थदुइंदिय-अगोयरत्तादो।
मण्णदिणेवजीवाइ-दव्व-सव्वाणिच्चाकयावि॥29॥

इन्द्रिय के अगोचर होने से यहाँ स्वर्ग, मोक्ष, नरकादि की सत्ता नहीं है। यह जीवादि सर्व-द्रव्यों को कदापि नित्य नहीं मानता।

जावदु जीवेज्ज णरो, सुहेणं णेव मरिसेज्जा कट्ठं।
रिणं गहित्ता पिवेज्ज, घिदं जं पुणज्जम्मो णेव॥30॥

(जहाँ स्वर्ग व मोक्षादि नहीं वहाँ आचार शास्त्र की भी क्या आवश्यकता है।) अतः यह कहता है अरे मनुष्य! जब तक जीओ तब तक सुखपूर्वक जीओ, कष्ट मत सहन करो। ऋण ग्रहण कर घी पीओ क्योंकि पुनर्जन्म नहीं होता।

मिच्चू णियमा मोक्खो, अप्पा परमप्पा ण होज्ज लोए।
अप्पीसर-सत्तं णो, संगच्छेदि णत्थिग-दंसणं तं॥31॥

यह चार्वाक मत कहता है मृत्यु ही नियम से मोक्ष है। लोक में आत्मा परमात्मा नहीं होती। आत्मा व ईश्वर की सत्ता को यह दर्शन स्वीकार नहीं करता, अतः यह नास्तिक दर्शन है।

चार्वाक दर्शन समीक्षा

देह-चेयणण-एगो, चव्वाग-मदे मूढ-अवलावोव्व।
जीवो सिद्धो सया हि, दिट्ठिगोयरो पच्चक्खम्मि॥32॥

चार्वाक मत में देह और चैतन्य एक है यह मूढ़ व्यक्ति के अपलाप के समान है। प्रत्यक्ष में दृष्टिगोचर जीव सदा ही सिद्ध है।

देहे णट्ठे जीवो, विणस्सदि सिद्धंतो इमो मिच्छा।
जम्म-मरणं पच्चक्ख-दिट्ठिगोयरं जादि-सुईदु॥33॥

देह के नष्ट होने पर जीव भी नष्ट हो जाता है, चार्वाक का यह सिद्धान्त मिथ्या है क्योंकि जातिस्मरण से जन्म व मरण प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर है।

पुव्वसक्कारवसादु, कुव्वेदि सिक्खा-गहणेण विणा वि।
जीवो पवित्तिं जहा, वच्छो पिवदि दुद्धं आदी॥34॥

पूर्व संस्कार के वश से जीव बिना शिक्षा ग्रहण किए भी प्रवृत्ति करता है। जैसे बछड़ा दुग्ध पीता है, इत्यादि।

चव्वाग-मदं मिच्छा, पच्चक्खे एव पमाणं णेयं।
तदा बहस्सदी तस्स, संठावग-अप्पमाणिगो वि॥35॥

चार्वाकमत मिथ्या जानना चाहिए। यह प्रत्यक्ष में ही प्रमाण है, तब उस मत का संस्थापक बृहस्पति भी अप्रमाणिक ही हुआ।

फलं पुण्णपावाणं, दिस्सदि पच्चक्खे पुव्वकिदाण।
सिद्धो हु पुणज्जम्मो, चव्वागो किं ण मण्णदि तं॥36॥

जीव के पूर्वकृत पुण्य-पाप का फल प्रत्यक्ष में दिखाई देता है। यह पुनर्जन्म सिद्ध है, तब चार्वाक इसको क्यों नहीं मानता?।

मरणुवरंतो जीवो, दिस्सदि देवाइं होच्च सव्ववित्तंतं।
कहदि पगडिय सयं, दिस्सदि पुणज्जम्मो पच्चक्खे ॥37॥

(लोक में कई बार ऐसा होता है)-मृत्यु के उपरान्त जीव देवादि होकर पुनः स्वयं प्रकट होकर सारा वृत्तान्त कहता है अतः पुनर्जन्म प्रत्यक्ष में दिखाई देता है।

जदि जीवो णत्थि तरिहिं, किं विहदि-मिच्चुकारग-कारणेहि।
मिदं देहं ण कुव्वदि, किं भोयणं अण्णकज्जं पि॥38॥

यदि जीव (आत्मा) नहीं है तो वह मृत्युकारक कारणों से क्यों डरता है? मृत देह भोजन या अन्य कार्य भी क्यों नहीं करती।

जीवो णो भिण्णो जदि, देहादो तो कस्स जम्म-मरणं।
जीवं विणा ण अक्खा, समत्था ओग्गहिदुं विसयं॥39॥

यदि जीव देह से भिन्न नहीं है तो जन्म व मरण किसका होता है। अहो! जीव के बिना इन्द्रियाँ अपना विषय ग्रहण करने में समर्थ नहीं हैं।

जदि जीवो भिण्णो णो, तणादु तो को कता को भोत्ता।
मरणुवरंते दिस्सदि, किं णो देहिंदिय-पवित्ती।।40।।

यदि जीव शरीर से भिन्न नहीं है तो कौन कर्ता और कौन भोक्ता है? मरणोपरान्त शरीरिन्द्रिय की प्रवृत्ति क्यों दिखाई नहीं देती?

अणुभव-णाणं अण्णं, णो पमाणं मेत्तं पच्चक्खं हि।
पुव्वजा तुज्झ मिच्छा, दिट्ठि-अगोयरादो हु तदा।।41।।

यदि आपके लिए अनुभव ज्ञान या अन्य ज्ञान प्रमाण नहीं है, मात्र प्रत्यक्ष ही प्रमाण है तो आपके पूर्वज दृष्टि के अगोचर होने से मिथ्या ही ठहरेंगे।

पच्चक्खंपिपमाणं,जदिउप्पालसितदाइट्ठंकिण्णु।
तं मेत्तं हि पमाणं, सवरघादगवयणं तुज्झं।।42।।

'प्रत्यक्ष भी प्रमाण है' यदि आप ऐसा कहते हैं तब ये हमें भी इष्ट है, किन्तु यदि आप कहते हैं 'वह प्रत्यक्ष ही मात्र प्रमाण है' तो ये आपके वचन स्वपर का घात करने वाले हैं।

इह अहुणा सव्वण्हू, णेव जदि कहसि तो इट्ठ-मम्हाण।
किण्णु ण कया वि कत्थ वि, तो तुमं सव्वण्हू भादू।।43।।

(प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानने पर सर्वज्ञ को नहीं मानता तब) यदि आप कहते हैं यहाँ इस समय सर्वज्ञ नहीं है तो यह हमें भी इष्ट है किन्तु यदि कहते हो कि सर्वज्ञ कभी भी नहीं होते और कहीं भी नहीं होते अर्थात् त्रिकाल व

त्रिलोक में सर्वज्ञ का निषेध करते हो तो भाई तुम ही सर्वज्ञ हो गए। जिससे तुम स्ववचनबाधित हुए, क्योंकि सर्वज्ञ का अर्थ ही है जो तीनों लोकों की तीनों कालों की बात को युगपत् जान ले।

सव्वं सह चव्वागो, मण्णदि ससग-विसाणं णत्थि किण्णु।
तो वि चव्वागो कहदि, ससगो तस्स विसाणं अत्थि।।44।।

सबके साथ चार्वाक भी मानता है कि शशक-विषाण अर्थात् खरगोश के सींग नहीं होते। तो भी चार्वाक कहता है खरगोश भी है और उसके सींग भी है। (अर्थात् स्ववचन बाधित हो जाता है।)

अत्थित्तेण विणा णो, संभवो कयावि वयण-ववहारो।
णेव सदस्स विणासो, णेव दु असदस्स उप्पादो।।45।।

अस्तित्व के बिना वचन व्यवहार कदापि सम्भव नहीं है। सत् का कभी विनाश नहीं होता और असत् का कभी उत्पाद नहीं है।

उप्पज्जंति पज्जया, णस्संते णेव णस्सदे दव्वो।
दव्वो सया सासयो, णेव सासयो दु पज्जाओ।।46।।

पर्याय ही उत्पन्न होती हैं और पर्याय ही नष्ट होती हैं, द्रव्य कभी नष्ट नहीं होता। द्रव्य सदा शाश्वत है किन्तु पर्याय शाश्वत नहीं है।

अप्पदित्थीहिं सया, उज्झणीयो चव्वाग-मदं।
णिम्मल बुद्धीए सम्मं वियारिय गहेज्ज तच्चं।।47।।

आत्महितार्थियों को सदा चार्वाकमत छोड़ देना चाहिए, एवं निर्मल बुद्धि से सम्यक् विचार कर तत्त्व ग्रहण करना चाहिए।

सिआवाय-अरिहमदे विज्जमाणो सिद्धंतो एगो वि।
केण वि दंसणेण णो, लंघणीयो कत्थ वि कया वि।।48।।

स्याद्वाद-अरिहन्त मत में विद्यमान एक भी सिद्धान्त किसी भी दर्शन के द्वारा कहीं भी और कभी उल्लङ्घन के योग्य नहीं है।

जिणवरा दु जयवंता, जेहि पवट्टिदो हिदयरोधम्मो।
हंसोव्व सम्ममग्गं, गहेज्ज विहाय पक्खवायं।।49।।

जिनेन्द्र भगवान् जयवन्त हैं, जिनके द्वारा सर्वहितकारी धर्म प्रवर्तित किया गया। अतः पक्षपात को छोड़कर हंस पक्षी के समान अर्थात् विवेकपूर्वक सम्यक् मार्ग को ग्रहण करना चाहिए।

2. वैशेषिक दर्शन

रिसिकणाद-पवट्टगो, वइसेसिग-मदस्स सुप्पसिद्धो हु।
वइसेसिग-सुत्तं तह, अस्स मूलसिद्धंतगंथो।।50।।

वैशेषिक मत के प्रवर्तक सुप्रसिद्ध ऋषि कणाद हैं। एवं इस मत का मूल सिद्धान्त ग्रन्थ 'वैशेषिक सूत्र' है।

वइसेसिग-दंसणं दु, कणाद-अउलुक्क-कस्सपीयादो।
किंचूण चउसयवस्स-पच्छा वीरसिवस्स खादं।।51।।

भगवान् महावीर स्वामी के मोक्ष के कुछ कम 400 वर्ष पश्चात् वैशेषिक दर्शन हुआ। यह औलुक्य, कणाद एवं काश्यपीय दर्शन के नाम से भी विख्यात है।

परमाणू अणेगप्प-वायो असदकज्ज-मोक्खवायो य।
चदू मूलसिद्धंतो, अस्स दंसणस्स आहारो।।52।।

परमाणुवाद, अनेकात्मवाद, असत्कार्यवाद व मोक्षवाद इस दर्शन के आधार स्वरूप चार मूल सिद्धान्त हैं।

परमाणू दु विस्सस्स, मूल-उवादाण-कारणं मण्णे।
तं परमाणुवायं दु, विणा विस्सस्सट्ठिदी णेव।।53।।

परमाणु विश्व का मूल उपादान कारण माना जाता है। उस परमाणु के बिना विश्व की स्थिति नहीं हो सकती।

जीवप्पा हु अणेगा, णवरि भुंजेदुं दु कम्मफलाइं।
पुध-पुध-सरीरं सया, धारंते जीवा मण्णेज्जा।।54।।

जीवात्मा अनेक हैं किन्तु विशेषता यह है कर्म के फलों को भोगने के लिए जीव सदा पृथक्-पृथक् शरीर धारण करते हैं, ऐसा माना जाता है।

कारणेण हवंति इह, लोयम्मि सव्वकज्जाणि णियमेण।
कारणं णिच्चं तहा, कज्जं विणस्सरं सय होज्ज।।55।।

इस लोक में सभी कार्य नियम से कारण से ही होते हैं। यहाँ कारण नित्य एवं कार्य सदैव विनश्वर होता है।

मोक्खो हु जीव-लक्खो, मिच्छाणाणं भववट्टणहेदू।
तस्स णासहेदू सिव-कारणं तहा सच्चणाणं।।56।।

मोक्ष जीव का लक्ष्य है। मिथ्याज्ञान भव परिभ्रमण का कारण है। वैशेषिक उस मिथ्याज्ञान के नाश का हेतु एवं मोक्ष का कारण सत्यज्ञान को मानते हैं।

संसार-मोक्ख-हेदू, धम्मो णेयो दंसणम्मि अस्सिं।
इदरहेदू अधम्मो, दुक्ख-कारणं च णियमेणं।।57।।

इस दर्शन में संसारसुख व मोक्षसुख का हेतु धर्म जानना चाहिए। इससे इतर अधर्म है। वह अधर्म नियम से दु:ख का कारण है।

मूलतच्चं दव्व - गुण - कम्म - सामण्ण - विसेस - समवाया।
अभावो य पत्तेयं, अणेग - अवंतरभेया अवि।।58।।

इस दर्शन के मूल तत्त्व इस प्रकार हैं-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष व समवाय और अभाव। प्रत्येक के अनेक अवान्तर भेद हैं।

अप्प-देहक्खत्थ-बुद्धि-मण-पवत्ती-दोस-पेच्चभावा।
फल-दुक्ख-अपवग्गा वि, बारस-पमेया णाये वि॥59॥

इनके अतिरिक्त आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख व अपवर्ग इन बारह प्रमेयों को, जो न्याय दर्शन में मान्य हैं, यह दर्शन भी स्वीकार करता है।

तच्चाणं च साहम्म-वइधम्माणं णाणेणं मोक्खो।
इमाण अणुसारेणं, तेण विणा ण मोक्खो कया वि॥60॥

पूर्व में कहे गए सात तत्त्वों के साधर्म्य व वैसाधर्म्य के ज्ञान से मोक्ष होता है। इन वैशेषिकों के अनुसार उस ज्ञान के बिना कदापि मोक्ष नहीं होता।

गुणासयो दु कम्मस्स, समवायी-हेदू दव्वो णवहा।
पुढवि-जलग्गि-वाउ-णह-याल-दिग-अप्पा मणो तहा॥61॥

द्रव्य, गुण का आश्रय है तथा कर्म का समवायी कारण है। ये द्रव्य नौ हैं-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन।

गंध-रस-रूव-फासा, दव्वस्स चिय विसेसगुणा कमसो।
पत्तेयं अणुरूवो, संखाए अणंता णेया॥62॥

गन्ध, रस, रूप व स्पर्श क्रमशः द्रव्य के विशेष गुण हैं। इनमें से प्रत्येक अणुरूप तथा सङ्ख्या में अनन्त-अनन्त हैं।

कालो दिगो हु हेदू, परच्चापरच्चस्स अणिच्चेसुं।
पुढवी-आइ-चदूसुं, दव्वेसु चिय बेविहं तं॥63॥

'काल व दिक्' पृथ्वी आदि चार अनित्य द्रव्यों में परत्वापरत्व के हेतु हैं। ये परत्वापरत्व दो प्रकार का है- कालकृत एवं दिक्कृत।

णूदण - पुरादणाइं, कालकिद - परच्चापरच्चं सया।
दूर-णियडाइ-दिग-किद-परच्चापरच्चं जाणेज्ज॥64॥

नयापना व पुरानापना ये कालकृत परत्वापरत्व एवं दूर-निकटपना आदि सदा दिक्कृत परत्वापरत्व जानना चाहिए।

आयासाइ-ति-दव्वा, णिच्चा विभू एगेगो संखाइ।
अप्पा अणंता किण्णु, सव्वा णहोव्व वावग-विभू॥65॥

आकाश आदि तीन द्रव्य नित्य, विभु व सङ्ख्या में एक-एक हैं। आत्माएँ सङ्ख्या में अनन्त हैं किन्तु सभी आत्माएँ आकाश के समान व्यापक व विभु हैं।

अप्पा-मण-जोगेणं, उप्पण्णत्तादो णाणाइ-गुणा।
आगंदुगा दु णेया, वइसेसिग-दंसणम्मि तहा॥66॥

वैशेषिक दर्शन में ज्ञानादिगुण आत्मा व मन के संयोग से उप्पन्न होने के कारण आगन्तुक जानने चाहिए।

एदाण गुण-पदीदी, हवेदि चिय संसारावत्थाए।
णेव मुत्तावत्थाइ, संसारे वि पुध-पुध रूवे॥67॥

(इन दोनों का संयोग ही पर्याप्त हो, ऐसा भी नहीं है क्योंकि नित्य अवस्थित होने के कारण वे तो सदा संयुक्त हैं ही, फिर भी) इन गुणों की प्रतीती मात्र संसारावस्था

में होती है, मुक्तावस्था में नहीं। संसार अवस्था में भी यह पृथक्- पृथक् रूप में अर्थात् कभी किसी रूप में और कभी किसी रूप में होती है।

सयलप्पा विभू तस्स, धम्माधम्म-सक्कारा तस्सिं हि।
ताणं णवरि पदीदी, मणजुदभागे हि अण्णहा ण।।68।।

सकल आत्माएँ विभु हैं। अतः उसके धर्म, अधर्म व संस्कार भी उसमें सर्वत्र पाए जाते हैं। फिर भी उनकी प्रतीती उनके उसी भाग में होती है जिस भाग के साथ मन संयुक्त हुआ हो, अन्यथा प्रतीति नहीं होती।

ठाणंतरण-मसक्को, अप्पस्स विभुत्तादो चिय तम्हा।
मणो तणं परिवट्टदि, णेव अप्पा अस्सिं मदम्मि।।69।।

विभु होने के कारण आत्मा का स्थानान्तरण अशक्य है। इस वैशेषिक मत में मन ही शरीर परिवर्तन करता है, आत्मा नहीं।

जम्मोव्व हंदि मरणं, मणस्स वि होदि वइसेसिगमदम्मि।
उवयार-मेत्तं अत्थ, अप्पा-कहणं मुणेदव्वो।।70।।

वैशेषिक मत में जन्म के समान मरण भी मन का ही होता है। आत्मा का कहना यहाँ उपचार मात्र ही जानना चाहिए।

मुत्तावत्थाए अवि, अप्पाणं पुध पुध मणा अवि तत्थ।
तेहिं सह संजुत्ता, अस्सिं च वइसेसिग-मदम्मि।।71।।

इस वैशेषिक मत में मुक्तावस्था में भी आत्माओं के पृथक्-पृथक् मन उनके साथ संयुक्त रहते हैं। (जिससे कि वहाँ उनका पार्थक्य बना रहता है)

अक्खत्थ-सण्णिकस्साभावत्तादो य गुणा णाणादी।
णेव तत्थ तं अप्पा, णाण-चेयणा-विवज्जिदो हि।।72।।

परन्तु इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष का अभाव होने से वहाँ ज्ञानादि गुण नहीं होते। अतः वहाँ उस अवस्था में आत्मा ज्ञान व चेतना विहीन ही होता है।

चउवीसगुणा णेया, गंध-रस-रूव-फास-सद्द-संखा।
परिमाणं च पुधत्तं, संजोगो तहा विभागो दु।।73।।

परच्च-मपरच्चं तह, गुरुत्तं दव्वत्तं णेह-णाणं।
सुहं दुह-मिच्छा पयत्तणं दोसो धम्माधम्मा।।74।।

सक्कारो एवंविह, गुणा संखादो दव्वत्तंतं च।
णव-सामण्णाभेया, पणरसगुणाविसेसाजाण।।75।।(तिगं)

गुण चौबीस जानने चाहिए-गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रव्यत्व, स्नेह (स्निग्धत्व), ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, प्रयत्न, द्वेष, धर्म, अधर्म तथा संस्कार। इस प्रकार सङ्ख्या से लेकर द्रव्यत्व तक नौ गुण सामान्य एवं पन्द्रह गुण विशेष जानने चाहिए।

गंध-रसादी णाणं सुह, दुह-इच्छा पयदणं दोसो य।
गुणा चिय सुप्पसिद्धा, अण्णगुणा अग्गे वोच्छामि।।76।।

गन्ध, रस आदि पाँच तथा ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, प्रयत्न व द्वेष ये गुण सुप्रसिद्ध हैं। अन्य गुणों को मैं आगे कहता हूँ।

का दव्वा कत्तिया दु, इमा ताणं संखा मुणेदव्वा।
अणु-विभु-मज्झमाणंच, भेयादु तिविहं परिमाणं॥77॥

कौन द्रव्य कितने-कितने हैं, यह उनकी 'सङ्ख्या' जाननी चाहिए। अणु, विभु व मध्यम के भेद से परिमाण तीन प्रकार का है।

णिच्च-पुढवि-आइ-चदू, मणोयपणदव्वाअणुपरिमाणा।
गगणाइ-सेसा चदू, विभुपरिमाणा मुणेदव्वा॥78॥

नित्य पृथ्वी आदि चार व मन ये पाँच द्रव्य अणु परिमाण हैं तथा आकाश आदि शेष चार द्रव्य विभु परिमाण जानने चाहिए।

बेअणुगाइ-अणिच्चा, दव्वा णेया मज्झमपरिमाणा।
पुधत्तगुणो दव्वाण, पुध-पुध-हवणं विणिद्दिट्ठो॥79॥

द्व्यणुकादि अनित्य द्रव्य मध्यम परिमाण वाले जानने चाहिए। द्रव्यों का एक दूसरे से पृथक्-पृथक् होना पृथक्त्व गुण निर्दिष्ट किया गया है।

महि-आइ-परमाणूण, मिहो संघडण-हेदू संजोगो।
अणिच्चेसु दव्वेसुं, गुणो सव्वदा संविदिदव्वो॥80॥

अनित्य द्रव्यों में पृथ्वी आदि के परमाणुओं का परस्पर में सङ्घटित होकर रहना, इसमें हेतु संयोग नामक गुण है, यह सर्वदा जानना चाहिए।

पुण पुण ताण विकिरणं, विभाग-गुणो दंसणे णादव्वो।
परच्चापरच्चं दिग-कालकिद-भेयादो दुविहं॥81॥

उन परमाणुओं का पुनः पुनः विभक्त होकर बिखरना इस दर्शन में विभाग गुण जानना चाहिए। परत्वापरत्व दिक्कृत व कालकृत के भेद से दो प्रकार का है।

गुरुत्त-पदीदीए दु, हेदू दव्वेसुं गुरुत्त-गुणो।
चउभूदाणु-मणेसुं, जहाजोग्गं तह तरलत्तं॥82॥
दव्वत्त-गुणो णेयो, लुद्धत्तं णेहो पुण्णं पावं।
कमसो धम्माधम्मा, दोण्णि अप्पस्स गुणा मण्णे॥83॥ (जुम्मं)

द्रव्यों में भारीपन की प्रतीति का हेतु चतुर्विध भूताणुओं व मन में स्थित उनका गुरुत्व गुण है। इनमें यथायोग्य तरलता उनका द्रव्यत्व गुण जानना चाहिए। स्निग्धता वा चिकनापन स्नेह है। पुण्य व पाप क्रमशः धर्म व अधर्म हैं। ये दोनों आत्मा के गुण माने गए हैं।

किदकम्म-पहावेणं, जेणं सया तज्जादि-कम्माइं।
जणंति सो सक्कारो, संविदिदव्वो मदे अस्सिं॥84॥

जिस कृत कर्म के प्रभाव से उस उस जाति के कर्म उत्पन्न होते रहते हैं, वह इस मत में संस्कार जानना चाहिए।

सक्कारो बेविहो दु , वेगक्ख-भावणक्ख-भेयादो य।
भावणक्खो अप्पम्मि, वेगक्खो वाउ-मणेसुं च॥85॥

वह संस्कार वेगाख्य व भावनाख्य के भेद से दो प्रकार का है। आत्मा में भावनाख्य तथा वायु व मन में वेगाख्य है।

संखा परिमाणं तह, पुधत्तं चिय संजोगो विभागो।
परच्चापरच्चं सामण्णा मण-महिआइचदूण।।86।।

सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व व अपरत्व ये पृथ्वी आदि चार व मन, इन पाँच द्रव्यों के सामान्य गुण हैं।

परच्चापरच्च-रहिद-पंचगुणा णह-याल-दिगप्पाणं।
अहुणा गुणा विसेसा, भणेमि अस्स मदणुसारेण।।87।।

आकाश, काल, दिक् और आत्मा इन चार द्रव्यों के परत्व, अपरत्व से रहित पाँच गुण-सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग व विभाग जानने चाहिए। अब इस वैशेषिक मत के अनुसार विशेष गुणों को कहता हूँ।

गंध-रस-रूव-फासा, पुढवीए य गंधरहिद-णीरस्स।
रूव-फासा तेउस्स, फासो वेगक्खो वाउस्स।।88।।

पृथ्वी द्रव्य के विशेष गुण गन्ध, रस, रूप व स्पर्श हैं। जल के गन्ध रहित रस, रूप व स्पर्श ये विशेष गुण हैं। अग्नि के रूप व स्पर्श एवं वायु के स्पर्श व वेगाख्य संस्कार विशेष गुण हैं।

सद्दो णहस्स परच्च-मपरच्चं यालस्स दिगस्स तहा।
वेगक्खो चिय मणस्स, विसेसगुणा संविदिदव्वा।।89।।

आकाश का विशेष गुण शब्द, काल व दिक् के विशेष गुण परत्वापरत्व तथा मन का विशेष गुण वेगाख्य संस्कार जानना चाहिए।

णाण-सुह-दुक्ख-इच्छा, पयत्तणं दोसो धम्माधम्मा।
भावणक्ख-सक्कारो,जाण अप्पस्स विसेसगुणा।।90।।

ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, प्रयत्न, द्वेष, धर्म, अधर्म व भावनाख्य संस्कार, ये आत्मा के विशेष गुण जाने जाते हैं।

किरिया समवायेणं, दव्वे हि होदि णेव पुधो तादो।
सम्भवो य अणु-मज्झम-परिमाण-दव्वेसु ण विभूसु।।91।।

क्रिया समवायसम्बन्ध से द्रव्य में ही रहती है उससे पृथक् नहीं। यह कर्म अणु परिमाण व मध्यम परिमाण वाले द्रव्यों में ही सम्भव है, विभु परिमाण वाले द्रव्यों में नहीं।

उक्खेवणवक्खेवण-संकुचण-पसारण-गमणागमणं।
पणहा कम्मं संजोग-विभाग-मूलहेदू अस्स।।92।।

यह कर्म पाँच प्रकार का होता है-उत्क्षेपण, अवक्षेपण, सङ्कुचन, प्रसारण व गमनागमन। संयोग व विभाग ये दो गुण-इसके मूल हेतु हैं।

संकुचणे संजोगो, विभागो अणूणं च पसारणम्मि।
इगखेत्तादु विभागो, विदियेणं तिसुं संजोगो।।93।।

सङ्कुचन में अणुओं का संयोग, प्रसारण में उनका विभाग व शेष तीन में एक क्षेत्र से विभाग व दूसरे के साथ संयोग होता है।

सामण्णं णिच्चमेग-मणेगणुगदं गवे गोत्तादीव।
तं हि जादी दव्वगुण-कम्मेसुं च समवायेणं।।94।।

सामान्य नित्य, एक व अनेकानुगत है। जैसे (अनुगत प्रत्यय के कारण) गाय में गोत्व आदि धर्म सामान्य है। (यह सामान्य छिन्नों में भी अच्छिन्न होने से नित्य एवं भिन्न व्यक्तियों में भी अभिन्न होने से एक है।) यह सामान्य ही जाति भी कहलाता है जो द्रव्य, गुण व कर्म में समवाय से होता है।

सामण्णं दु सम-जादि-दव्वेसु पुध-पुध हवणत्तादो य।
संखाइअणंत-विभू,णिच्चंअणिच्चेसु-मणिच्चं॥95॥

समानजातीय-द्रव्यों में पृथक्-पृथक् रहने से यह सामान्य नामक पदार्थ सङ्ख्या में अनन्त है, विभु है। स्वयं नित्य होते हुए भी अनित्य द्रव्यों में अनित्य है।

दव्वादीसु समवाय-संबंधेणं विसेसो पदत्थो।
हवेदि विभू णिच्चो य, अणंतो दु इमो संखाए॥96॥

विशेष नामक पदार्थ भी द्रव्यादि में समवाय सम्बन्ध से रहता है। यह सङ्ख्या में अनन्त, विभु व नित्य है।

अवयव-अवयवि-गुण-गुणि-जादि-वत्ति-आदीणं संबंधो।
अजुदसिद्ध-समवायो, एगो णिच्चो तहा विभू दु॥97॥

अवयव-अवयवी, गुण-गुणी, जाति-व्यक्ति आदि का अयुत-सिद्ध सम्बन्ध 'समवाय' कहलाता है। यह तत्त्व एक, नित्य व विभु है।

पदत्थेगस्स विदिये, अणुवट्ठिदी अभावो चदुविहो य।
पागपद्धंसच्चंत-अण्णोण्णाणं च भेयादो॥98॥

एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ में अनुपस्थिति अभाव है। यह अभाव चार प्रकार का है—प्राग्भाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव।

पागाभावो पुव्वे, अभावो वट्टमाणपज्जायस्स।
पद्धंसो दु भावि-पज्जाए वट्टमाण-अभावो।।99।।

वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव प्राग्भाव तथा भावी पर्याय में वर्तमान पर्याय का अभाव प्रध्वंसाभाव है।

इदरदव्वे अभावो, दव्वेगस्स दु अच्चंताभावो।
आयासम्मि पुप्फं व, तिक्कालम्मि तह तिलोयम्मि।।100।।

तीनों कालों व तीनों लोकों में आकाश पुष्प के समान एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अभाव अत्यन्ताभाव है।

पाग-पद्धंसच्चंत-अभावं वइसेसिगो संगच्छदि।
सिआवायी खलु किण्णु, अण्णोण्णाभावं पि णिच्चं।।101।।

वैशेषिक प्राग्भाव, प्रध्वंसाभाव व अत्यन्ताभाव को स्वीकार करते हैं, किन्तु स्याद्वादी नित्य अन्योन्याभाव भी स्वीकार करते हैं।

इगसंपइपज्जाए पोग्गलस्स सया इदरपोग्गलस्स।
वट्टमाणपज्जायाभावो अण्णोण्णाभावो दु।।102।।

पुद्गल की एक वर्तमान पर्याय में सदा दूसरे पुद्गल की वर्तमान पर्याय का अभाव अन्योन्याभाव है।

वइसेसिगे बेविहं, णाणं विज्जा-अविज्जा-भेयादु।
संसय-विपज्जय-अणज्झवसाय-जुद-णाण-मविज्जा॥103॥

वैशेषिक मत में विद्या व अविद्या के भेद से ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय से युक्त ज्ञान अविद्या है।

णेव तम्हा पमा तं, पुण विज्जा चदुविहा मुणेदव्वा।
अक्ख-पच्चक्खणुमाण-माणस सिमदि-अस्सणाणं च॥104॥

अतः वह अविद्या प्रमा नहीं है। पुनः विद्या चार प्रकार की जाननी चाहिए-इन्द्रिय प्रत्यक्ष, अनुमान, मानस स्मृति व आर्ष या योगज ज्ञान।

एदेसुं वि पमाणं, पच्चक्खं अणुमाणं तहा दोण्णि।
पच्चक्ख-मक्खणाणं, लिंगदंसणं च अणुमाणं॥105॥

इनमें भी यह प्रमाण केवल दो हैं-प्रत्यक्ष व अनुमान। इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष है एवं लिङ्ग का दर्शन अनुमान है।

ईसरो परमसत्ता, परमाणु-अप्पा ववत्थिदं कट्टु।
सिट्ठिं रयदि कम्मफल-दायगो कम्माणुसारेण॥106॥

ईश्वर परम सत्ता है, जो परमाणु और आत्मा को व्यवस्थित करके सृष्टि की रचना करता है और जीवों के कर्मों के अनुसार उनको कर्मों का फल देता है।

पुणज्जम्म-चक्कंतो, अण्णाण-जणिद-कंख-कम्मंतादु।
तच्चणाणेण मोक्खो, वइसेसिग-दंसणे इमम्मि॥107॥

तत्त्वज्ञान से अज्ञान जनित आकांक्षाओं का अन्त व कर्म का अन्त होता है, उससे पुनर्जन्म के चक्र का अन्त होता है। वैशेषिक दर्शन में यही मोक्ष है।

बुद्धिदोसइच्छा-सुह-दुह-पययण-सक्कारेसु णासेसु।
अप्पा पावदि मोक्खं, वइसेसिगे वा केवल्लं॥108॥

बुद्धि, द्वेष, इच्छा, सुख, दु:ख, प्रत्यन व संस्कारों के भी नाश होने पर आत्मा के मोक्ष वा कैवल्य की प्राप्ति होती है।

वैशेषिक दर्शन समीक्षा

अवयव-अवयवी-दव्व-गुण-कम्मादी दु सव्वहा भिण्णा।
वइसेसिग-मदे किण्णु, णेव जुत्तो कयावि जम्हा॥109॥

सयं णिरासयत्तादु, भेदंति ते जेण पुधत्त-गुणेण।
सत्ताहीणोहु गुणो,दव्वादीदो पुधत्तादो॥110॥(जुम्मं)

अवयव-अवयवी, द्रव्य-गुण-कर्मादि वैशेषिक मत में सर्वथा भिन्न हैं किन्तु ये कदापि युक्त नहीं है। क्योंकि जिस पृथक्त्व गुण से वे भेद करते हैं, वह स्वयं निराश्रय होने से असत् हो जाएगा। अत: द्रव्य से पृथक्त्व होने से वह गुण असत् है।

जदि सीसेदि अभिण्णं, पुधत्तं हु तादो दव्वादो तो।
किं गुणकम्माइं णो, अभिण्णं संगच्छेदि पुणो॥111॥

यदि वैशेषिक कहते हैं कि वह पृथक्त्व गुण उस द्रव्य से अभिन्न है तो गुण-द्रव्य, कर्मादि को पुनः अभिन्न स्वीकार क्यों नहीं करते?

एगत्तेण विणा णो, पुधत्तं तेण विणा ण एगत्तं।
अणवय-वदिरेगोव्व दु, उहयेणं हि पदत्थ-सिद्धी॥112॥

अन्वय और व्यतिरेक के समान एकत्व के बिना पृथक्त्व और पृथक्त्व के बिना एकत्व नहीं होता। एकत्व-पृथक्त्व दोनों से ही पदार्थ की सिद्धि होती है।

सव्वहाभिण्ण-मणणेसु, कारण-कज्जेसु गुणगुणि-आदीसु।
अस्स कारणं य गुणो, वित्ती जो संभवो कया वि॥113॥

धम्म-धम्मिम्मि तहा, सव्वहा खलु भिण्ण-मणणम्मि तत्थ।
णेवसंभवोकयावि,विसेस्स-विसेसण-भावो चिय॥114॥(जुम्मं)

धर्म व धर्मी के सर्वथा अभिन्न मानने पर कारण-कार्य, गुण-गुणी आदि में परस्पर 'यह इसका कारण है और यह इसका गुण है' इस प्रकार की वृत्ति कदापि संभव नहीं हो सकेगी। धर्म-धर्मी को सर्वथा भिन्न मानने से विशेष्य-विशेषण भाव घटित नहीं हो सकते।

जदि सव्वहा हि भिण्णो , तो दव्वादु पुध णिरासयत्तादु।
गुणो असदो खलु तहा , दव्वो इगकप्पणामेत्तो॥115॥

यदि द्रव्य से गुण सर्वथा भिन्न ही मानेंगे तो द्रव्य से पृथक् रहने वाला गुण निराश्रय होने से असत् हो जाएगा और गुण से पृथक् रहने वाला द्रव्य एक कल्पना मात्र ही रह जाएगा।

अप्पा एगो दव्वो, णाणं तस्स गुणो संविदिदव्वो।
पुधमत्तादु अप्पादु, अप्पो जडो तदा मेत्तं हि॥116॥

आत्मा एक द्रव्य है और ज्ञान उसका गुण जानना चाहिए। आत्मा से वह ज्ञान पृथक होने से, तब वह आत्मा मात्र जड़ ही रह जाएगा।

पज्जयविजुत्तदव्वो, दव्वविजुत्तो चिय पज्जयो णत्थि।
तं गुणपज्जायाणं, णेव भिण्णा-सत्ता कया वि॥117॥

पर्याय से रहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती इसलिए गुण व पर्यायों की भिन्न सत्ता कदापि नहीं होती।

जदि कहदि वइसेसिगो, पडिभासदि संजोग-संबंधेण।
अभिण्णो जह दव्वगुणवंतो दु गुण-संजोगेणं॥118॥

यदि वैशेषिक कहते हैं कि ये द्रव्य-गुण संयोग सम्बन्ध से अभिन्न प्रतिभासित होते हैं जैसे गुण के संयोग से द्रव्य गुणवान् होता है

तो दरिसेदि दूसिदं, जह घडो पडं हविदुमसक्को सय।
गुणो दव्वं हवेदुं, तह असक्को सया सव्वत्थ॥119॥

तो यह भी दूषित दिखाई देता है। जैसे घट, पट होने में सदा अशक्य है। इसी प्रकार गुण, द्रव्य होने में सदा सर्वत्र अशक्य है।

उण्हत्तवंत - अग्गी, खमो उण्हत्तधम्म - संजोगेण।
किण्णु णेव उण्हो तं, संजोगसंबंध-विरुद्धो॥120॥

उष्णत्व धर्म के संयोग से अग्नि उष्णत्वान् तो हो सकती है किन्तु उष्ण नहीं, अतः संयोग संबंध विरुद्ध है।

गुणगुणीसुं णेव जुदसिद्धत्तं च दंडदंडीव कहं।
णिक्किरिय-गुणा चिय, संजोगस्स आगच्छदि दव्वे॥121॥

गुण-गुणी में दण्ड-दण्डीवत् युतसिद्धत्व भी मान लें, तो वह निष्क्रिय गुण संयोग के लिए द्रव्य में स्वयं कैसे आएगा?

संजोग-संबंधो हि, दोपुधसत्ता-धारग-पदत्थेसु।
दव्वो गुणो भिण्णो य, अपसिद्धो तं ण संजोगो॥122॥

दूसरी बात यह है कि संयोग सम्बन्ध दो पृथक सत्ताधारी पदार्थों में होता है। (जैसे-टोपी और मनुष्य) किन्तु यहाँ द्रव्य व गुण भिन्न सत्ताधारी पदार्थ प्रसिद्ध नहीं हैं, अतः संयोग होना सम्भव नहीं है।

उण्हजोगेण अग्गी, उण्हो तो उण्हगुणो कह-मुण्हो।
अण्णुण्हगुणजोगेण, जदि तो अणवत्थादोसो दु॥123॥

यदि ऊष्ण गुण के संयोग से अग्नि उष्ण होती है तो वह उष्ण गुण भी कैसे ऊष्ण होता है। यदि अन्य उष्ण गुण के संयोग से ऊष्ण होता है तो ऐसा मानने से अनवस्था दोष आता है।

सगलक्खणहीण-दव्व-गुण-जोगेणं गुणि-दव्वो जणेज्ज।
जदि तो बे अंधगेसु, मिलणेसु इगणेत्तवंतो वि॥124॥

यदि अपने लक्षण से हीन द्रव्य व गुण के संयोग से एक गुणवान द्रव्य उत्पन्न हो सकता है, तो दो अंधों के मिलने से एक नेत्रवान हो जाना चाहिए।

जह दीवसंजोगो ण, देज्ज दिट्ठिं जम्मंधगस्स कस्स।
तह णिग्गुणपदत्थे वि, गुणो णो अणुवट्ठिदसत्तिं॥125॥

जैसे दीप का संयोग किसी जन्मान्ध व्यक्ति को दृष्टि प्रदान नहीं कर सकता, उसी प्रकार गुण किसी निर्गुण पदार्थ में अनुपस्थित शक्ति को उत्पन्न नहीं कर सकता।

जदि कहदि ण संजोगो, किण्णु समवाय-संबंधो तेसु वि।
तो ण संभवो वण्णिद-समवायसरूवो असिद्धो॥126॥

यदि वैशेषिक कहते हैं कि गुण व गुणी में संयोग सम्बन्ध नहीं है, बल्कि उनमें समवाय सम्बन्ध है तो यह भी संभव नहीं है क्योंकि वैशेषिक द्वारा वर्णित समवाय का स्वरूप ही सिद्ध नहीं होता।

जदि तं संगच्छेज्ज वि, तो दव्वादो पुध-समवायेणं।
गुणदव्व-संबंधो य, कहं संभवो तं एसो ण॥127॥

और यदि उसे स्वीकार भी कर लिया जाए, तो द्रव्य से पृथक समवाय से गुण व द्रव्य का सम्बन्ध कैसे संभव हो सकता है? अतः ऐसा नहीं है।

सामण्ण-समवायाण, णेव सव्वहा संबंधो कयावि।
तेहिं सह अत्थो णो, संबद्धो तिण्णि खपुप्फं व॥128॥

सामान्य और समवाय का सर्वथा ही परस्पर में कदापि कोई संबंध नहीं है। उन दोनों के साथ अर्थ का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। तब पुनः समवाय, सामान्य व पदार्थ तीनों ही आकाशपुष्प के समान असत् होंगे।

णेव समवायेगस्स, वित्ती संभवो अणेगत्थेसुं।
जदि कहदि समवाय-संबंधेण दव्वो गुणवंतो॥129॥

दूसरी बात यह है कि एक समवाय पदार्थ की अनेकों में वृत्ति संभव नहीं है। यदि फिर कहते हैं कि समवाय सम्बन्ध से द्रव्य गुणवान होता है।

पुच्छदि जइणाइरियो, तस्स पुव्वे सो गुणि-णिग्गुणी वा।
दव्वो सुगुणी तो, णावसियो समवायसंबंधो॥130॥

तो जैनाचार्य पूछते हैं कि उसके पूर्व वह द्रव्य गुणी था या निर्गुणी। यदि द्रव्य गुणवान था तो उसका समवाय सम्बन्ध आवश्यक नहीं है।

जदि णिग्गुणी तो कहं, गुणसंबंधेणं गुणवंतो जं।
कस्सिं पि अत्थे असद-सत्तीइ उप्पाद-असक्को॥131॥

और यदि निर्गुणी था तो गुण के सम्बन्ध से वह गुणवान कैसे बनेगा, क्योंकि किसी भी पदार्थ में असत् शक्ति का उत्पाद अशक्य है।

घडम्मि वि चेयणाए, पसंगत्तादो णेव संभवो दु।
णाण-संबंधो सया, जीवेण सह णो घडपडेहि॥132॥

(और यदि असत् शक्ति का उत्पाद मानेंगे तो) घट में भी चेतना का प्रसंग आ जाएगा अतः यह असंभव है। ज्ञान का सम्बन्ध सदा जीव के साथ ही है, घट-पटादि के साथ नहीं।

जदि सीसेदि समवाय-संबंधो स-समवायिकारणे हि।
करावेदि गुणस्स संबंधं तं उत्त-दूसणं ण।।133।।

तो पुच्छदि आइरियो, दव्वस्स णेव णियसरूवो जदा।
गुणसंबंध-पुव्वम्मि,तरिहि समवायिकारणंकिं।।134।।(जुम्मं)

यदि कहते हैं कि समवाय सम्बन्ध अपने समवायि कारण में ही गुण सम्बन्ध कराता है, इसलिए उपर्युक्त दोष नहीं आता तो आचार्य पूछते हैं कि गुण का सम्बन्ध होने से पहले जब द्रव्य का अपना कोई स्वरूप है ही नहीं तो समवायिकारण ही किसे कहोगे।

दव्वो णेव गुणो तह, गुणो णेव पज्जयो कया वि।
कयाइ भिण्णत्तं अवि, संगच्छामो सव्वहा जो।।135।।

द्रव्य कभी गुण नहीं होते और गुण पर्याय नहीं होती। कदाचित् भिन्नता को तो हम भी स्वीकार करते हैं किन्तु सर्वथा भिन्न को हम स्याद्वादी स्वीकार नहीं करते।

गुणा दव्वासिदा खलु, धम्मिं विणा धम्मो य तं धम्मी।
असंभवो तं कयाइ, अभिण्णत्तं संगच्छामो।।136।।

गुण निश्चय से द्रव्य के आश्रित होते हैं। धर्मी के बिना धर्म असंभव है और धर्म के बिना धर्मी असंभव है। अतः हम स्याद्वादी कदाचित् अभिन्नत्व को स्वीकार करते हैं।

सिरीजिणिंदमदम्मि हि, भिण्णाभिण्णत्थ-सिद्धी इत्थं च।
सिआवाय सिद्धीए, वइसेसिगवत्थुं ख-सुमं व।।137।।

इस प्रकार श्री जिनेंद्र प्रभु के मत में स्याद्वाद की सिद्धि से भिन्नाभिन्न पदार्थों की सिद्धि होती है। और स्याद्वाद के बिना वैशेषिकों की मान्य वस्तु आकाश के पुष्प के समान असत् है।

इत्थं समवायस्स दु, ण वित्ती सगवरे समवायीसुं।
उवयारेण ण सिद्धी, उवयारणिमित्ताभावादु।।138।।

इस प्रकार स्व और पर में समवाय की समवायियों में वृत्ति नहीं होगी। और उपचार के निमित्त का अभाव होने से उपचार से भी समवाय की सिद्धि नहीं होती।

समवायसुण्णदेसे, असंभवो सो समवायासदादु।
दिसादीणं पि इत्थं, आसिदत्तपसंगादो खलु।।139।।

समवाय शून्य देश में वह समवाय असंभव होता है। इस प्रकार करने पर समवाय असत् होता है। क्योंकि दिशा आदि के भी इस प्रकार आश्रितपने का प्रसंग आता है। (अतः उपचार से भी समवाय के आश्रितपना नहीं होता।)

कहदे अणासिदो तो, णेव संबंधो अणासिदत्तादु।
जह दिसादी सव्वत्थ-समवायो अणासिदो होदि।।140।।

यदि कहते हैं कि वह अनाश्रित है तो अनाश्रितपना होने से सम्बन्ध ही नहीं होता, जैसे दिशा आदि और सर्वथा समवाय अनाश्रित होता है।

समवाय-संबंधो ण, परमदस्स असंभवे समवाये।
संबंधाभावादो, अववत्थिद-वत्थु-मेगंते॥141॥

अतः परमत के समवाय सम्बन्ध नहीं होता। समवाय के असंभव होने पर सम्बन्ध का अभाव होता है जिससे एकांतवादी मत में वस्तु तत्त्व भेद किंचित भी व्यवस्थित नहीं होता।

परमाणु-संजोगम्मि, अभावम्मि चिय अवयवी असिद्धा।
अभावो य कज्जरूव-चदुट्ठयस्स तम्मि अभावे॥142॥

तस्स दु कारण-चदुविह-परमाणू णेव संभवो जं णो।
कज्जलिंगत्तादो दु, ण कारणस्स सिद्धी कयावि॥143॥

परमाणु के संयोग का अभाव होने पर (अणु आदि) अवयवी की सिद्धि नहीं होती, कार्य रूप चतुष्टय का अभाव होता है और उस कार्यरूप चतुष्टय का अभाव होने पर उसके कारण रूप चार प्रकार के परमाणुओं की भी संभावना नहीं होती क्योंकि कार्यलिंगपने से कारण की सिद्धि कदापि नहीं होती।

कज्जभंतीइ अणुस्स, भंती कज्जलिंगं कारणं जं।
भूदचउक्क-असत्ते, परपराइपच्चयापायादु॥144॥

कार्य की भ्रान्ति होने से अणु की भ्रान्ति होती है क्योंकि कार्यलिंग ही कारण होता है। उसी प्रकार भूत-चतुष्टय की सत्ता नहीं होने पर पर-पर आदि प्रत्यय का अपाय होता है।

इदं इमादो पुव्वे, आइपच्चयाभावे णो सिद्धी।
कालदिसादीण तहा, एव भेरीदंडणहाणं॥145॥

संजोगे अभावम्मि, संजोगजसद्दाण अपुप्पत्ती।
सय अवयव-संजोगे, अभावे अवयवविभागस्स॥146॥

विभागज-सद्दस्स अवि, उहयसद्दणुप्पत्तीइ असक्का।
सद्दज-सद्द-सिद्धीय, जादु हाणी गगणसिद्धीइ॥147॥(तिगं)

यह इससे पूर्व में है इत्यादि प्रत्यय का अभाव होने पर काल-दिशादि की सिद्धि नहीं होती। उसी प्रकार भेरी, दंड, आकाश के संयोग का अभाव होने पर संयोगज शब्दों की उत्पत्ति नहीं होती। और सर्वत्र अवयव संयोग का अभाव होने पर अवयव विभाग की भी उत्पत्ति नहीं होती। विभागज शब्द की सिद्धि नहीं होती। संयोगज और विभागज उभय शब्द की उत्पत्ति नहीं होने पर शब्दज और शब्द की सिद्धि अशक्य है। जिससे आकाश सिद्धि की हानि होती है।

अप्पमणसंजोगो य, असिद्धो णाणाइगुणा असिद्धा।
णाणाइ-अभावादो, अप्पस्स सुण्णत्तादो खलु॥148॥

उसी प्रकार आत्मा और मन संयोग की सिद्धि नहीं होती और बुद्धि आदि गुणों की भी सिद्धि नहीं होती, और ज्ञानादि के अभाव होने पर आत्मा की शून्यता का प्रसंग प्राप्त होता है।

अप्पे गुणा जणंते, मणजोगेणं दिट्ठविरुद्धो सो।
जदि एरिसो तो सव्व-मणधारगा चिय गुणवंता॥149॥

आत्मा में गुण मन के संयोग से उत्पन्न होते हैं। यह दृष्ट विरुद्ध है। यदि ऐसा हो तो सभी मन धारक गुणवान ही हो जाएँगे।

मणरहिदा दु णाणाइगुण-वज्जिदा सय मणाभावादो।
णाणाइगुणहाणीइ, अप्पासुण्णत्तपसंगादु।।150।।

और मन रहित जीव मन का अभाव होने से ज्ञानादि गुणों से रहित होंगे, एवं ज्ञानादि गुणों की हानि से आत्मा की शून्यता का प्रसंग प्राप्त होता है।

संजोगे अभावम्मि, सव्वदव्वाभावो सया आहो।
समवायाभावे णो, संभवो सत्तासमवायो।।151।।

संयोग का अभाव होने से सदा सर्व द्रव्यों का अभाव होता है। अथवा समवाय का अभाव होने पर सत्ता समवाय संभव नहीं है।

सव्वदव्वहाणिपसंगत्तादु सत्तसमवायाभावे।
असिद्धी तदासिदगुण-कम्म-सामण्णविसेसाणं।।152।।

सत्ता समवाय का अभाव होने पर सभी द्रव्यों की हानि का प्रसंग प्राप्त होता है, जिससे उसके आश्रित गुण कर्म सामान्य विशेषों की सिद्धि नहीं होती।

अवयवावयवी सयं, असिद्धा इत्थं सव्वहा भिण्णा।
जदि सिआ संगच्छदे, तो इट्ठो सिआवायीणं।।153।।

इस प्रकार सर्वथा भिन्न अवयव-अवयवी आदि स्वयं सिद्ध नहीं होते। यदि वैशेषिक कथंचित् स्वीकार करते हैं तो यह स्याद्वादियों के लिए इष्ट है।

जयदु जिणिंद-मदं तं, जस्सिं भेदाभेद-वत्थुकहणं।
तिक्काले तिल्लोए, जिणमदं व अण्णमदं णेव॥154॥

जिसमें भेदाभेद वस्तुतत्त्व का कथन है, वह जिनेन्द्र मत सदा जयवंत होवे। तीनों कालों व तीनों लोकों में जिनेन्द्र मत के समान अन्य कोई भी मत नहीं है।

ईसरो सिट्ठिकता, मण्णेदि तो अणुमाणविरुद्धो हि।
सरीराइ-रहिदादो, कारण-कज्ज-हेदु-असिद्धो॥155॥

यदि ये ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानते हैं, तो यह अनुमान से विरोध को प्राप्त होता है। उनके शरीरादि के रहित होने से कार्य-कारण हेतु असिद्ध होता है, अर्थात् ईश्वर शरीरादि का कर्ता नहीं होता।

कम्माचेयणत्तादु, तस्स कम्मणिमित्तत्त-विरोहादु।
कम्मं अचेयणं तह, तस्स णिमित्तमीसर - इदरो॥156॥

दिट्ठंत-वदिक्कमो य, दोसो अत्थ तं विरुद्धो णिच्चं।
जदि ईसरकतत्तं, इट्ठो तुज्झ हठेण तो कह॥157॥ (जुम्मं)

इसी प्रकार निमित्त भाव में कर्म के अचेतनपना होने पर भी उसके कर्म के निमित्तपने का विरोध होता है। कर्म अचेतन है और उसका निमित्त कारण ईश्वर इतर अर्थात् चेतन है। ऐसे मानने पर यहाँ दृष्टान्त व्यतिक्रम दोष आता है। अतः ईश्वर के कर्तापना नित्य ही विरोध को प्राप्त होता है। यदि आपको हठपूर्वक ईश्वर का कर्तापना इष्ट है तो कहिए।

ईसरो पुण केण णिम्माणिदो तस्स णिम्माणगो को य।
पुणो तस्स को इत्थं, अणवत्थादोसदूसिदो हु॥158॥

ईश्वर को किसने बनाया और उसका निर्माता कौन है। पुनः उसका निर्माता कौन है? इस प्रकार यह अनवस्था दोष से दूषित है।

जदि कहदि वइसेसिगो, सहावादो ईसरो णिप्पण्णो।
सिट्ठी हि सहावादो, णिप्पण्णा चिय तो किं णेव॥159॥

यदि वैशेषिक कहते हैं कि ईश्वर स्वभाव से निष्पन्न है, तो फिर सृष्टि ही स्वभाव से निष्पन्न क्यों नहीं है?

वा पाणीणं किलेस-पीडा-विग्घ-दुक्खाइ-कता को।
ईसरो हु असंभवो, जं असव्वण्हु-मुणिणा विसय॥160॥

अथवा प्राणियों के क्लेश, पीड़ा, विघ्न, दुःख आदि का कर्ता कौन है? ईश्वर तो असंभव है, क्योंकि वह तो एक असर्वज्ञ, रागद्वेष युक्त मुनि के द्वारा भी सदा असंभव है।

कहसि दुह-जणगो ण तो, पाव-कतत्तादु दुह-हेदुत्तं।
तस्स सिद्धं दु इत्थं, सग-पक्ख-विरुद्ध-दोसो खलु॥161॥

यदि आप कहते हैं कि ईश्वर दुःख के उत्पादक नहीं है, तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि दुःख के हेतु पाप का कर्तापना होने से उस ईश्वर के ही दुःख का हेतुपना सिद्ध होता है। इस प्रकार उस वैशेषिक मत के स्वपक्ष का विरोध करने का दोष आता है।

णेव दुक्खकता सुह-कता वि णो विसेसाभावादो।
देहादीण अकत्ता, तं ईसरो सिट्ठि-अकता।।162।।

ईश्वर दुःख का कर्ता नहीं है, सुख का भी कर्ता नहीं है। क्योंकि सुख-कर्ता हो और दुःख का नहीं, ऐसे विशेषों का अभाव होता है। वह ईश्वर शरीर आदि का भी कर्ता नहीं है। अतः ईश्वर सृष्टि का कर्ता नहीं है।

न्याय दर्शन

णायदंसणस्स मूल-पवट्टग-अक्खपाद-गोदम-रिसी।
मूलगंथो णायसुत्तं यालो य वइसेसिगोव्व॥163॥

न्यायदर्शन के मूल प्रवर्तक ऋषि अक्षपाद गौतम हैं। उन नैयायिकों का मूलग्रन्थ 'न्यायसूत्र' जानना चाहिए। इस न्यायदर्शन का काल भी वैशेषिकों के समान ही है।

णायं पमाण-पहाण-मह वइसेसिगं पमेय-पहाणं।
तच्चिगदिट्ठीइ णाय-मदं वइसेसिगंव णेयो॥164॥

न्याय प्रमाणप्रधान है और वैशेषिक प्रमेयप्रधान है। तत्त्व की एक दृष्टि से न्यायदर्शन वैशेषिक के समान ही जानना चाहिए।

अक्खादीद-सुहुमाण, तच्चाण तक्कदारेण सिद्धी।
अस्स मुक्ख-पओजणं, मणिज्जेदि णायदंसणस्स॥165॥

इन्द्रियातीत सूक्ष्म तत्त्वों की तर्क द्वारा सिद्धि करना इस न्यायदर्शन का मुख्य प्रयोजन माना जाता है।

अस्सिं सोल-पदत्था, पणरसा य णाय-तक्क-विसयगा दु।
केवलं एग-तच्चं, पमेयविसयगं णादव्वं॥166॥

इसमें सोलह पदार्थ हैं जिनमें पन्द्रह न्याय व तर्क विषयक हैं और केवल एक तत्त्व प्रमेय विषयक जानना चाहिए।

पमाण-पमेय-संसय-पओजण-दिट्ठंत-सिद्धंता तह।
अवयव-तक्क-णिण्णया-वाद-जप्प-वितंडा णेया॥167॥

हेच्चाभास-छल-जादि-णिग्गहट्ठाण-सोलस-पदत्था य।
णो णूणा णो अहिया, णायदंसणे पदत्थिमा दु॥168॥ (जुम्मं)

वे सोलह पदार्थ इस प्रकार जानने चाहिए—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति व निग्रहस्थान। न्यायदर्शन में ये पदार्थ न इससे कम हैं न ज्यादा।

सुमरदि-भिण्णं अणुभव-णाणं चिय पमा दंसणे अस्सिं।
पमाकारण-पमाणं, चदुविहं हि तं मुणेदव्वं॥169॥

भेयादो हु पच्चक्ख-अणुमाण-उवमाण-सद्दाण तहा।
बज्झक्खेहि पच्चक्ख-मंतरेहि परोक्खं गहदे॥170॥ (जुम्मं)

स्मृतिभिन्न अनुभव ज्ञान ही इस दर्शन में प्रमा है। प्रमा या यथार्थ ज्ञान का कारण प्रमाण है। वह प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान व शब्द के भेद से चार प्रकार का जानना चाहिए। बाह्य इन्द्रियों से प्रत्यक्ष और अभ्यन्तर इन्द्रिय (मन) से परोक्ष का ग्रहण होता है।

इंदियस्स मणस्स वा, अत्थेणं सह सण्णिकस्स-पच्छा।
इदं किंचि णाणमिदं भासिदं पच्चक्ख-पमाणं॥171॥

इन्द्रिय का अथवा मन का अर्थ के साथ सन्निकर्ष होने के पश्चात् ''यह कुछ है'' यह ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण कहा गया है।

सिद्धो णइयायिगम्मि जोगज-पच्चक्खं वइसेसिगे ण।
इंदियमणणिरवेक्खो, केवलं जोग-साहणाए॥172॥

नैयायिक में योगज प्रत्यक्ष भी होता है। किन्तु वैशेषिक मत में इसे प्रमाण नहीं मानते। यह योगजप्रत्यक्ष इन्द्रिय व मन के निरपेक्ष केवल योग साधना द्वारा स्वतः सिद्ध है।

वत्तीइ अत्थबोहग-लिंगस्स तिदियणाणं परामरिसो।
लिंगपरामरिसो खलु, अणुमाणं च संविदिदव्वं॥173॥

व्याप्ति से अर्थ का बोध कराने वाला लिङ्ग है एवं उस लिङ्ग का तृतीय ज्ञान परामर्श है और लिङ्ग के परामर्श को ही अनुमान जानना चाहिए। (जहाँ अग्नि वहाँ धूम, यहाँ धूम अग्नि का लिङ्ग है। एवं रसोई आदि में बार-बार धूम देखकर अग्नि को देखने से, उनकी व्याप्ति का बार-बार निश्चय प्रथम दर्शन है। व्याप्ति ग्रहण के पश्चात् पर्वतादि में धूम का दर्शन द्वितीय दर्शन है और धूम व अग्नि की व्याप्ति के स्मरण के बाद होने वाला ज्ञान तृतीय दर्शन है।)

लिंगादु लिंगि-णाणं, अणुमाणं वा तिविहं पुव्ववदं।
सेसवदं च सामण्णदो दिट्ठं दु संविदिदव्वं॥174॥

अथवा लिङ्ग से लिङ्गी के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। यह अनुमान तीन प्रकार का होता है-पूर्ववत्, शेषवत् व सामान्यतोदृष्ट, इस प्रकार जानना चाहिए।

कारणादो कज्जस्स, अणुमाणं पुव्ववदं णादव्वं।
जह पज्जण्णं पस्सिय, वरिसाए हंदि अणुमाणं॥175॥

कारण से कार्य का अनुमान 'पूर्ववत्' जानना चाहिए। यथा–बादल को देखकर वर्षा का अनुमान।

कज्जादो कारणस्स, अणुमाणं सेसवदं णादव्वं।
जह णदि-पूरं पस्सिय, पुव्व-वरिसाए अणुमाणं।।176।।

कार्य से कारण का अनुमान 'शेषवत्' जानना चाहिए। यथा–नदी का पूर देखकर पूर्व में हो चुकी वर्षा का अनुमान।

परिसेसणायेणं दु, णिदंसणं णिइय पुण्णत्थणाणं।
आइ-सव्वा गब्भिदा, सेसवदम्मि संविदिदव्वा।।177।।

परिशेष न्याय से नमूने को देखकर संपूर्ण वस्तु का ज्ञान आदि सभी 'शेषवत्' में गर्भित जानने चाहिए।

एगंबरुक्खम्मि पस्सिय मंजरिं सयलंबरुक्खेसुं।
मंजरि-अणुमाणं चिय, सामण्णदो दिट्ठं णेयं।।178।।

एक आम्र वृक्ष में मञ्जरी देखकर सकल आम्र वृक्षों में मञ्जरी का अनुमान 'सामान्यतोदृष्ट' जानना चाहिए।

अणुमाणं बेविहं हु, भेयादो चिय सत्थ-परत्थाणं।
सत्थं लिंगे पच्चक्खे सयं लिंगि-णाणं जाण।।179।।

अथवा स्वार्थ व परार्थ के भेद से भी अनुमान दो प्रकार का जानना चाहिए। लिङ्ग के प्रत्यक्ष होने पर स्वयं लिङ्गी का ज्ञान हो जाना 'स्वार्थानुमान' है।

तक्क-हेदु-आदीहिं, परबोहेण होदि जं णाणं तं।
परत्थाणुमाणं चिय, भासिदं दु णायविण्णूहिं।।180।।

तर्क व हेतु आदि द्वारा जो ज्ञान दूसरे के समझाने से होता है वह 'परार्थानुमान' कहलाता है। ऐसा न्यायविज्ञों के द्वारा कहा गया है।

पुव्वपरिइद-अत्थस्स, उवमाए बोहणं अपरिइदस्स।
उवमाणं णादव्वं, जहा गवोव्व गवयो णिच्चं॥181॥

किसी पूर्व परिचित पदार्थ की उपमा से अपरिचित वस्तु का ज्ञान कराना नित्य उपमान जानना चाहिए। जैसे—गाय के समान गवय होता है।

अत्तवयणं पणीद-वेदाइसत्थं सद्द-पमाणं दु।
एवंविह चउविहं हु, पमाण-मस्सिं मदे णेयं॥182॥

आप्त वचन वा आप्त प्रणीत वेदादि शास्त्र ''शब्द'' प्रमाण हैं। इस प्रकार इस मत में चार प्रकार के प्रमाण जानने चाहिए।

णाणं हु बेविहं अवि, अणुभव-सुमरदीणं च भेयादो।
अक्ख-मण-संजोगेण, उप्पज्जदि अणुभवो जो सो॥183॥

अनुभव और स्मृति के भेद से ज्ञान दो प्रकार का भी है। जो इन्द्रिय व मन के संयोग से उत्पन्न होता है, वह अनुभव है।

अणुभव-सक्कारो चिय, सुमरदी कालंतर-ठाइत्तादु।
भवादो भवंतरं दु, गच्छेदि एरिसो मण्णेदि॥184॥

अनुभव का संस्कार ही स्मृति है, वह कालान्तर स्थायी होने के कारण भव से भवान्तर तक साथ जाता है, ऐसा मानते हैं।

वत्थुम्मि अणुरूवम्मि, उहयविहं णाणं सया जहत्थं।
तव्विवरीयं णाणं, अजहत्थं च संविदिदव्वं॥185॥

वस्तु के अनुरूप होने पर यह उभयविध ज्ञान सदा यथार्थ कहलाता है। उसके विपरीत ज्ञान अयथार्थ (अप्रमा) जानना चाहिए।

बारसविहा पमेया, अप्पा सरीरिंदियत्थ-बुद्धी य।
मणोपविट्टीदोसो,पेच्चभाव-फल-दुहपवग्गा॥186॥

प्रमेय तत्त्व बारह प्रकार का जानना चाहिए-आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मनस्, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दु:ख तथा अपवर्ग।

वइसेसिगोव्व अप्पा, बुद्धी मणो सया हि संविदिदव्वा।
सरीरं पविट्टि - अक्ख - सुहदुहादीण अहिट्ठाणं॥187॥

आत्मा, बुद्धि (ज्ञान) तथा मन का स्वरूप सदा वैशेषिक के समान जानना चाहिए। एवं शरीर-प्रवृत्ति, इन्द्रिय, सुख, दु:खादि का अधिष्ठान है।

इंदिया बेविहा खलु, अंतरंग-बहिरंग-भेयादो य।
मणो अंतरंगक्खं, बहिरंग-इंदियो दुविहो य॥188॥

णाणिंदिय-कम्मिंदिय-भेयादु पुण णाणिंदिया पणहा।
घाणो रसणा चक्खू, तहा इंदिया फास-सोदू॥189॥ (जुम्मं)

इद्रियाँ अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग के भेद से दो प्रकार की हैं। मन अन्तरङ्ग इन्द्रिय है एवं बहिरङ्ग इन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय के भेद से दो प्रकार की है। पुनः ज्ञानेन्द्रिय पाँच प्रकार की हैं-घ्राण, रसना, चक्षु, स्पर्श (त्वक्) व श्रोत्र इन्द्रिय।

वाग-पाणि-पाद-वाउ-उवट्ठाण कम्मक्खा कज्जाणि य।
वदणं गहणं चलणं, मलचागाणंदुवभोगो य॥190॥

वाक्, पाणि, पाद, वायु व उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। बोलना, ग्रहण करना, चलना, मल त्याग व आनन्दोपभोग ये क्रमशः कर्मेन्द्रियों के पाँच कार्य हैं।

बुद्धीइ अपवग्गंत-मट्ठ-अत्था चिय सुहदुहत्तादो।
ताणं हेदुत्तादो, जाण णाय-दंसणे अस्सिं॥191॥

सुख, दुःख तथा इनके हेतु होने के कारण बुद्धि से अपवर्ग पर्यन्त आठों ही इस न्यायदर्शन में 'अर्थ' कहे जाते हैं।

मण-वयण-काय-चेट्ठा, पविट्टी ताणं कारणभूदा य।
रायद्दोसमोहा य, दोसो अत्थ चिय बोहव्वो॥192॥

मन, वचन व काय की चेष्टा को प्रवृत्ति कहते हैं। उसके कारणभूत राग, द्वेष व मोह यहाँ दोष जानना चाहिए।

मिच्चु-पच्छा अप्पस्स, सरीरंतरे ठिदी पेच्चभावो।
सुहं दुहं पविट्टिफल-मणुऊलफलं सुहं णेयं॥193॥

मृत्यु के पश्चात् आत्मा की शरीरान्तर में स्थिति 'प्रेत्यभाव' है। सुख व दुःख प्रवृत्ति के फल हैं। अनुकूल फल सुख जानना चाहिए।

पडिऊलफल-दुक्खस्स, इगवीस-भेयादु संविदिदव्वा।
पणिंदिया मणो ताण, छव्विसया पुण ताणं जाण॥194॥

छव्विसयजण्णणाणं, सरीरं तज्जणिदं सुहं दुक्खं।
अपवग्गो मोक्खो तस्स सरूवो दु वइसेसिगोव्व॥195॥ (जुम्मं)

प्रतिकूल फल का नाम दुःख है। उसके इक्कीस भेद जानने चाहिए। पाँच इन्द्रिय, मन, छह इनके विषय, छह इनके विषयजन्य ज्ञान, शरीर, तज्जनित सुख व दुःख। पुनः अपवर्ग का अर्थ मोक्ष है जिसका स्वरूप वैशेषिक के समान है।

वइसेसिगोव्व दु सत्त-पदत्था ताण भेद-पभेदादी।
संगच्छदि कारण-कज्ज-ववत्थं ईसरं पलयं॥196॥

(द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय व अभाव) ये सातों पदार्थ तथा उनके भेद, प्रभेदादि, कारण- कार्यव्यवस्था, प्रलय व ईश्वर, ये सभी वैशेषिकों के अनुसार जानने चाहिए।

संसयो दु अणेग-कोडि-फासिद-णाणं ठाणू पुरिसो वा।
कज्जंतरपेरणा दु, पओजणं च संविदिदव्वं॥197॥

"यह स्थाणु है या पुरुष" इत्याकारक अनेक कोटि संस्पर्शित ज्ञान संशय कहलाता है। कार्य करने की अंतरंग प्रेरणा प्रयोजन है।

पक्ख-विपक्ख-उहयेहि, सम्मद-उदाहरणं दु दिट्ठंतो।
अणवय-वदिरेगाणं भेयादो बेविहो णेयो॥198॥

पक्ष व विपक्ष दोनों के द्वारा सम्मत उदाहरण 'दृष्टान्त' कहलाता है। यह अन्वय और व्यतिरेक के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए। अर्थात् अन्वय दृष्टान्त और व्यतिरेक दृष्टान्त।

अणवयी दिट्ठंतो हु, जत्थ साहणं दु तत्थ सज्झो अवि।
जह जत्थ जत्थ धूमो, तत्थ तत्थ अग्गी रसवई।।199।।

जहाँ साधन हो, वहाँ साध्य का भी सद्भाव होना अन्वयी दृष्टान्त कहलाता है। जैसे–जहाँ-जहाँ धुँआ वहाँ-वहाँ अग्नि। यथा–रसोईघर।

वदिरेगी दिट्ठंतो, जत्थ ण सज्झो तत्थ पि साहणं ण।
जत्थ जत्थ अग्गी णो, तत्थ तत्थ ण धूमो सरो हु।।200।।

जहाँ साध्य न हो वहाँ साधन का भी न होना व्यतिरेकी दृष्टान्त कहलाता है। जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं, वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं होना। यथा–तालाब।

सिद्धंतो पमाणेण, ओग्गहणं हंदि कस्स वि तत्थस्स।
तिक्काले तिल्लोए, पसिद्धाहिणंदणीयो सो।।201।।

प्रमाण द्वारा किसी तथ्य की स्वीकृति 'सिद्धान्त' कहलाती है। वह सिद्धान्त तीनों लोक में, तीनों कालों में प्रसिद्ध व अभिनन्दनीय है।

अणुमाणस्स अवयवो, पकिरियाए दु परत्थणुमाणस्स।
पउत्तवक्कं णेयो, णिच्छयेणं चिय पंचविहो।।202।।

पदिण्णा हेदू उदाहरणं उवणयो णिगमणं तहा दु।
णादव्वं गंथेहिं, सज्झ-णिद्देसणं पदिण्णा।।203।। (जुम्मं)

परार्थानुमान की प्रक्रिया में प्रयुक्त वाक्य उस अनुमान के अवयव कहलाते हैं। वह निश्चय से पाँच प्रकार का है–प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन। साध्य विषय का निर्देश करना ग्रन्थों से 'प्रतिज्ञा' जानना चाहिए।

जस्स हेदु-पुट्ठीए, उहयदिट्ठंतुवलद्धो सुहेदू।
धूमो हु सम्महेदू, जह पव्वये अणलसिद्धीइ॥204॥

जिस हेतु की पुष्टि में अन्वयी व व्यतिरेकी दोनों दृष्टान्त उपलब्ध हो सकें, वह सम्यक् 'हेतु' है। जैसे–पर्वत में अग्नि की सिद्धि के लिए धूम सम्यक् हेतु है।

हेदुस्स पण-अवयवा, पक्ख-सपक्ख-विपक्खवित्ती तहा।
अबाहिद-विसयो असद-पडिपक्खो कमसो जाणेज्ज॥205॥

पक्षवृत्ति, सपक्षवृत्ति, विपक्षवृत्ति, अबाधित विषय तथा असत्प्रतिपक्ष–ये क्रमशः हेतु के पाँच अवयव जानने चाहिए।

जत्थ सज्झस्स दु सिद्धि-करणं इट्ठो पक्खो सो जहा दु।
पव्वये अग्गिस्स जं, सिद्धी इट्ठो पक्खो अत्थ॥206॥

जहाँ साध्य की सिद्धि करना इष्ट है, वह 'पक्ष' है। यथा–क्योंकि यहाँ पर्वत में अग्नि की सिद्धि करना इष्ट है, वह 'पक्ष' है।

जत्थ सज्झ-सब्भावो, सपक्खो जहा महाणसं णेयो।
जत्थसज्झ-अभावादु,विपक्खोजहाजलासयोय॥207॥

जहाँ साध्य का सद्भाव है, वह सपक्ष जानना चाहिए, जैसे–रसोईघर। तथा जहाँ साध्य का अभाव है, वह विपक्ष जानना चाहिए, जैसे–जलाशय।

सब्भावो दु हेदुस्स, सपक्खे तस्स सपक्खवित्ती जह।
जाण धूम-सब्भावो, महाणसे णायदंसणम्मि॥208॥

सपक्ष में हेतु का सद्भाव उसकी सपक्षवृत्ति जाननी चाहिए। जैसे—रसोईघर में धूम का सद्भाव। न्यायदर्शन में ऐसा जानना चाहिए।

हेदुस्स चिय अभावो, विपक्खम्मि सा विपक्ख-वावित्ती।
जह धूमस्स अभावो, जलासयम्मि णइयाइगेसु॥209॥

नैयायिकों में हेतु का विपक्ष में न रहना विपक्ष व्यावृत्ति है। जैसे—जलाशय में धूम का न रहना।

बाहिद-विसयादो सदपडिवक्ख-हेच्चाभासादु रहिदो।
अबाहिद-विसयो असदपडिवक्खो हेदू णेयो हु॥210॥

बाधितविषय हेत्वाभास एवं सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास से रहित अबाधितविषय व असत्प्रतिपक्ष नामक हेतु जानने चाहिए।

तक्को हु अविणाभावि-वत्ति-णाणं मुणेदव्वो बुहेहि।
जह जत्थ जत्थ धूमो, तत्थ तत्थ वइस्साणरो दु॥211॥

अविनाभावी व्याप्ति का ज्ञान बुधजनों के द्वारा 'तर्क' जानना चाहिए। जैसे जहाँ-जहाँ धुँआ, वहाँ-वहाँ अग्नि।

सग-पक्ख-ठावणे पर-पक्ख-उट्ठावणे ठिदो विआरो।
उहयपक्खस्स जत्थ दु, सो णिण्णओ संविदिदव्वो॥212॥

स्वपक्ष का स्थापन और पर पक्ष का उत्थापन करने पर जहाँ उभयपक्ष का विचार स्थित हो जाए, उसे 'निर्णय' जानना चाहिए।

तच्चणिण्णयस्स सया, उद्देसेण कदवियारो आहो।
बेपक्खेसु विवादो, सच्चगवेसणाए वादो॥213॥

सदा तत्त्व के निर्णय के उद्देश्य से किया गया विचार वाद है अथवा सत्य की गवेषणा के लिए दो पक्षों में विवाद वाद है।

वत्ताहिपाय-कहणं परिवट्टणं किच्चा छलं णेयं।
तिविहं वाग-सामण्ण-उवयाराणं च भेयादो॥214॥

वक्ता के अभिप्राय को परिवर्तित (तोड़-मरोड़) करके कहना छल जानना चाहिए। वह वाक्, सामान्य और उपचार के भेद से तीन प्रकार का है।

विवरीय-अत्थ-कहणं, वत्ता-वयण-परिवट्टणं किच्चा।
वाग-छलं णादव्वं, णाय-दंसणाणुसारेणं॥215॥

वक्ता के वचन को परिवर्तित करके विपरीत अर्थ कहना न्यायदर्शन के अनुसार वाक् छल जानना चाहिए।

संभाविदत्थ-गहणं, सव्वत्थ समाण-रूवेणं सया।
सामण्ण-छलं विदियं, संविदिदव्वं बुहजणेहिं॥216॥

सर्वत्र समान रूप से सम्भावित अर्थ का ग्रहण करना बुधजनों के द्वारा द्वितीय सामान्य छल जानना चाहिए।

जहत्थरूवेणं सय, उवयारवक्क-ओग्गहणं णेयं।
उवयार-छलं तिदियं, मुणेदव्वं णइयाइगेहि॥217॥

उपचार वाक्य को यथार्थ रूप से ग्रहण करना नैयायिकों के द्वारा तृतीय उपचार छल जानना चाहिए।

सगपक्खस्स ठावणं, परपक्ख-उट्ठावणं चिय जप्पो।
णिग्गहट्ठाण-छलाइ-कढोर-अणुइद-पओगेहिं॥218॥

निग्रहस्थान व छलादि जैसे कठोर व अनुचित प्रयोगों द्वारा स्वपक्ष का स्थापन और परपक्ष का उत्थापन करना 'जल्प' है।

सपक्खसिद्धं ण कडुअ, तहा परपक्ख-णिराकरण-करणं हि।
णादव्वा हु वितंडा, णाय-दंसणे सया अस्सिं॥219॥

अपना पक्ष सिद्ध न करके परपक्ष निराकरण करना ही इस न्याय दर्शन में सदा 'वितण्डा' जानना चाहिए।

सदोसहेदू हेच्चाभासो पणहा असिद्धो विरुद्धो।
अणेगंदिगो-सदपडिवक्खो तहा बाहिदविसयो॥220॥

सदोष हेतु हेत्वाभास है। वह पाँच प्रकार का है- असिद्ध, विरुद्ध, अनैकांतिक, सत्प्रतिपक्ष तथा बाधितविषय।

मिच्छा-पडिसाहणं च, वक्कम्मि अणुवट्ठिद-दोस-कहणं।
जादी चउवीसविहा, साधम्म - वइधम्मादी तह॥221॥

मिथ्या उत्तर देना अथवा किसी के वाक्य में अनुपस्थित दोष कहना 'जाति' है। वह साधर्म्य व वैधर्म्यादि चौबीस प्रकार की है।

वादि - पडिवादीणं च, पक्खाणं पुट्ठभावस्स भावो।
णिग्गहट्ठाणं जाण, चउवीस - भेय - रूवं तहा॥222॥

वादी व प्रतिवादी के पक्षों के स्पष्ट भाव का अभाव निग्रहस्थान जानना चाहिए। वह भी चौबीस भेद रूप है।

इंदियो हु तस्स विसय - भूदत्थ - संजोगो सण्णिकस्सो।
णाणुप्पत्ति - हेदू हु, छव्विहो चिय संविदिदव्वो॥223॥

संजोग - संजुत्तसमवायो - संजुत्तसमवेदो तहा।
समवायो समवेदो, विसेस-विसेसणभावो चिय॥224॥ (जुम्मं)

इन्द्रिय व उसके विषयभूत पदार्थ का संयोग 'सन्निकर्ष' कहलाता है, जो ज्ञानोत्पत्ति का हेतु होता है। वह छह प्रकार का जानना चाहिए—संयोग, संयुक्तसमवाय, संयुक्त समवेत समवाय, समवेत समवाय तथा विशेष्य विशेषण भाव।

संजोग-सण्णिकस्सो, दव्वविसयगणाण-हेदू जहा दु।
चक्खुणा सह घडस्स दु, संजोगेण घड-पच्चक्खो॥225॥

'संयोग सन्निकर्ष' द्रव्य विषयक ज्ञान में हेतु होता है, यथा—चक्षु द्रव्य के साथ घट का संयोग सम्बन्ध होने पर घट विषयक प्रत्यक्ष होता है।

संजुत्त-समवायो दु, गुणविसयग-णाण-हेदू जाण जह।
घड-पच्चक्खो घडेण, सह तस्स गुणसमवायेणं॥226॥

'संयुक्त समवाय सन्निकर्ष' गुण विषयक ज्ञान का हेतु है, यथा—उस घट के साथ उसके गुण का समवाय सम्बन्ध होने पर घट के रूप का प्रत्यक्ष होता है।

गुणस्स सामण्णजादि-विसयगणाणहेदू मुणेदव्वो।
संजुत्तसमवेद-समवायो चिय णायदंसणम्मि॥227॥

गुण की सामान्य जाति विषयक ज्ञान का हेतु न्यायदर्शन में 'संयुक्त समवेत समवाय' जानना चाहिए।

जहा घडरूवेण सह, रूवत्त-जादिसामण्णस्स तस्स।
समवायसम्बन्धेण, घडम्मि रूवत्त-पच्चक्खो॥228॥

यथा–घट रूप के साथ उसकी रूपत्व जाति नामक सामान्य के समवाय सम्बन्ध से घट में रूपत्व का प्रत्यक्ष होता है।

समवायसण्णिकस्सो, मेत्तं सद्दविसयगणाण-हेदू।
जह सोदिंदियो सयं, गगणदव्वरूवो य तस्सिं॥229॥

समवाय-संबंधेण, सद्दगुणो इमादु सोद-दारेण।
होदिगहणंजाणेज्जसण्णिकस्स-चदुत्थ-भेयोय॥230॥(जुम्मं)

"समवाय सन्निकर्ष" मात्र शब्द विषयक ज्ञान का हेतु है, यथा–श्रोत्रेन्द्रिय स्वयं आकाश द्रव्य रूप है और शब्द गुण उसमें समवाय सम्बन्ध से रहता है, इसी से शब्द श्रोत्र द्वार से ग्रहण होता है। यह सन्निकर्ष का चौथा भेद है।

सद्दत्त-जादि-णामय-सामण्ण-विसयग - णाणहेदू चिय।
सद्दगुणस्स जाण समवेदसमवाय - सण्णिकस्सो॥231॥

शब्द गुण की शब्दत्व जाति नामक सामान्य विषयक ज्ञान का हेतु 'समवेत समवाय सन्निकर्ष' जानना चाहिए।

सद्दगुणेण सह तस्स, सद्दत्तजादिणामसामण्णम्मि।
समवायम्मि सोद-दारेण सद्दजादि-पच्चक्खो॥232॥

यथा–शब्द गुण के साथ उसकी शब्दत्व जाति नामक सामान्य का समवाय होने पर श्रोत्र द्वारेण शब्दत्व जाति का प्रत्यक्ष होता है।

विसेस्स-विसेसण-सण्णिकस्सो अभाव-पच्चक्ख-हेदू य।
पोत्थअं ण सोणंदे, जह संविदिदव्वो बुहेहिं॥233॥

विद्वानों के द्वारा 'विशेष्य विशेषण सन्निकर्ष' अभाव नामक पदार्थ के प्रत्यक्ष का हेतु जानना चाहिए, यथा–टेबल पर पुस्तक न होना।

माणस-सण्णिकस्सो दु, अप्पणाणहेदू गुणाण वि तस्स।
जह मणस्सप्पेण सह, संजोगसण्णिकस्सो जहा॥234॥

'मानस सन्निकर्ष' आत्मा व उस आत्मा के ज्ञानादि गुणों के ज्ञान में होता है। जैसे–मनद्रव्य का आत्मद्रव्य के साथ संयोग-सन्निकर्ष।

समवाय-सण्णिकस्सो, जह अप्पस्स सगसुहगुणेणं सह।
णाणत्ताइ-जादीहि, सह समवेद-समवायो तह॥235॥

णाणाभावेणं सह, विसेस्स-विसेसण-सण्णिकस्से जह।
तस्स मणदारेणं च, तव्विसयग-पच्चक्खो होदि॥236॥ (जुम्मं)

आत्मा का अपने सुख गुण के साथ (संयुक्त) समवाय सन्निकर्ष, उसका ज्ञानत्व आदि जातियों के साथ (संयुक्त) समवेत समवाय सन्निकर्ष और ज्ञानाभाव के साथ उसका विशेष्य-विशेषण-सन्निकर्ष होने पर ही मनद्वारेण तद्विषयक प्रत्यक्ष होता है।

दुहजम्मपवत्तिदोस - मिच्छाणाणुत्तरोत्तरोपाये।
तदणंतर-अभावादु, होज्ज अपवग्ग-मोक्खपत्ती॥237॥

दु:ख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्याज्ञानों का उत्तरोत्तर उपाय होने पर, उसके बाद इनका अभाव हो जाने से अपवर्ग मोक्ष की प्राप्ति होती है।

न्यायदर्शन समीक्षा

वइसेसिगोव्व हि दिट्ठ - इट्ठ - विरुद्धं णइयायिग - मदं पि।
णेव उप्पालेमि पुण, पिट्ठ-पेसण-दोस-भयादो।।238।।

वैशेषिक के समान यह नैयायिक मत भी प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों से विरुद्ध है। पिष्टपेषण दोष के भय से मैं पुनः उसे यहाँ नहीं कहता हूँ।

तदब्भुवगदत्थेसुं, अक्खबुद्धिमणाण साहगत्तेण।
अंतब्भाव-असिद्धी, पमेयेसु पमाणत्तादो।।239।।

यहाँ नैयायिक मत द्वारा मान्य पदार्थों में इन्द्रिय, बुद्धि, मन के साधकपने द्वारा प्रमाणपने से प्रमेयों में अन्तर्भाव की सिद्धि नहीं होती।

अण्णहाणेगंतत्त-सिद्धी जं इट्ठो सिआवायीण।
ण णइयायिगाण पित्त-जररोयीण ण दुद्धमिट्ठं।।240।।

अन्यथा अनेकांतकपने की सिद्धि होती है, जो स्याद्वादियों के लिए इष्ट है, किन्तु नैयायिकों के लिए नहीं। उचित ही है—मीठा दूध पित्त ज्वर वालों के लिए इष्ट नहीं होता।

ववत्थाणुप्पत्ती दु, पमेयत्तम्मि संसयादीणं च।
तह सोलस-पदत्थाण, ववत्था असिद्धो मदे तव।।241।।

संशयादि के प्रमेयत्व में व्यवस्था सिद्ध नहीं होती। आपके इस साङ्ख्य मत में सोलह पदार्थों की व्यवस्था भी असिद्ध है।

अत्थंतर - पदीदीइ, विपज्जय - अणज्झयवसायाणं च।
खलु पमाणादि-सोलस-पदत्थादो सया असिद्धो।।242।।

विपर्यय अनध्यवसाय की प्रमाणादि सोलह पदार्थों से अलग प्रतीति होने के कारण सोलह पदार्थों की व्यवस्था सिद्ध नहीं होती।

बहुअ-दोसादो सव्व-तच्च-संसग्ग-असंभावणाए।
सुण्णत्तापत्ती खलु, अइपवंचेण मद-मसच्चं।।243।।

इस प्रकार बहुत दोष होने से, सभी तत्त्वों के संसर्ग की असम्भावना होने से शून्यत्व की आपत्ति होती है। सभी वचन प्रलाप मात्र होने से आपका यह मत असत्य है।

उहयमदेहिं पदत्त-अक्खेवो असच्चं सिआवाये।
उहयमदेहिं तम्हा, सिआवायस्स विरोहो णो।।244।।

दोनों ही मत अर्थात् वैशेषिक व नैयायिक मतों ने स्याद्वाद मत में जो आक्षेप लगाए वे सभी असत्य सिद्ध होते हैं। इसलिए दोनों ही मतों द्वारा स्याद्वाद का विरोध नहीं होता।

सांख्य दर्शन

संख-दंसणस्स मूल-पवट्टगो दु कविलो रिसी णेयो।
ईसर-किण्हपणीदो, संखकारिगा मूलगंथो।।245।।

साङ्ख्य दर्शन के मूल प्रवर्तक कपिल ऋषि हैं। 'ईश्वर कृष्ण' प्रणीत 'साङ्ख्य कारिका' इसका मूल ग्रन्थ जानना चाहिए।

संखमदमिदं जादं, तित्थयर - महावीर - णिव्वाणस्स।
किंचिसमहिद-अट्ठसय-वस्स-पच्छा विआणेज्जा दु।।246।।

यह साङ्ख्य मत तीर्थंकर महावीरस्वामी के निर्वाण के कुछ अधिक 800 वर्ष बाद उत्पन्न हुआ। ऐसा जानना चाहिए।

बेविहं मूलतच्चं, पुरिसो पइडी य संख-दंसणम्मि।
वा पणवीसं तच्चं, पुरिस-पइडि-महदहंकारा।।247।।

मणो पण-णाणिंदिया, पण-कम्मिंदिया पंचतम्मत्ता।
पंचमहाभूदा तह, दइदवादी दंसणमिदं हु।।248।। (जुम्मं)

साङ्ख्य दर्शन में मूलतत्त्व दो प्रकार के हैं-पुरुष व प्रकृति। अथवा तत्त्व पच्चीस भी माने गए हैं-पुरुष, प्रकृति, महत्, अहङ्कार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच तन्मात्राएँ और पञ्च महाभूत। यह दर्शन द्वैतवादी है।

पुरिसो अप्पवायगो, विभू णिच्चो सातंतो सक्खी य।
चेयण-दिट्ठा मज्झट्ठो उदासीणो मणिज्जेदि।।249।।

पुरुष तत्त्व आत्म तत्त्व का वाचक है। यह विभु, नित्य, स्वतन्त्र, साक्षी, चेतन, दृष्टा, माध्यस्थ व उदासीन माना जाता है।

अहेदुगो दु वा सयं, सिद्धो णिक्कियाणस्सिदालिंगो।
अविसयकताभोत्ता, णिरवयवो य तिगुणादीदो।।250।।

यथा—यह अहेतुक वा स्वयं सिद्ध, निष्क्रिय, अनाश्रित, अलिङ्ग (अग्राह्य), निरवयव, त्रिगुणातीत, अविषय (अभोग्य), अकर्ता व अभोक्ता है।

पइडी विदियं तच्चं, जेण पुरिसो परिभमदि संसारे।
तिगुणसंजुत्ता तहा, मूलकारणं खलु विस्सस्स।।251।।

प्रकृति वह द्वितीय तत्त्व है, जिससे पुरुष संसार में परिभ्रमण करता है। यह तीन गुणों से युक्त एवं विश्व का मूल कारण है।

पइडी दु आयासोव्व, अखंड-णिरायार-विभू इह मदे।
पहाण-विदिय-णामो वि, जडा य पुरिस-भोग्गा णेया।।252।।

इस मत में प्रकृति आकाश के समान अखण्ड, निराकार व विभु है। 'प्रधान' इसका दूसरा नाम है। यह प्रकृति जड़ तथा पुरुष तत्त्व की भोग्या जाननी चाहिए।

तिगुणसहावत्तादो, परिणमणसीलादो पसव-धम्मा।
णिच्चवावगणिक्कियालिंग-अच्चंतपरोक्खेगा।।253।।

त्रिगुण स्वभावी और परिणमनशील होने से यह प्रसव धर्मा है। यह नित्य, व्यापक, निष्क्रिय, अलिङ्ग, अत्यन्त परोक्ष व एक है।

वत्तावत्ता दुविहा गुणत्तयस्स सम्मवत्था वत्ता।
वइसम्मावत्था चिय, वत्त-पइडी अत्थ जाणेज्ज॥254॥

यह दो प्रकार की है-अव्यक्त व व्यक्त। गुणत्रय की साम्यावस्था ही अव्यक्त प्रकृति है एवं गुणत्रय की वैषम्यावस्था ही यहाँ व्यक्त प्रकृति जाननी चाहिए।

तिगुण-सम्मावत्थाइ, संत-सिंधूव थिरा अवत्ता सा।
पराइ खुब्भ-सिंधूव, वत्ता दोण्णि सतंतत्था ण॥255॥

त्रिगुणों की साम्यावस्था में वह शान्त सागर के समान स्थिर, अव्यक्त है। वही इसके इतर वैषम्यावस्था में क्षुब्ध सागर के समान व्यक्त हो जाती है। ये दोनों व्यक्त व अव्यक्त कोई दो स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं।

ताइ अहिवत्ति-हेदू, ताए परिणमण-सहावो दुविहो।
णादव्वो भेयादो, सारिच्छ-विसारिच्छाणं च॥256॥

उसकी इस अभिव्यक्ति का हेतु उसका परिणमन स्वभाव है। जो सादृश्य व विसादृश्य के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए।

सारिच्छ-अगहणीयं, सुहुमादो तमेव होच्चा खुद्दं।
हवेदि विसरिच्छं तं, तिविहं धम्मलक्खणवत्था॥257॥

सदृश परिणमन सूक्ष्म होने से अग्राह्य है। वह ही जब क्षुब्ध होता है तो विसदृश परिणमन कहलाता है। वह विसदृश परिणमन तीन प्रकार का है—धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम।

मिहो सुहुमभूदाणं, जोगेण घडाइ-ववहारत्थेसु।
परिणमणं णादव्वो, धम्मपरिणामो बुहजणेहि।।258।।

पृथ्वी आदि सूक्ष्मभूतों का परस्पर में संयोग से घटादि व्यवहारिक पदार्थों के रूप में जो परिणमन होता है वह बुधजनों के द्वारा धर्म-परिणाम जानना चाहिए।

घडाइ-अत्थेसुं इदमेव मूलुवादाणभूदधम्मी।
एवंविह अणवयं हि, ताणं लक्खण-परिणामो दु।।259।।

घटादि पदार्थों में 'यह वही मूल उपादानभूत धर्मी है', इस प्रकार अन्वय ही उन पदार्थों का लक्षण परिणाम है।

अवत्था-परिवट्टणं, अत्थाण पुरादणं णूदणादो।
अवत्था-परिणामो दु, संविदिदव्वो संखमदम्मि।।260।।

अवस्था परिवर्तन वा पदार्थों का नये से पुराना हो जाना, इस साङ्ख्यमत में अवस्था परिणाम जानना चाहिए।

अवत्तवत्थाए जा, पइडी सा गुणो वत्तावत्थाइ।
गुणो तिविहो दु णेयो, सत्त-रज-तमाण भेयादो।।261।।

अव्यक्तावस्था में जो प्रकृति है, वही व्यक्तावस्था में गुण है। गुण सत्त्व, रज व तम के भेद से तीन प्रकार के जानने चाहिए।

सत्तो पयासरूवो, लहू णाण-सुह-पीदी अहिवत्ती।
रजो चंचला तस्सहिवत्ती दुह-पवित्ति-अपीदी।।262।।

सत्त्व प्रकाशरूप व लघु होता है। ज्ञान, सुख व प्रीति इसकी अभिव्यक्तियाँ हैं। रजोगुण चञ्चल होता है; दुःख, प्रवृत्ति व अनीति इसकी अभिव्यक्तियाँ हैं।

तमो अवरोहो आवरणो गोरवो य तस्स अहिवत्ती।
अण्णाण-पमाद-मोह-अंधयार-णिद्दादी तहा॥263॥

तमोगुण का स्वरूप अवरोध, आवरण व गौरव है। अज्ञान, प्रमाद, मोह, अन्धकार व निद्रा आदि उसकी अभिव्यक्तियाँ हैं।

तिण्णि एगट्ठं मिहो, होज्ज णेव पिथगो पिथगो कया वि।
कत्थ को वि गुण-एगो, पहाणो कत्थ गुणो विदियो॥264॥

ये तीनों परस्पर में एक साथ ही रहते हैं, ये कदापि पृथक्-पृथक् नहीं होते। कहीं कोई एक गुण प्रधान होता है, कहीं दूसरा गुण प्रधान होता है।

चेयणत्थेसु सत्तो, जडपदत्थेसुं तमो पहाणो य।
बज्झंतर-किरियत्ते, हेदू रजो जड-चेयणाण॥265॥

चेतन पदार्थों में सत्त्व व जड़ पदार्थों में तमो गुण प्रधान है। जड़ व चेतन की बाह्य व अभ्यन्तर क्रियाशीलता में रजो गुण हेतु है।

पइडीइ रूवंतरण - सिट्ठी उप्पण्ण - गुण - वइसम्मेण।
संविदिदव्वा सया हि, सग-सहाविय-परिणमणादो॥266॥

अपने स्वाभाविक परिणमन के कारण उत्पन्न गुण-वैषम्य द्वारा प्रकृति का रूपान्तरण 'सृष्टि' जानना चाहिए।

अव्वत्तपइडीइ सह, पुरिसतच्चम्मि संजोगम्मि तस्स।
संत-दसाए फुरणं, सिट्ठी य संत-दसा पलयो।।267।।

अव्यक्त प्रकृति के साथ 'पुरुष' तत्त्व का संयोग होने पर उसकी शान्त दशा में एक स्फुरण जाग्रत होता है, वह ही सृष्टि है और शान्तदशा प्रलय है।

सिट्ठीइ कामिग-विआसे, पुव्व-पुव्ववत्ती तच्चं हेदू।
उत्तरवत्ति-तच्चस्स, तं च कज्जं पुव्ववत्तीइ।।268।।

सृष्टि के इस क्रमिक विकास में पूर्व-पूर्ववर्ती तत्त्व उत्तरवर्ती तत्त्व का कारण हैं और वह उत्तरवर्ती तत्त्व पूर्ववर्ती का कार्य या विकृति है।

सत्तादि-गुणा अग्गे, उप्पत्तीए तेवीस-तच्चाण।
उवादाण-हेदू चिय, जुंजित्ता जोग्गणुवादेसु।।269।।

यथायोग्य अनुपातों में परस्पर संयुक्त होकर सत्त्वादि गुण ही आगे तेईस तत्त्वों की उत्पत्ति में उपादान हेतु हैं।

पढमं च महद-तच्चं, उप्पज्जदि तादु अहंकारो पुण।
तादो सत्तंसाणं, बहुलत्तेण मणजुदक्खाणि।।270।।

सर्वप्रथम महत् तत्त्व उत्पन्न होता है और पुनः उससे अहङ्कार। उसके सत्त्वांशों की बहुलता से मनुष्य की इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।

पंचतम्मत्ताओ हि, तमंसाणं बहुलत्तेण तादो।
तच्चकिरियत्तहेदू, अहंकारगदरजंसो चिय।।271।।

उसके तमांश की बहुलता से पंच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। अहंकारगत-रजांश इन सब तत्त्वों की क्रियाशीलता का हेतु है।

महदहंकारो मणो, पणणाणिंदिया पण-कम्मिंदिया।
चिदाभासी चिय णाण-सरूवत्तादो चेयणोव्व।।272।।

तेईस तत्वों में से महत्, अहङ्कार, मन , पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय ये तेरह तत्त्व ज्ञानस्वरूपी होने से चेतनवत् चिदाभासी हैं।

चिदपयास-महदो वेदंतस्स चित्तं बुद्धी णायस्स।
अत्थसरूवबोहगा, कतव्वाकतव्वादीण।।273।।

महत् तत्त्व चित् प्रकाश है, यह ही वेदान्तदर्शन का चित्त और न्यायदर्शन की बुद्धि है। अर्थ स्वरूप एवं कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध कराने वाली बुद्धि है।

धम्म-पयास-लहुत्तं, ताइ सहावो सत्तपहाणादो।
बुद्धीए अहिवत्ती, दो रूवेसु सया होज्जा।।274।।

सत्त्व गुण प्रधान होने से धर्म, प्रकाश व लघुत्व उस बुद्धि का स्वभाव है। बुद्धि की अभिव्यक्ति सदा दो रूपों में होती है।

अधम्मण्णाणाविहव-अविराग-रूवे तामसिगजणेसु।
सत्तिगजणेसुं धम्म-णाण-वेरग्ग-विहव-रूवे।।275।।

तामसिक व्यक्तियों में अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य, अवैराग्य के रूप में तथा सात्त्विक व्यक्तियों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और वैभव के रूप में होती है।

हं मज्झं अंतरंग-अहिणिवेसहंकारस्स सहावो।
सचंचुरत्त-पयासो, बुद्धिरजंसपहाणत्तादु॥276॥

मैं, मेरा आदि अन्तरङ्ग अभिनिवेश अहङ्कार तत्त्व है। बुद्धि के रजांश की प्रधानता होने से चञ्चलता युक्त प्रकाश उसका स्वभाव है।

संकप्पो य वियप्पो, मण-लक्खणो इंदिय-सहायगो य।
पगासगो अहंकारगद - सत्तंस - पहाणत्तादु॥277॥

चंचलो तस्स रजंस-पहाणत्तादु इंदिया णायोव्व।
सद्दफासरूवरसा, गंधो चिय पंचतम्मत्ता॥278॥ (जुम्मं)

सङ्कल्प-विकल्प करना मन का लक्षण है। यह इन्द्रियों का सहायक है। अहङ्कारगत सत्यांश की प्रधानता होने से यह प्रकाशक है और उसके रजांश की प्रधानता होने से चंचल इन्द्रियाँ न्यायदर्शन के समान यहाँ भी दस हैं-पाँच ज्ञानेन्द्रिय व पाँच कर्मेन्द्रिय। शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गंध ये पाँच तन्मात्राएँ हैं।

ते णाणिंदिय-विसया, रजजुदसत्तंस-पहाणत्तादो।
णाणिंदिया चिय सत्ति-पयासगा मण्णे संखम्मि॥279॥

वे शब्दादि ज्ञानेन्द्रिय के विषय हैं। रजोयुक्त सत्त्वांश प्रधान होने से ज्ञानेन्द्रिय साङ्ख्यमत में शक्ति प्रकाशक मानी जाती हैं।

कम्मिंदियो दु णेयो, सत्तजुदरजंस-पहाणत्तादो।
इमे संखदंसणम्मि, चिय सत्तिकिरिया-संपण्णा॥280॥

वाक्, पाणि, पाद, वायु व उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। सत्त्वयुक्त-रजांश की प्रधानता होने से कर्मेन्द्रिय इस साङ्ख्य दर्शन में शक्ति क्रिया सम्पन्न हैं।

पंचतम्मत्ता अहंकारस्स तमंस-पहाणत्तादो।
उप्पण्णादो णेया, संत-घोर-मूढा संखम्मि॥281॥

साङ्ख्य मत में अहङ्कार के तमांश की प्रधानता से उत्पन्न होने से पाँच तन्मात्राएँ शान्त, घोर व मूढ़ हैं।

विसया अत्थ रसादी, गुणा णेव णवरि ताण अंतंसो।
जइणस्स गुणंसोव्व दु, अविभागी-पडिच्छेदोव्व य॥282॥

यहाँ रसादि गुण नहीं किन्तु विशेषता यह है कि वह उनका अन्तिम अंश है अर्थात् जिसमें किसी भी प्रकार का विभाग या अंश न हो। यह जैनों के गुणांश या अविभागी-प्रतिच्छेद के समान माना जा सकता है।

पणमहाभूद-थूलो, अत्थ संखस्स सिट्ठी अंतो खलु।
पंचमहाभूदा चिय, अंतिम-विअडी दु पइडीए॥283॥

यहाँ पञ्च महाभूत स्थूल हैं। यहाँ साङ्ख्य की सृष्टि का अन्त हो चुकता है। क्योंकि पञ्चमहाभूत यहाँ प्रकृति की अन्तिम विकृति है।

णहो सद्द-तम्मत्ताए, संघादो फासस्स वाऊ य।
रूवस्सणलो रसस्स, णीरं गंधस्स तह पुढवी॥284॥

शब्द तन्मात्रा का सङ्घात आकाश, स्पर्श तन्मात्रा का सङ्घात वायु, रूप तन्मात्रा का सङ्घात अग्नि, रस तन्मात्रा का

सङ्घात जल तथा गन्ध तन्मात्रा का सङ्घात ही पृथ्वी है। जो पञ्चमहाभूतों के रूप में व्यक्त हो रहा है।

अत्थ दुविहं सरीरं, जाणेज्जा सुहुम-थूल-भेयादो।
पंचमहाभूदेहिं, णिम्मिदं चिय थूलसरीरं॥285॥

सूक्ष्म व स्थूल के भेद से यहाँ शरीर दो प्रकार के जानने चाहिए। पञ्च महाभूतों से निर्मित शरीर स्थूल शरीर है।

सुहुम-महंकार-बुद्धि-मण-इंदिय-तम्मत्ता-तच्चेहिं।
सरीरं णिम्मिदादो, चिदाभासी य जडं उहयं॥286॥

सूक्ष्म शरीर अहङ्कार, बुद्धि, मन, दस इन्द्रिय, तन्मात्रा इन तत्त्वों से निर्मित होने के कारण चिदाभासी है। एवं ये दोनों ही शरीर जड़ हैं।

भवंतरं भवादु जो, अइगच्छदि सो जीवप्पा सुहुमं।
तादु भिण्णो अंतरप्पा पुरिस-तच्चं संखमदे॥287॥

जो भव से भवान्तर को जाता है वह सूक्ष्म शरीर ही साङ्ख्यमत में जीवात्मा है। अन्तरात्मा इससे भिन्न पुरुष तत्त्व है।

जम्मं मरणं मोक्खो हवेदि इमस्स हि सुहुमसरीरस्स।
ण पुरिसस्स कया वि सो, थूल-देह-णिम्माण-हेदू॥288॥

जन्म, मरण व मोक्ष इस सूक्ष्म शरीर का ही होता है कदापि 'पुरुष' का नहीं। यही स्थूल शरीर के निर्माण में हेतु होता है।

पुरिसो सक्खी मेत्तं, उदासीणं ण मुंचदि ण बंधेदि।
पइडी होदि विक्कदो, विगिदपइडिणट्ठे मोक्खो॥289॥

'पुरुष' तत्त्व साक्षी मात्र व उदासीन है। वह न बंधा है, न मुक्त होता है। प्रकृति ही विकृत होती है। विकृत प्रकृति के नष्ट होने पर मोक्ष होता है।

जावदु थूलसरीरं, पारद्धवसेणं तावदु पुरिसो।
सगसरूव-ठिदो तस्स, जीवणमुत्तदसा इदमेव॥290॥

प्रारब्धवश जब तक यह स्थूल शरीर रहता है तब तक 'पुरुष' तत्त्व अपने स्वरूप में स्थित रहता है। यह ही उसकी जीवन्मुक्त दशा है।

सरीरे दु विच्छेदे, पारद्धभोय-समत्तादो जदा।
केवल्लपत्ती तदा, तस्स विदेहमुत्ती णेया॥291॥

प्रारब्ध का भोग समाप्त होने से शरीर का विच्छेद होने पर जब कैवल्य की प्राप्ति होती है, तब यह उसकी विदेह मुक्ति जाननी चाहिए।

सिट्ठी दिट्ठिगोयरा, पुरिस-पइडि-संजोगेणं संखे।
बे तच्चं हि पहाणं, ईसरणाम तिदिय-तच्चं ण॥292॥

साङ्ख्य मत में पुरुष व प्रकृति के संयोग से बनी सृष्टि ही दृष्टिगोचर है। यहाँ दो तत्त्व ही प्रधान हैं, ईश्वर नामक कोई तीसरा तत्त्व यहाँ नहीं है।

कयाइ पुरादण-संख-मदे ईसरो छब्बीसम-तच्चं।
किण्णु णेव मण्णेदि दु, परवत्ती संखदंसणं च॥293॥

प्राचीन साङ्ख्य दर्शन में कदाचित् ईश्वर छब्बीसवाँ तत्त्व है, किन्तु परवर्ती साङ्ख्य दर्शन इसे कदापि नहीं मानता।

कज्जुप्पत्तीण विणा, कारणेण सदकज्जवादो इमो।
सत्तीए कारणे हि विज्जेदि कज्जं चिय पुव्वे॥294॥

कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। यही सत्कार्यवाद है। शक्ति रूप से कार्य कारण में पूर्व ही विद्यमान रहता है।

सदकज्जवाद-दुविहो, परिणामवादो विवत्तवादो य।
जदा कारणं कज्जे, जहत्थे परिवट्टदि पढमो॥295॥

जह तिला तिल्ले जलं, बप्फे परिणामवादो संखस्स।
अद्दइद - वेदंतस्स, विवत्तवादो मुणेदव्वो॥296॥ (जुम्मं)

सत्कार्यवाद दो प्रकार का है—परिणामवाद और विवर्तवाद। जब कारण वास्तविक रूप में कार्य में परिणत होता है तब वह साङ्ख्य का परिणामवाद है, जैसे तिल तेल में, जल वाष्प में। अद्वैत वेदान्त का विवर्तवाद जानना चाहिए।

आभासो मेत्तं चिय, जत्थ परिवट्टणं णेव जहत्थं।
विवत्तवादो णेयो, जहा रज्जूए भुजंगस्स॥297॥

जहाँ परिवर्तन आभास मात्र है, यथार्थ नहीं होता वह विवर्तवाद जानना चाहिए। जैसे—रस्सी में भुजङ्ग का।

जहत्थणाणेण वत्त-अवत्त-ण-मूलतच्चाणं मुत्ती।
किण्णु असम्भवो ताण, सिद्धी हु विणा पमाणेणं॥298॥

व्यक्त, अव्यक्त व ज्ञ इन मूल तत्त्वों के यथार्थज्ञान से मुक्ति होती है, किन्तु प्रमाण के बिना उनकी सिद्धि सम्भव नहीं।

तच्चणाणस्स करणं, पमाणं संख-दंसणे मण्णेज्ज।
तंतिविहं दु पच्चक्ख-अणुमाण-सद्द-भेयादो य॥299॥

साङ्ख्य दर्शन में तत्त्वज्ञान का करण प्रमाण माना जाता है। वह प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द के भेद से तीन प्रकार का है।

वत्तजगं पच्चक्खं, इंदिय-मणेहि वत्त-गाहगो तं।
अइसुहुमादो णेयं, अवत्त-गाहगं अणुमाणं॥300॥

व्यक्त जगत् इन्द्रिय व मन के द्वारा प्रत्यक्ष है, वह प्रत्यक्ष व्यक्त का ग्राहक और अतिसूक्ष्म होने से अनुमान अव्यक्त का ग्राहक जानना चाहिए।

णेव दु ण-पुरिसो णाण-विसयो चिय णाणसरूवत्तादो।
पडिविसय-अज्झवसायि-इंदियो पच्चक्खपमाणं॥301॥

'ज्ञ' पुरुष ज्ञान स्वरूपी होने से ज्ञान का विषय नहीं है। प्रतिविषय अध्यवसायी इन्द्रिय ही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इंदियो बेविहो खलु, भेयादो बज्झ-अब्भंतराणं।
सोदाइ-बज्झिंदिया, ताण दारेण धरणकज्जं॥302॥

अब्भंतरिंदियाणं, तिविहा बुद्धी अहंकारो मणो।
बज्झकारणं कुणदे, विसयं मेत्तं वट्टमाणं॥303॥(जुम्मं)

बाह्य व अभ्यन्तर के भेद से इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं। श्रोत्रादि पाँच बाह्येन्द्रियाँ हैं। उनके द्वार से धारण करने का कार्य अभ्यन्तर इन्द्रियों का है। वे तीन प्रकार की हैं-बुद्धि, अहङ्कार व मन। बाह्य कारण मात्र वर्तमान को विषय करते हैं।

बुद्धी य अहंकारो, मणो तिण्णि हंदि विसयं कुव्वंति।
भूदं च भविस्सं अवि, जहवि य वट्टमाणेणं सह।।304।।

जबकि बुद्धि, अहङ्कार व मन ये तीनों वर्तमान के साथ भूत व भविष्यत् को भी विषय करते हैं।

पुरिसादो पइडीए, णिव्वडणं हि मोक्खो संखमदम्मि।
अस्ससंखदंसणस्स, मुक्खुद्देसो इमो मोक्खो।।305।।

पुरुष से प्रकृति का अलग होना ही साङ्ख्यदर्शन में मोक्ष है। इस साङ्ख्यदर्शन का मुख्य उद्देश्य यह मोक्ष ही है।

सांख्य दर्शन समीक्षा

णिच्चत्तादो सव्वदा, पुरिस-रहिद-सव्वत्थ-पहाणमया।
वट्टदि पुण्णरूवेण, सव्वत्थ मण्णेदि संखो य।।306।।

नित्यपना होने से पुरुष रहित सभी पदार्थ प्रधानमय होते हैं। वे सभी सर्वत्र और सम्पूर्ण रूप से रहते हैं, ऐसा साङ्ख्य मानते हैं।

सव्वं सव्वत्थ वट्टदि, इदि सुत्तेणं पच्चक्खविरुद्धो।
पच्चक्खेण पडिणियद - देसकालस्सत्थ - दंसणं।।307।।

साङ्ख्य मत में इष्ट अपादान ये सभी हैं और सर्वत्र वर्तन करते हैं, इस सूत्र से यह प्रत्यक्ष विरुद्ध सिद्ध होता है।

पच्चक्खेण ण सव्वं, सव्वत्थ जं अंगुलि-अग्गभागे।
सदहत्थिरायसमूह-दंसणपसंगादो हि तहा॥308॥

प्रत्यक्ष से सभी सर्वत्र दिखाई नहीं देता। क्योंकि ऐसा मानने पर अंगुली के अग्र भाग में सौ हाथियों को देखने का प्रसंग प्राप्त होता है।

कहदि संखो ण दोसो, सब्भावम्मि जस्स आविब्भावो।
सो तत्थेव दंसदे, पुणो अण्णतिरोहिदो णेव॥309॥

तब साङ्ख्य कहते हैं कि ऐसा दोष नहीं आता क्योंकि सर्वत्र सद्भाव होने पर जहाँ जिसका आविर्भाव होता है, वह वहीं दिखाई देता है, तब पुनः अन्य तिरोहित पदार्थ दिखाई नहीं देंगे।

एवंविह दंसणस्स, जोग्गाजोग्गववत्था अत्थाणं।
जदि कहसि तो पुच्छेज्ज, आविब्भावो किं मदे तव॥310॥

इस प्रकार पदार्थों के दर्शन की योग्य-अयोग्य व्यवस्था होती है। यदि इस प्रकार कहते हो तो पूछते हैं कि आपके मत में वह आविर्भाव क्या है?

सो पुव्वे अणुवलद्ध-वंजगवावारादो उवलंभो।
णिच्चो वा णिच्चो सो, आविब्भावो किं कहेज्जा॥311॥

पहले अनुपलब्ध का व्यंजक व्यापार होने से उपलंभ वह आविर्भाव है, तो बताइये क्या वह नित्य है या अनित्य?

अणिच्च-आविब्भावो, जदि तो करिज्जदि पुव्वकारणेहि।
अण्णहा चिय णिच्चत्त-पसंगादो दु अत्थ तहेव॥312॥

घडादी करिज्जंते, पुव्वकारणेहिं णेव सिद्धो दु।
सदकज्जवादस्स जं, विरोहत्तपसंगादो चिय॥313॥ (जुम्मं)

यदि आविर्भाव अनित्य है तो वह पूर्वकारणों से किया जाता है, अन्यथा यहाँ नित्यत्व का प्रसंग आ जाता है। उसी प्रकार घटादि भी पूर्वकारणों से किए जाते हैं, ऐसा तो सिद्ध नहीं होता, क्योंकि सत्कार्यवाद के विरोध का प्रसंग प्राप्त होता है।

पुव्वकारणेहि णेव, कुव्विज्जेदि आविब्भावो पुणो।
होज्जघडादीतोतव,स-रुइवयणंमेत्त-मसिद्धो॥314॥

और आविर्भाव पूर्व कारणों के द्वारा नहीं किया जाता है, पुनः घटादि होता है तो यह आपका वचन स्वरुचि वचन मात्र हुआ, क्योंकि इसकी सिद्धि नहीं होती।

आविब्भावपुव्वम्मि, तिरोहिदस्स सत्तकारणेहिं दु।
आविब्भावोसिद्धो,तोतस्सअविअण्णसत्तस्स॥315॥

अण्णादु आविब्भावो, अण्णस्स अण्णादो तहा इत्थं।
अणवत्था-दोसोतव,आविब्भावोणेवघडिदो॥316॥(जुम्मं)

अब आविर्भाव के पहले तिरोभाव की सत्ता के कारणों के द्वारा आविर्भाव सिद्ध होता है, तो उसकी भी

अन्य सत्ता का भी अन्य से आविर्भाव होगा, अन्य का अन्य से होगा। इस प्रकार अनवस्था दोष आता है और आविर्भाव घटित नहीं होता।

तम्मि तिरोभावे जो, इट्ठपायो हु पच्चयादो तस्स।
आविब्भावस्स णिच्च-अणिच्चपक्खे पुव्वदोसा॥317॥

जो उस तिरोभाव में भी प्रत्यय से इष्ट प्राय होता है, उस आविर्भाव के नित्य और अनित्य पक्ष में पूर्व दोष आते हैं।

आविब्भावोव्व णेव, तिरोभावो वि असिद्धो मदे तव।
तेसुअसिद्धीसुपुणो,णोसिद्धीकस्सवितच्चस्स॥318॥

आपके मत में आविर्भाव के समान तिरोभाव भी असिद्ध नहीं होता और उनकी असिद्धि होने पर किसी भी तत्त्व की सिद्धि नहीं होती।

सव्वं सव्वत्थ दंसदि, इत्थं महदादी सव्वासिद्धा।
पच्चक्ख-विरोहादो, इमम्मि संखदंसणम्मि खलु॥319॥

और सभी सर्वत्र दिखाई देने लगेंगे, इस प्रकार इस साङ्ख्य दर्शन में प्रत्यक्ष से विरोध होने से महत् आदि सभी असिद्ध हो जाएँगे।

इदरग्गहेण कहदे, महदादि-सिट्ठि-पकिरियं संखो दु।
पुच्छेज्जाकिंपहाण-कज्जंपरिणामोवामहदादी॥320॥

फिर भी यदि विपरीत आग्रह से महत् आदि की सृष्टि प्रक्रिया को साङ्ख्य कहते हैं, तब पूछना चाहिए—क्या यह महत् आदि प्रधान का कार्य है अथवा परिणाम।

सव्वहासच्चकज्जं, पुरिसोव्वणिरत्थगं पढमपक्खे।
परिणमण-कप्पणाए, णिच्चत्तेगंत-बाहिदो दु॥321॥

प्रथम पक्ष में सर्वथा सत्य उसका कार्य होता है और सर्वथा सत्य का कारण पुरुष के समान व्यर्थ होता है। परिणमन की कल्पना से नित्य एकान्त बाधित होता है।

असदकारणगहणादु, सव्वुप्पण्ण-कज्जाभावादो य।
असदसव्वहाकज्जा, जदि तो ख-सुमं व णुप्पत्ती॥322॥

सर्वथा असत् कार्य को ग्रहण करने से सर्व उत्पन्न कार्य का अभाव प्राप्त होता है। यदि सर्वथा असत् कार्य मानें तो आकाश के पुष्प के समान उसकी उत्पत्ति नहीं होती।

सव्वं सदं च णेयं, सगदव्वखेत्ताइचदुट्ठयादो।
सव्वं वत्थुं असदं, परदव्वाइचदुट्ठयादो॥323॥

अहो! स्याद्वादी कहते हैं कि स्वद्रव्य, क्षेत्रादि चतुष्टय से सभी वस्तु 'सत्' और परद्रव्यादि चतुष्टय से सभी वस्तु असत् जाननी चाहिए।

महदादी परिणामा, विदियपक्खे अभिण्णा भिण्णा वा।
जदि अभिण्णा तो ण, कमवत्ती परिणामि-अकमत्तं॥324॥

अब दूसरे पक्ष में महतादि परिणाम अभिन्न या भिन्न। यदि अभिन्न मानते हैं तो क्रम से वृत्ति नहीं होती और परिणामी के अक्रमपना होता है।

णेव परिणाम-भिण्णा, अणुवयारत्तं दु सिद्धं जम्हा।
संबंधम्मि असिद्धे, णो उवयारत्तं दोसादु॥325॥

परिणामों को यदि भिन्न मानते हैं, तो वह भी कथन नहीं बनता; क्योंकि सम्बन्ध के असिद्ध होने पर अनुपकारपना सिद्ध होता है और उपकारपना भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि पूर्व दोष प्राप्त होते हैं।

पहाणं जदि परिणमदि, दंडकुंडलाइ - आयारेहि तो।
सप्पोव्व पुणो इत्थं, णिच्चत्तेगंतबाहिदो दु॥326॥

प्रधान यदि परिणमित होता है तो वह दंड, कुण्डल आदि आकारों से सर्प के समान होता है अर्थात् उसमें अनित्यता होती है। इस प्रकार आपका नित्य एकान्त पक्ष बाधित होता है।

इट्ठ-विरुद्धो वि णिच्च-पुरिसस्स कयाइ-अणिच्चत्तादो।
कयाइ अणिच्चपुरिसो, भोयादीण अणिच्चत्तादु॥327॥

कदाचित अनित्यपना होने से नित्य पुरुष का यह मत इष्ट विरुद्ध सिद्ध होता है। भोगादिक के अनित्यपना होने से पुरुष कदाचित अनित्य भी है।

कयाइ भिण्णाभिण्णो, कयाइणिच्चाणिच्चो जिणमदे हि।
तव अणेगंत-मदेण, सम्मसिद्धी वत्थुतच्चस्स॥328॥

हे जिनेन्द्र प्रभु! आपके मत में ही वस्तु कदाचित भिन्न व अभिन्न, कदाचित नित्य व अनित्य होती है। आपके अनेकान्त मत से ही वस्तुतत्त्व की सम्यक् सिद्धि होती है।

योग दर्शन

जोगदंसणस्स मूल-पवट्टगो पादंजलरिसी अस्स।
जोगसुत्तं मूल-गंथो य यालो वइसेसिगोव्व॥329॥

योग दर्शन के मूल प्रवर्तक ऋषि पातञ्जल हैं। उस दर्शन का मूल ग्रन्थ 'योग सूत्र' जानना चाहिए और काल वैशेषिक के समान जानना चाहिए।

कइवय-रिसीण-मणुसारेण पवट्टगो अस्स दंसणस्स।
हिरण्णगब्भो अहवा, भयवदो सयंभुवो मण्णे॥330॥

कुछ ऋषियों के अनुसार इस दर्शन के प्रवर्तक हिरण्यगर्भ अथवा भगवान् स्वयम्भुव माने जाते हैं।

जहट्ठणाणं वत्तावत्त-ण-मूल-तच्चाण सुहुमाणं।
महदादीणं दु अस्स, दंसणस्स मूल-उद्देसो॥331॥

व्यक्त, अव्यक्त व ज्ञ, इन तीन मूल तत्त्वों का तथा महत् आदि सूक्ष्म तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान कराना ही इस दर्शन का मूल उद्देश्य है।

स-चित्तवित्ति-णिरोहो, वा समाही जोगसद्दस्सत्थो।
तस्स सिद्धि-उवायो हि, अस्स दंसणस्स सरूवो य॥332॥

अपनी चित्तवृत्ति का निरोध या समाधि ही योग शब्द का अर्थ है। उस योग की सिद्धि का उपाय ही इस दर्शन का स्वरूप है।

चित्तवित्ती दु विविहायारा किलिट्ठाकिलिट्ठादीणं।
भेयादो णादव्वा, एदम्मि य जोग-दंसणम्मि॥333॥

इस योग दर्शन में क्लिष्ट व अक्लिष्ट आदि के भेद से चित्तवृत्ति विविधाकार जाननी चाहिए।

अविज्जा-अम्हिदा-अभिणिवेस-रायद्देसा पणकिलिसा।
तेहिं सह किलिट्ठं च, तादु रहिद-अकिलिट्ठ-चित्तं॥334॥

अविद्या, अस्मिता, अभिनिवेश, राग, द्वेष—ये पाँच प्रधान क्लेश हैं। उनसे सहित चित्त क्लिष्ट एवं उनसे रहित चित्त ही अक्लिष्ट है।

अकिलिट्ठ-चित्तम्मि चिय, उदयो य विवेग-खादि-पण्णाणं।
पण्णा-पत्ती हि अस्स, साहणा-फलं च दंसणस्स॥335॥

अक्लिष्ट चित्त में ही विवेक, ख्याति व प्रज्ञा का उदय होता है। प्रज्ञा की प्राप्ति ही इस दर्शन की साधना का फल है।

जम-णियमासण - पाणायमप्पच्चाहार - धारणा तहा।
झाणं समाही अट्ठ-अंगा ताए साहणाए॥336॥

उस साधना के आठ अङ्ग हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि।

पण्णाइ उदयहेदू, उत्तट्ठंगा जोगस्स जाणेज्ज।
अहिंसासच्चमचोरियं बंभ-मसंगं पण-जमो॥337॥

ये कहे गए योग के आठ अङ्ग प्रज्ञा के उदय में हेतु जानने चाहिए। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह ये पाँच 'यम' हैं।

सोचं संतोसो सज्झाओ तवो य ईसरपणिहाणं।
पंचणियमो दुणेयो, इमम्मि जोग-दंसणम्मि खलु॥338॥

शौच, सन्तोष, स्वाध्याय, तप व ईश्वर प्रणिधान इस योग दर्शन में ये पाँच 'नियम' जानने चाहिए।

उजुं कडुअ सिर - गीवा - मेरुदंडा णासग्गदिट्ठीए।
णिच्छल-णिवज्जणं चिय, आसणं सय संविदिदव्वं॥339॥

सिर, ग्रीवा व मेरुदण्ड को सीधा करके नासाग्र दृष्टि से निश्चल बैठना ही सदा 'आसन' जानना चाहिए।

पाणायामो णेयो, गदिणिरोहणं दु आणापाणस्स।
पच्चाहारो सग-सग-विसयादु इंदिय-रोहणं च॥340॥

आनप्राण (श्वास-प्रश्वास) की गति का निरोध करना 'प्राणायाम' जानना चाहिए। एवं अपने-अपने विषय से इन्द्रियों का निरोध करना 'प्रत्याहार' है।

धारणा थूलपदत्थवलंबणेणं चित्त-णिरोहणं च।
तिवुडी भावो झाणं, चित्ते झादु-झाण-झेयाण॥341॥

किसी स्थूल पदार्थ के अवलम्बन से चित्त का निरोध करना 'धारणा' है। चित्त में ध्याता, ध्यान व ध्येय का त्रिपुटी भाव ध्यान है।

सव्वविअप्पविहीणा, जत्थ झेयमेत्त-सेसा हंदि सा।
समाही बेविहा संपण्णादासंपण्णादा य॥342॥

सभी विकल्पों से रहित जहाँ ध्येय मात्र शेष है वह 'समाधि' जाननी चाहिए। वह समाधि दो प्रकार की है—सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात।

कस्सिं वि विसयेगम्मि, चित्तपणिहीए जणिदपण्णाए।
संजुत्ता समाही दु, संपण्णादसमाही जाण॥343॥

किसी भी एक विषय में चित्त की एकाग्रता से उत्पन्न प्रज्ञा युक्त समाधि 'सम्प्रज्ञात समाधि' जाननी चाहिए।

झाण-झादु-झेयाणं, तिवुडि-अभावे तस्स सक्कारादु।
सालंबिमो सबीया, किलेस-कम्मंस-सब्भवादु॥344॥

ध्यान, ध्याता व ध्येय की त्रिपुटी का अभाव होने पर भी उसके संस्कार से यह सालम्ब है एवं क्लेश व कर्मांश का सद्भाव होने से सबीज है।

चदुहा समाही जाण, वितक्कणुगदा वियाराणुगदा य।
आणंदाणुगदा तह, अम्हिदाणुगदा य जोगम्मि॥345॥

योगदर्शन में समाधि चार प्रकार की जाननी चाहिए-वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत।

वितक्कणुगदो कस्स वि, थूलपदत्थावलंबणावसियो।
दुविहो सो भेयादो, सवितक्क-णिव्वितक्काणं च॥346॥

समाधि विषयक अभ्यास की प्रथम भूमि में किसी अन्य स्थूल पदार्थ का अवलम्बन आवश्यक है यही वितर्कानुगत है। वह सवितर्क और निर्वितर्क के भेद से दो प्रकार का है।

सवितक्कम्मि सद्दत्थ-णाणाणं थूलवलंबो हवेदि।
णिव्वितक्काणुगदम्मि,केवलंसव्वदाअत्थस्स॥347॥

सवितर्क में शब्द, अर्थ व ज्ञान तीनों का स्थूल आलम्बन होता है एवं निर्वितर्कानुगत में सर्वदा केवल अर्थ का स्थूल आलम्बन होता है।

जदा बुद्धि-अगोयरो, सुहुमो य आलंबणभूद-विसयो।
तदा वियाराणुगदा, संपण्णाद-समाही जाण॥348॥

जब आलम्बनभूत विषय सूक्ष्म व बुद्धि के अगोचर होता है तब वही 'विचारानुगत' सम्प्रज्ञात समाधि जाननी चाहिए।

अज्झप्पिय-पसादं दु, अणुभवदि जदा णिव्वियारे।
तदा आणंदाणुगद-संपण्णादसमाही जाण॥349॥

जब निर्विकार होने पर आध्यात्मिक प्रसाद का अनुभव करने लगता है तब 'आनन्दानुगत' सम्प्रज्ञात समाधि जाननी चाहिए।

उत्तरोत्तरो सुहुमो, अहंताबोहजुदम्हिदाणुगदा।
लहदि विवेगं होच्चा, चित्त-सरूव-पदिट्ठिदं चिय॥350॥

सा विवेगखादी पुण, वेरग्गेण परमप्पसरूवम्मि।
सुद्धचेयणम्मि ठिदी, असंपण्णाद-समाही चिय॥351॥
(जुम्मं)

उत्तरोत्तर सूक्ष्म अहन्ता के बोध से युक्त 'अस्मितानुगत' सम्प्रज्ञात समाधि है। जब चित्त स्वरूप प्रतिष्ठित होकर

विवेक को प्राप्त करता है तब वह 'विवेग ख्याति' है। पुनः वैराग्य द्वारा शुद्ध चेतन परमात्म स्वरूप में अवस्थिति ही असम्प्रज्ञात समाधि है।

कइवइ-भस्सकारेहि, गहिदा धम्ममेहसमाही अत्थ।
विवेग-खादि-पच्छा, पविसदि ताइ चरमवत्थाइ॥352॥

कई भाष्यकारों ने यहाँ (असम्प्रज्ञात समाधि स्वीकार न कर) धर्ममेघ समाधि को ग्रहण किया है। उनके अनुसार विवेक ख्याति के पश्चात् वह उस धर्ममेघ समाधि में प्रवेश करता है। यही समाधि की चरम अवस्था है।

चित्तं दु णिव्वियारं, सुण्णं जदा तिवुडिं अइक्कमित्तु।
तदा अज्झप्पेणं दु, रिदंभरा-पण्णाइ होदि उदयो॥353॥

त्रिपुटी का अतिक्रम करके जब चित्त निर्विकार व शून्य हो जाता है तब अध्यात्म से 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' का उदय होता है।

होच्चा पडिबद्धं णिस्सेसा वासणा सणिअं सणिअं दु।
इमेसु सव्वेसु णिरोहेसु समाही य णिब्बीयं॥354॥

जब वासनाएँ प्रतिबद्ध होकर धीरे-धीरे निःशेष हो जाती हैं तब इन सबका निरोध होने पर समाधि 'निर्बीज' हो जाती है।

इदमेव केवल्लं च, असंपण्णादा समाही अहवा।
अत्थ सक्काररूवो, आलंबणो पण्णरूवो ण॥355॥

यही कैवल्य अथवा असम्प्रज्ञात समाधि है। यहाँ आलम्बन मात्र संस्कार रूप में रहता है, प्रज्ञा रूप नहीं होता।

सक्कारो दुविहो भव-पच्चयो तहा उवाय-पच्चयो दु।
साहगो पदेदि पुणो, भवपच्चय-सक्कारादो य।।356।।

यह संस्कार दो प्रकार का है-भव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय। भवप्रत्यय संस्कार से साधक पतित होता है, क्योंकि भवप्रत्यय संस्कार के साथ वासनाओं के संस्कार बने रहते हैं।

अब्भासेणं दु पत्त-समाही उवाय-पच्चया णेया।
तादो कमेण विअडदि, असंपण्णादा समाही दु।।357।।

अभ्यास द्वारा प्राप्त समाधि उपाय प्रत्यय जाननी चाहिए। उससे क्रम से असम्प्रज्ञात समाधि भी प्रकट होती है।

समाहि-अब्भासे चिय, जोगी अइक्कमदि चउभूमीओ।
पढमकप्पियं महुं च, पण्णाजोदिं अदिक्कंतं।।358।।

समाधि के अभ्यास में योगी चार भूमियों का अतिक्रमण करता है—प्रथम कल्पिक, मधु, प्रज्ञाज्योति व अतिक्रान्त।

अब्भासस्स पाढमिग-दसाइ पत्त-संपण्णाद-पढमा।
असंपण्णाद-समाहि-दसा विदिया महू भूमी य।।359।।

अभ्यास की प्राथमिक दशा में प्राप्त सम्प्रज्ञात समाधि प्रथम 'कल्पिक भूमि' है। असम्प्रज्ञात समाधि की दशा ही द्वितीय 'मधु भूमि' है।

अत्थ सुरा तस्सपहे, दिच्चा बहुपलोहणं दिवादीण।
पययेदि पडिभंसिदुं, किण्णु साहणारदो जोगी।।360।।

ण अंगीकरदि किंचिवि, तदा इड्ढी-सिद्धीणं सामी य।
पण्णाजोदी भूमी, कयाइ भमो भंजिदु-मत्थ वि॥361॥ (जुम्मं)

यहाँ देवता उसके मार्ग में स्वर्गादि का बहुत प्रलोभन देकर उसे मार्ग से च्युत करने का प्रयास करते हैं किन्तु साधनारत योगी उन्हें किञ्चित् भी स्वीकार नहीं करता। तब ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। यही तृतीय 'प्रज्ञा ज्योति' भूमि है। यहाँ भी कदाचित् च्युत होने का भ्रम बना रहता है।

जदि अयलो साहगो दु, अत्थ तो पविसदि चदुत्थ-भूमीइ।
अदिक्कंत-भावणीय-मह किदकिच्चो हवदि जोगी॥362॥

यदि साधक यहाँ भी अचल रहता है तो चतुर्थ अतिक्रान्त भावनीय भूमि में प्रवेश करता है एवं यहाँ योगी कृतकृत्य हो जाता है।

इमाइ भूमीइ सत्त-अवंतर-भेया वि संविदिदव्वा।
उत्तरोत्तर-उण्णदा, इमम्मि जोग-दंसणम्मि चिय॥363॥

इस योगदर्शन में इस भूमि के सात अवान्तर भेद भी जानने चाहिए, जो उत्तरोत्तर उन्नत हैं।

हेयतच्चेसु णाणे, परिण्णेयो णेव सेसो किंचिवि।
हेयकारणे णट्ठे, णेव सेसो पुण खेदव्वो॥364॥

1. हेय तत्त्वों का ज्ञान होने पर परिज्ञेय कुछ भी शेष नहीं रहता। 2. हेय कारणों के नष्ट होने पर क्षेतव्य कुछ शेष नहीं रहता।

**सज्झे णिच्छये पुणो, किंचिवि णिच्छय-करणं सेसो णो।
विवेगखादि-उदयम्मि, पत्तव्वं ण सेसं किंचिवि।।365।।**

3. साध्य का निश्चय हो जाने पर निश्चय करना कुछ भी शेष नहीं रहता। 4. विवेक, ख्याति का उदय हो जाने पर प्राप्तव्य कुछ भी शेष नहीं रहता।

**बुद्धीए मुत्तो चिय, बुद्धिजोगे संपादणे जोगी।
लयादो सग-सग-कारणेसु तियगुणा दु णिस्सेसा।।366।।**

5. बुद्धि योग का सम्पादन होने पर योगी बुद्धि से मुक्त हो जाता है। 6. तीनों गुण अपने-अपने कारणों में लय हो जाने से वे नि:शेष हो जाते हैं।

**तिगुणादीदा जीवण-मुत्ती इमाए चरमभूमीए।
पवेसे जोगिस्स चिय, जोग-दंसणम्मि णिद्दिट्ठा।।367।।**

इस चरम भूमि में प्रवेश करने पर योगी की त्रिगुणातीत जीवनमुक्ति होती है। ऐसा योगदर्शन में निर्दिष्ट किया गया है।

**रयोगुण-पहावेणं, चित्तं सव्वदा किरियासीलं दु।
तहा चित्तस्स किरिया, जणस्स कम्मं तिविहं जाण।।368।।**

रजोगुण के प्रभाव से चित्त सदा क्रियाशील रहता है तथा चित्त की क्रिया ही व्यक्ति का 'कर्म' है जो तीन प्रकार का होता है।

**किरियमाणं संचिदं, पारद्धं णिच्चकम्मं च पढमं।
तादु जणदि सक्कारो, तादु वासणा संचिद-मिमं।।369।।**

क्रियमाण, सञ्चित और प्रारब्ध। नित्य किए जाने वाले कर्म प्रथम अर्थात् क्रियमाण हैं। उनसे संस्कार उत्पन्न होता है और उससे वासना। यही उसका संचित कर्म है।

संचिदकम्मं जणस्स, विहादू जम्म-मरण-सुह-दुहाणं।
सक्कदि फलं दायिदुं, जदा तदा पारद्धं जाण॥370॥

सञ्चित कर्म व्यक्ति के जन्म, मरण, सुख व दुःख का विधाता है। जब यह फल देने में समर्थ होता है तब यह 'प्रारब्ध' जानना चाहिए।

सरीराउ-भोगाणं, संपादणं चिय पारद्ध-कज्जं।
इमेण गहदि सरीरं, गदि-आइं जोगणुसारेण॥371॥

योगदर्शन के अनुसार शरीर, आयु व भोग का सम्पादन इस प्रारब्ध कर्म का कार्य है। इससे व्यक्ति शरीर, गति आदि को ग्रहण करता है।

किरियमाण-कम्मं चदुविहं किण्हं सुक्कं सुक्ककिण्हं।
असुक्कमकिण्हं तहा, जोग-दंसणे मुणेदव्वं॥372॥

योगदर्शन में क्रियमाण कर्म चार प्रकार का जानना चाहिए—कृष्ण, शुक्ल, शुक्लकृष्ण व अशुक्ल अकृष्ण।

परपीडाकारगं च, सयल-पावकम्मं किण्हं णेयं।
पुण्णपावमिस्सिदं च, सयलकम्मं सुक्ककिण्हं दु॥373॥

परपीड़ाकारक सकल पाप कर्म कृष्ण जानने चाहिए। पुण्य व पाप से मिश्रित सकल कर्म 'शुक्ल कृष्ण' हैं।

सवर-सुह-हिदकारगं, सयल-पुण्णकम्मं णेयं सुक्कं।
णो पुण्ण-पाव-हेदू, जोगि-कम्म-मसुक्कमकिण्हं।।374।।

स्वपर सुखकारक व हितकारक सकल पुण्य कर्म 'शुक्ल' एवं जो न पुण्य का हेतु है न पाप का हेतु है, योगी के ऐसे कर्म 'अशुक्ल-अकृष्ण' जानने चाहिए।

बेविहा संचिदकम्म-गद-वासणा जोगदंसणं मणदि।
भेयादु दिट्ठादिट्ठ-जम्मवेयणीयाणं तहा।।375।।

योगदर्शन सञ्चित कर्मगत वासना दो प्रकार की मानता है। दृष्टजन्मवेदनीय व अदृष्टजन्मवेदनीय के भेद से यह दो प्रकार की है।

पढमा तिव्वभावेहि, किद-कम्मजण्णवासणा सिग्घं दु।
फलपदायत्तादो य, दिट्ठजम्मवेयणीया चिय।।376।।

तीव्र भाव से किए गए पुण्य व पापकर्म-जन्य वासना शीघ्र फल प्रदायक होने से प्रथम 'दृष्टजन्म वेदनीय' जानना चाहिए।

मंदभावेहिं च किद-कम्माण वासणा अण्णजम्मेसु।
फलपदायत्तादो दु, अदिट्ठजम्मवेयणीया य।।377।।

मन्दभावों से किए गए कर्मों की वासना अन्य जन्मों में फल प्रदायक होने से 'अदृष्ट जन्म वेदनीय' है।

अदिसय-मंदभावेहि, करणे वि जीवणमुत्ताणं कम्मं।
णेव वासणा-जणगो णिक्कामत्तादो जोगम्मि।।378।।

जीवन्मुक्तों का कर्म अत्यन्त मन्दभावों से करने पर निष्काम होने से वासना-जनक नहीं होते। ऐसा योगदर्शन मान्य है।

धम्ममेहसमाहीइ, पहावेण सव्वकम्मादु चित्तं।
ताणं फलभूदसयल-किलेसादो होदि णिवट्टं॥379॥

धर्म मेघ समाधि के प्रभाव से चित्त सकल कर्मों से तथा उनके फलभूत सकल क्लेशों से निवृत्त हो जाता है।

होच्चा पदिट्ठिदं सगचित्तसरूवे लहदे केवल्लं।
इमा हि जोग-दंसणे, मुत्ती जाणेज्ज सा तिविहा॥380॥

स्वचित्त स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर कैवल्य को प्राप्त करता है। योगदर्शन में यह ही मुक्ति जाननी चाहिए। वह मुक्ति तीन प्रकार की है।

लय-जीवण-विदेहा य, धम्ममेहसमाहीए चित्तस्स।
लय-हवणं लयमुत्ती, संविदिदव्वा मणीसीहिं॥381॥

लयमुक्ति, जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति। धर्म मेघ समाधि के द्वारा चित्त का लय होना लयमुक्ति मनीषियों के द्वारा जाननी चाहिए।

चित्तवित्तीए तहा, सक्कारा ताणं तह उदयादो।
पुणो वित्ती हु इमस्स, चक्कसंती अस्स सरूवो॥382॥

चित्त वृत्ति से संस्कार और उनके उदय से पुनः वृत्ति, इस चक्र की शान्ति ही इस (लयमुक्ति) का स्वरूप है।

जीवणमुत्ती णेया, अंतिम-अदिक्कंत-भूमि-पत्ती दु।
ससरीरी अवि भिण्णो, अणुभवदे सलिले कमलं व॥383॥

अन्तिम अतिक्रान्त भूमि की प्राप्ति ही जीवन्मुक्ति जाननी चाहिए। यहाँ सशरीर भी योगी स्वयं को जल में कमलवत् अनुभव करता है।

देहादो मुत्ती चिय, विदेहमुत्ती य मोक्खंतावत्था।
एवंविह णिद्दिट्ठा, लयादी चिय तिविहा मुत्ती॥384॥

देह से मुक्ति ही विदेह मुक्ति है। यह मोक्ष की अन्तिम अवस्था है। इस प्रकार योगदर्शन में लय आदि तीन प्रकार की मुक्ति निर्दिष्ट की गई है।

पंचविहकिलेसादो, कम्मादु तज्जणिद-भोगादीदो।
रहिद-पुरिसो ईसरो, मण्णिज्जदि जोगदंसणम्मि॥385॥

पाँच प्रकार के क्लेशों से तथा कर्म व तज्जन्य भोगादि से रहित पुरुष, योगदर्शन में ईश्वर माना जाता है।

इच्छा-णाण-किरियाहि, सिट्ठिपलयकारग-तिसत्तिजुत्ता।
ईसरो सया मुत्तो, सव्वण्हू जोगणुसारेण॥386॥

योगदर्शन के अनुसार वह ईश्वर इच्छा, ज्ञान व क्रिया इन सृष्टि-प्रलयकारी तीन प्रधान शक्तियों से युक्त, सदा मुक्त व सर्वज्ञ होता है।

योगदर्शन समीक्षा

संख-पूरगं मदं हु, इदं दइदवादी य संखमदं व।
ईसर-गहणत्तादो, सेसरसंखो वि जोगमदं।।387।।

यह योगमत साङ्ख्यमत का पूरक है। साङ्ख्यमत के समान यह योगदर्शन भी द्वैतवादी है। ईश्वर की सत्ता को ग्रहण करने से यह योगमत सेश्वर साङ्ख्य के नाम से भी जाना जाता है।

दिट्ठ-इट्ठ-विरुद्धं हु, जोगदंसणं च संखदंसणं व।
णेवसीसेमियपुणो,पिट्ठ-पेसण-दोस-भयादो।।388।।

साङ्ख्य दर्शन के समान यह योग दर्शन दृष्ट (प्रत्यक्ष) व इष्ट (अनुमान) विरुद्ध है। पिष्टपेषण दोष के भय से इसे यहाँ पुनः नहीं कहते।

हठवादो णो धम्मो, धम्मो सया सहजपरिणामेहिं।
पूरो विद्धंसयरो, सुहंकरा जह संतसरिदा।।389।।

साङ्ख्य हठवाद को स्वीकार करते हैं, किन्तु हठवाद कोई धर्म नहीं होता। धर्म सहज परिणामों से ही होता है। जैसे बाढ़ का जल विध्वंसकारी और शान्त नदी सदैव सुखकारक होती है।

णिच्चेगंत-वत्थुम्मि, किरियादी परिवट्टेज्ज कयावि ण।
कारगाभावादु पुण, कहं पमाणं कहं फलं च।।390।।

यदि सर्वथा सभी वस्तुओं को नित्य माना जाए तो उनमें क्रियादि परिवर्तन नहीं होंगे और पहले ही कर्ता–कर्म आदि कारकों का अभाव होने से प्रमाण कहाँ रहेगा और तब उसका फल भी कहाँ होगा?

अणिच्चत्तेगंतम्मि, मदे असंभवो पेच्चभावादी।
कज्जारंभो ण फलं, पच्चभिणाणाइ अभावादु॥391॥

यदि सर्वथा सभी वस्तुओं को अनित्य माना जाए, जो उस एकान्त मत में परलोकगमन आदि सम्भव नहीं है। प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से कार्य का आरम्भ और फल भी सम्भव नहीं होगा।

तव मदे वत्थु-णिच्चं, पच्चहिणाणादो णेव अकम्हा।
वत्थु-अणिच्चं वि अत्थ, कालभेदपरिणमणादो दु॥392॥

हे प्रभु! आपके मत में वह वस्तु नित्य है; क्योंकि उसका प्रत्यभिज्ञान होता है और वह भी आकस्मिक नहीं होता। क्योंकि वह अविच्छिन्न रूप से अनुभव में आता है। और आपके मत में ही वस्तु अनित्य वा क्षणिक भी है; क्योंकि काल के भेद से परिणमन पाया जाता है।

णेव सव्वहा असदो, कज्जाणुप्पत्ती खरविसाणं व।
णेव सव्वहा सदो वि, कज्जुप्पत्ती खरविसाणं व॥393॥

हे जिनेन्द्र देव! आपके मत में सर्वथा असत् भी नहीं है; क्योंकि सर्वथा असत् होने पर कार्य की उत्पत्ति गधे के सींग के समान ही होगी अर्थात् कार्य की उत्पत्ति नहीं होगी

और सर्वथा सत् भी नहीं है; क्योंकि सर्वथा सत् होने पर भी कार्योत्पत्ति गधे के सींग के समान असंभव है।

ण जणदि ण खयदि दव्वट्ठिगेणं किण्णु पज्जट्ठिग-णयेण।
जणदि खयदि वत्थुं उप्पाद-वयधुवत्तजुद-सदो हु॥394॥

द्रव्यार्थिक नय से वस्तु का न नाश होता है और न उत्पन्न होती है। किन्तु पर्यायार्थिक नय से वस्तु उत्पन्न भी होती है और नष्ट भी होती है। उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य से युक्त ही सत् है।

वेदान्त दर्शन

वेदंतिम-भागस्स दु, पयासगादो उत्तरमीमंसा।
सुप्पसिद्धं वेदंतदंसण-णामेण इह जगम्मि॥395॥

वेदों के अन्तिम भाग का प्रकाशक होने से उत्तर-मीमांसा इस संसार में वेदान्तदर्शन नाम से सुप्रसिद्ध है।

अणेग-साहा इमस्स, भत्तुपपंचो संकरो भक्करो।
रामाणुजो य वल्लहो, मद्धो सिरिकंठ-वेदंतो॥396॥

इसकी अनेक शाखाएँ हैं-भर्तृ प्रपञ्च वेदान्त, शाङ्कर वेदान्त, भास्कर वेदान्त, रामानुज वेदान्त, वल्लभ वेदान्त, माध्व वेदान्त एवं श्रीकण्ठ वेदान्त।

बंभ-अद्दइद-वायी, संकर-वेदंतो चिय सव्वेसुं।
वेदंतेसुं सव्वाहिय-सुप्पसिद्धो णादव्वो॥397॥

इन सभी वेदान्तों में ब्रह्म अद्वैतवादी शाङ्कर वेदान्त सर्वाधिक सुप्रसिद्ध जानना चाहिए।

अस्स दंसणस्स मूल-पवट्टगो रिसी-वादरायणो य।
जेणं रइदं बंभ-सुत्तं मूल-गंथो णेयो॥398॥

इस दर्शन के मूल प्रवर्तक ऋषि वादरायण हैं। जिनके द्वारा रचित 'ब्रह्मसूत्र' इस दर्शन का मूल ग्रंथ जानना चाहिए।

सिरिवीरणिव्वाणस्स, किंच समहिद-चउसयवस्सपच्छा।
जादं च वादरायण - पवट्टिद - वेदंतमदमिदं॥399॥

वादरायण प्रवर्तित यह वेदान्त मत भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के कुछ अधिक 400 वर्ष बाद हुआ।

संकर-वेदंतस्स दु, बंभ-अद्दइद-वादस्स अहवा दु।
संकराइरियो मूल-पवट्टगो य संविदिदव्वो॥400॥

शाङ्कर वेदान्त या ब्रह्म अद्वैतवाद के मूल प्रवर्तक शङ्कराचार्य जानने चाहिए।

संकर-वेदंत-मदं, णित्थयर-महावीर-णिव्वाणस्स।
किंचूणत्तेरस-सय-वस्स-पच्छा चिय संजादं॥401॥

यह शाङ्कर वेदान्त मत तीर्थंकर महावीरस्वामी के निर्वाण के कुछ कम 1300 वर्ष बाद उत्पन्न हुआ।

बंभो एव सच्चं च, विस्सो मिच्छा संकरवेदंते।
जीवो बंभो एगो, णेव अवरो अद्दइदमदे॥402॥

शाङ्कर वेदान्त में ब्रह्म ही सत्य है और यह विश्व मिथ्या है। इस अद्वैत मत में जीव और ब्रह्म एक है, अलग-अलग नहीं है।

जस्सिं णेव वियारो, ण परिवट्टणो सया अवट्ठिदो हि।
तियाले जो सदो सो, अप्पा बंभो वावगादु य॥403॥

जिसमें न कोई विकार हो, न परिवर्तन, जो त्रिकाल एक रूप अवस्थित रहता हो वह 'सत्' है। वह सत् 'आत्मा' है और व्यापक होने से वही ब्रह्म है।

अप्पा खलु अवट्ठिदो, संपुण्णजगो चराचरपदत्था।
अद्दइदाणं असदो, मिच्छा तह आभासमेत्तं॥404॥

आत्मा ही अवस्थित है। सम्पूर्ण जगत् व सकल चराचर पदार्थ अद्वैतवादियों के लिए मिथ्या, असत् तथा आभास मात्र हैं।

जहवि अप्पा चिय सदो, तहवि ववहारेण तिविहा सत्ता।
परमट्ठिग - ववहारिग - पडिभासिगाणं भेयादो।।405।।

यद्यपि आत्मा ही सत् है तथापि व्यवहार से सत्ता तीन प्रकार की है–पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक।

अप्पा परमट्ठ-सदो, एगरूवे अवट्ठिदादो सया।
ववहारजगम्मि दिट्ठि-गोयरत्था ववहार-सदो।।406।।

सदा एक रूप में अवस्थित होने से आत्मा 'परमार्थ सत्' है। व्यवहार जगत् में दृष्टिगोचर पदार्थ 'व्यवहार सत्' हैं।

रज्जूए दु सप्पोव्व, पडिभासंति परमट्ठसत्ताए।
आरोविदा पदत्था, पडिभासिग-सदो जाणेज्जा।।407।।

रस्सी में सर्प के समान पदार्थ परमार्थ सत्ता पर आरोपित प्रतिभासित हो रहे हैं वह 'प्रातिभासिक सत्' जानना चाहिए।

बंभो सया विहीणो, तिविहदेहादो पंचकोसादो।
जागरिअ-सिविण-सुसुत्ति-अवत्थासु अणुगदो णिच्चं।।408।।

तस्स सक्खीमेत्तं हि, सव्वदा सच्चिदाणंद-सरूवो।
तियाले अवट्ठिदादु, एगरूवादु सदो णेयो।।409।। (जुम्मं)

ब्रह्म तत्त्व त्रिविध शरीरों और अन्नमयादि पाँच कोशों से सदैव विहीन है। जागृत, स्वप्न व सुषुप्ति इन तीन

अवस्थाओं में नित्य अनुगत है एवं उसका साक्षी मात्र है। सच्चिदानन्द मात्र उसका स्वरूप है। तीनों कालों में एक रूप व अवस्थित रहने से वह सत् जानना चाहिए।

सुद्धबोहसरूवादु, चिदो य अच्चंतणिव्विअप्पादो।
आणंदो सय बंभो, णिम्मलसुहसरूवादो खलु।।410।।

शुद्ध बोध स्वरूप होने के कारण 'चित्' तथा अत्यन्त निर्विकल्प व निर्मल सुख स्वरूप होने से वह ब्रह्म 'आनन्द' रूप है। इस प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूपी है।

पइडी बेविहा हंदि, सुद्धासुद्ध-पइडीण भेयादो।
सुद्ध-पइडी हि माया, अविज्जा तह असुद्धपइडी।।411।।

शुद्ध व अशुद्ध प्रकृति के भेद से प्रकृति दो प्रकार की है। शुद्ध प्रकृति ही माया है और अशुद्ध प्रकृति अविद्या।

सत्ति-सत्तिमंतादो, बंभो माया परमट्ठेणेक्को।
तस्स खुद्दंस-माया, जगणिम्माणसत्तिजुत्ता य।।412।।

शक्ति व शक्तिमान् होने से ब्रह्म व माया परमार्थतः एक हैं। माया उस ब्रह्म का एक क्षुद्र अंश है। यह जगत् निर्माण की शक्ति से युक्त है।

माया तिगुणसंजुदा, बंभो तिगुणादीदो णादव्वो।
एगरूवे वि भिण्णो, भित्ती जह भित्ति-चित्तादो।।413।।

माया त्रिगुण संयुक्त एवं ब्रह्म त्रिगुणातीत जानना चाहिए। एक रूप होने पर भी यह उससे उसी प्रकार भिन्न है जैसे भित्ति चित्र से भित्ती।

तम्हा माया ण सदो, णेव असदो णेव उहयो कया वि।
तिगुणमिस्सणं माया, संखस्स अव्वत्तपइडीव॥414॥

इसलिए माया न सत् है, न असत् है और न ही उभय है। साङ्ख्य की अव्यक्त प्रकृति के समान तीन गुणों का मिश्रण माया है।

असुद्ध-पइडि-अविज्जा, अविवेगो अहंकारो वि अहवा।
कारणं जणावेदुं, अप्पबुद्धि - मणप्पभूदेसु॥415॥

पंचतम्मत्ता - महद - अव्वत्त - अहंकार - ट्ठतच्चेसु।
कारण-सरीरं पि सय, संसार-मूल-कारणादो॥416॥ (जुम्मं)

अशुद्ध प्रकृति अविद्या है। अथवा अविवेक या अहङ्कार का नाम अविद्या है। यह पाँच तन्मात्रा, महत्, अहङ्कार, अव्यक्त इन आठ अनात्मभूत तत्त्वों में आत्मबुद्धि उत्पन्न कराने में हेतु है। सदैव संसार का मूल कारण होने से यह ही 'कारण शरीर' है।

अविवेगो हि अविज्जा, तं अखंड-सत्तं च समट्ठीए।
पस्संतो वट्ठीणं, पुधु-पुध सत्तं अवअच्छेदि॥417॥

अविवेक ही अविद्या है। वह समष्टि की अखण्ड सत्ता को देखते हुए व्यष्टियों की पृथक्-पृथक् सत्ता को देखता है।

जह तरंगेसु अणुगद-सायरं णेव पस्संतो मेत्तं।
अवअच्छेदि तरंगं, तह जाण अविवेगी बुद्धी॥418॥

जैसे तरङ्गों में अनुगत सागर को न देखती हुई मात्र तरङ्गों को ही देखती है। उसी प्रकार अविवेकी बुद्धि अखण्ड समष्टि की अखण्ड सत्ता को न देखती हुई व्यष्टियों की पृथक्-पृथक् सत्ता को देखती है।

परमट्ठिग-सत्ताए, सरूव-अण्णाणं अविज्जा जाण।
वयण-अगोयरा सया, सयं णिव्विअप्पत्तादो य।।419।।

पारमार्थिक सत्ता के स्वरूप का अज्ञान ही अविद्या जाननी चाहिए। वह स्वयं निर्विकल्प होने के कारण सदा वचनों के अगोचर है।

उहय-सरीराण मूल-कारणं होच्च सयलजगपपंचं।
विविहविट्ठि संजुदस्स, उप्पज्जेदि अविज्जा हंदि।।420।।

सूक्ष्म व स्थूल दोनों शरीरों का मूल कारण होकर विविध व्यष्टियों से संयुक्त इस सकल जग प्रपञ्च को अविद्या ही उत्पन्न करती है।

पडिभासेदि अणेगा, मायाए एगाखंडा सत्ता।
अविज्जाए हि लुंपदि, समट्ठिभावो वेदंतम्मि।।421।।

वेदान्तदर्शन में माया से एक, अखण्ड सत्ता अनेक रूप प्रतिभासित होती है जबकि अविद्या के कारण समष्टि भाव ही दृष्टि से सर्वथा लुप्त हो जाता है।

वावग-माया समट्ठि-णिम्मावगादो तह दंसगादो।
अविज्जा संकिण्णो दु, विट्ठि-णिम्मावग-दंसगादु।।422।।

माया ईश्वरीय सृष्टि के रूप में समष्टि–निर्मापक व समष्टि–दर्शक होने से व्यापक है जबकि अविद्या बाह्याभ्यंतर जैवी–सृष्टि के रूप में व्यष्टि–निर्मापक व व्यष्टि–दर्शक होने से सङ्कीर्ण है।

माया–अविज्जाणं पि, अभाव–सब्भावादो तच्चेगं।
तिविहं विआणिज्जेदि, अप्पा ईसरो तह जीवो।।423।।

तत्त्व परमार्थतः एक है परन्तु माया व अविद्या के अभाव व सद्भाव होने से तीन प्रकार का जाना जाता है—आत्मा (ब्रह्म), ईश्वर व जीव।

सया हि उवाहि–सुण्णो, सुद्धसच्चिदाणंद - मेत्त - मप्पा।
मायाइ उवाहिजुदो ईसरो अविज्जाइ जीवो।।424।।

आत्मा (ब्रह्म) सर्वथा उपाधि शून्य शुद्ध सच्चिदानन्द मात्र है। माया की उपाधि से युक्त वही ईश्वर है और अविद्या की उपाधि से युक्त जीव है।

मायाए उवाही दु, समट्ठी अणेगरूवा जाणेज्जा।
वट्ठीइ सत्तारूव- गहणं उवाही अविज्जाइ।।425।।

समष्टि का अनेक रूप हो जाना ही माया की उपाधि जाननी चाहिए तथा व्यष्टि को ही सत्ता रूप ग्रहण करना अविद्या की उपाधि है।

ईसरो णाण–विराग–सिरि–जस–धम्म–एसज्जेहि जुत्तो।
सव्वंतरयामी सच्चकामो सच्चसंकप्पो य।।426।।

ज्ञान, वैराग्य, श्री, यश, धर्म व ऐश्वर्य इन छह गुणों से सम्पन्न ईश्वर है। ईश्वर सर्वान्तर्यामी, सत्यकाम व सत्य संकल्प होता है।

सयलविस्सो सरीरं, जस्स सो ईसरो सव्वबुद्धीहि।
जाणदि सव्वमणेहि, चिंतदि सव्वकरेहि कुणदे।।427।।

सकल विश्व ही जिसका शरीर है वह ईश्वर है। सबकी बुद्धि से वही जानता है, सबके मनों से वही विचार करता है, सबके हाथों से वही करता है।

सव्वमुहेहिं सो चिय, वददि अददि य चरदि सव्वपादेहि।
अखंड-समट्ठी ईस-सरूवो तरंगिद-सिंधुव्व।।428।।

सबके मुखों से वही बोलता व खाता है और सबके पाँवों से वही चलता है। तरङ्गित सागरवत् अखण्ड समष्टि ही ईश्वर का स्वरूप है।

सुहुमसरीरहिट्ठाण-चेयण्णं सयं सुहुमसरीरं च।
तस्सिं संपइ चिदस्स, छाया तिण्णि-णिअरो जीवो।।429।।

सूक्ष्म शरीर का अधिष्ठान चैतन्य (ब्रह्म), सूक्ष्म शरीर स्वयं और उसमें वर्तमान चित् की छाया, इन तीनों का समूह ही जीव है।

अहवा कूडत्थप्पे, कप्पिद-बुद्धीए चिद-पडिबिंबो।
सो जीवो वेदंते, पाण-धारणादो चिय।।430।।

अथवा कूटस्थ आत्मा में जो कल्पित बुद्धि है, उसमें जो चित् का प्रतिबिम्ब पड़ता है, वही प्राण-धारण करने से वेदान्तदर्शन में जीव कहलाता है।

अद्दइद-मदे जीवो, सो हि जम्मेदि मरेदि संसारे।
पावदि मुत्तावत्थं, णो कूडत्थ-अप्पा कया वि॥431॥

इस अद्वैत मत में जीव ही संसार में जन्म लेता है, मृत्यु को प्राप्त करता है और जीव ही मुक्ति को प्राप्त करता है, कूटस्थ आत्मा नहीं।

अप्पा हि मेत्तं सदो, अणूदो देव-पज्जंतं सयलो।
पवंचो सया मिच्छा, वेदंते अद्दइद-मदम्मि॥432॥

इस अद्वैत वेदान्त मत में आत्मा या ब्रह्म तत्त्व ही एकमात्र सत् है। उसके अतिरिक्त परमाणु से लेकर देवता पर्यन्त सर्वथा यह सकल मिथ्या प्रपञ्च है।

गुणत्तयस्स य सम्मावत्थाए सत्तिरूव-मायाए।
रजोगुणपबलत्तेण, खुद्धादो तदुपाहिजुदादु॥433॥

ईसरणामय-चेयण्णादो णहो उप्पज्जेदि पढमो।
तादो वाऊ तादो, अग्गी तादु जलं तादु भू॥434॥ (जुम्मं)

गुणत्रय की साम्यावस्था में माया शक्तिरूपेण विद्यमान रहती है। उसके रजो गुण की प्रबलता से वह क्षुब्ध हो जाती है जिसके कारण तदुपाधि-युक्त ईश्वर नामक चैतन्य से सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् क्रमशः उस आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न होता है।

पंच-पहाण-तच्चाणि, संखाए एगो एगो हि अत्थ।
इमाण पुध पुध सत्तंसादु णाणिंदिया रोहंति॥435॥

ये पाँच प्रधान तत्त्व यहाँ सङ्ख्या में एक-एक ही हैं। इन पाँचों के पृथक् पृथक् सत्त्वांशों से ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।

ताण रजंसादो कम्मिंदिया तमंसादो तम्मत्ता।
तहेव संजुत्त-एग-सत्तंसादो वक्कमंति य।।436।।

मण - बुद्धी अहंकार - चित्तं संजुद - एग - रजंसादो।
आण-पाण-उदाण-वाण-समाणा चिय पंचपाणा।।437।। (जुम्मं)

उनके रजांशों से कर्मेन्द्रियाँ एवं तमांशों से पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। उसी प्रकार संयुक्त एक सत्त्वांश से क्रमशः मन, बुद्धि, अहङ्कार व चित्त तथा संयुक्त एक रजांश से आन, प्राण, उदान, व्यान व समान में पाँच प्राण उत्पन्न होते हैं।

तम्मत्ता - मिस्सणादु, पण - सुहुम - महाभूदाणि रोहंति।
सयल - भोदिक - सिट्ठीइ, मूल-उवादाणं जाणेज्ज।।438।।

तन्मात्राओं के सम्मिश्रण से साङ्ख्य मान्य वे पञ्च सूक्ष्म महाभूत उत्पन्न होते हैं, जो सकल भौतिक सृष्टि के मूल उपादान जाने जाते हैं।

णेव परिणामवायी, दंसणमिदं विवत्तवायी तहा।
णो रोहदि ण परिणमदि, सिंधुव्व पुणो होच्च सुण्णमेगं।।439।।

यह दर्शन परिणामवादी नहीं है, यह विवर्तवादी है। जिससे वस्तु न तो नयी उत्पन्न होती है और न बदलती है

बल्कि तरंगित सागर के समान अनेकधा और पुनः तरङ्ग शून्य होकर एक हो जाती है।

रज्जूइ सप्पोव्व सय, भासदि जगो सत्ताभूदतच्चे।
अस्स दंसणस्स जाण, पडिभास-विवत्तवायो वा॥440॥

जिस प्रकार भ्रान्तिवश ही रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है, उसी प्रकार भ्रान्तिवश ही सत्ताभूत तत्त्व में जगत् की प्रतीति होती है (जो पीछे तत्त्वज्ञान हो जाने पर निवृत्त हो जाती है) यही इस दर्शन का प्रतिभास या विवर्तवाद जानना चाहिए।

अत्थ तिविहं सरीरं, थूल-सुहुम-कारणाण भेयादो।
थूलस्स उवादाणं, सुहुमं सुहुमस्स अविज्जा य॥441॥

यहाँ स्थूल, सूक्ष्म व कारण के भेद से तीन प्रकार के शरीर माने गए हैं। जिस प्रकार स्थूल शरीर का उपादान सूक्ष्म शरीर है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर का उपादान अविद्या है।

इमाइ बुद्धीइ वट्ठि-सत्ता जीवंदो पहाण-तच्चं।
सुहुमसरीरस्स दु जं, त-मविज्जा कारण-सरीरं॥442॥

इसी से बुद्धि में व्यष्टि सत्ता जीवन्त है जो कि सूक्ष्म शरीर का प्रधान तत्त्व है। अतः अविद्या ही कारण शरीर है।

णिच्छिद-अणुवादे पण-भूदाणं मिहो संलिद्ध-हवणं।
पंचीकरणं णेयं, णिम्माणदि थूलदेहं जं॥443॥

एक निश्चित अनुपात में पाँच भूतों का परस्पर में संश्लिष्ट होना पञ्चीकरण जानना चाहिए; जो स्थूल देह का निर्माण करता है।

थूलदेहेण जीवो, पुव्वकिदकम्मजणिद-सुहं दुक्खं।
भुंजेदि वच्चदि कुणदि, पुढवी-आदीहि णिम्मिदेण।।444।।

पृथ्वी आदि परमाणुओं से निर्मित स्थूल देह से जीव पूर्वकृत कर्मजन्य सुख-दुःखों को भोगता है, गमन करता है वा अन्य कार्य करता है।

सुहुमसरीरं कज्जं, अपंचीकदपणमहाभूदाणं।
इंदिय-पाण-बुद्धि-मण-समूहो चिय सुहुमसरीरं।।445।।

सूक्ष्म शरीर अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतों का कार्य है। यह सूक्ष्म शरीर इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि व मन इन तत्त्वों का समूह है।

जीवस्स सुहुमदेहो, जम्मदि मरदि णेव अप्पा कया वि।
वेदंतणुसारेणं, अक्खाणि भोय-साहणाणि दु।।446।।

वेदान्तदर्शन के अनुसार इन्द्रियाँ भोग की साधन हैं। जीव की सूक्ष्म देह ही मरती है, जन्मती है, आत्मा कभी नहीं।

पंचकोसा वि णेया, अण्णमओ पाणमओ मणोमओ।
विण्णाणाणंदमओ, कयाइ मायामओ छट्ठो।।447।।

तीन शरीर के अतिरिक्त पाँच कोष भी जानने चाहिए- अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। कदाचित् मायामय षष्ठ कोष भी जाना जाता है।

सव्वहिय-थूल-बहिरं, थूलसरीरं अण्णमओ कोसो।
अण्णादो उप्पज्जदि, अंते अण्णे विलीणं तं।।448।।

सर्वाधिक स्थूल बाह्य यह स्थूल शरीर ही प्रथम अन्नमय कोष है। यह अन्न से ही उत्पन्न होता है और अन्न में ही विलीन हो जाता है।

तम्मि अदिक्कमे होदि, पाणमओ कोसो सत्ती पाणो।
पंचकम्मिंदियाणं, कुव्वदि संचालणं जा सा।।449।।

उसका अतिक्रम होने पर द्वितीय प्राणमय कोष होती है। शरीर में वह शक्ति ही प्राण है जो पाँच कर्मेन्द्रियों का सञ्चालन करती है।

तस्सिं अदिक्कमे खलु, तिदियो-मणोमओ कोसो हवेदि।
णाणक्ख-संचालणं, कुव्वेदि मणो अणंतरं दु।।450।।

विण्णाणमओ कोसो, जत्थ चेयणाइ वावग-सत्तीइ।
होदि दंसणं धीए, आलोअदे णाणक्खाइं।।451।। (जुम्मं)

उसका अतिक्रम होने पर तृतीय मनोमय कोष होता है। मन ज्ञानेन्दियों का सञ्चालन करता है। अनन्तर इसका अतिक्रम करने पर चौथा विज्ञानमय कोष होता है, जहाँ चेतना की व्यापक शक्ति का दर्शन होता है जो कि बुद्धि द्वारा ज्ञानेन्द्रियों को आलोकित करती है।

अह आणंदमओ खलु, कोसो बुद्धीए ठिदं हिअयं हि।
जत्थ मित्ती पेम्मं च, समत्तादी सय सुहभावा।।452।।

अनन्तर उसका भी अतिक्रम हो जाने पर पञ्चम आनन्दमय कोष प्राप्त होता है। बुद्धि के भीतर स्थित हृदय

ही आनन्दमय कोष है। जहाँ सदा मैत्री, प्रेम व समत्वादि शुभ भाव होते हैं।

छट्ठ-मायाकोसम्मि, लुंपदि सया वट्ठिभावो इदं हि।
ईसर-दंसणं तस्स, सत्ती माया विस्स-देहो॥453॥

षष्ठ माया कोष में यह व्यष्टि भाव सर्वथा लुप्त हो जाता है। यही है ईश्वर दर्शन क्योंकि माया उसकी शक्ति है और यह अखिल विश्व उसका शरीर।

सव्वकोसेसुं अदिक्कमेसुं च सगाणुभवगम्माए।
बंभबुद्धि-उप्पत्ती, मुत्ती खलु अस्स दंसणस्स॥454॥

सर्व कोषों का अतिक्रम होने पर स्वानुभवगम्य ब्रह्म-बुद्धि की उत्पत्ति ही इस दर्शन की मुक्ति है।

मुत्ती दुविहा णेया, भेयादो जीवण-विदेहाणं च।
णियं सरीरादीदो, सुद्धचिम्मयो य बोहंतो॥455॥

सयललोयववहारं, साहदि जेण तिविह-कम्मं खयंति।
पढम-दसाए सा चिय, जीवणमुत्ती मुणेदव्वा॥456॥ (जुम्मं)

वह मुक्ति जीवन्मुक्ति व विदेह मुक्ति के भेद से दो प्रकार की जाननी चाहिए। प्रथम दशा में शरीर से अतीत स्वयं को चिन्मय मात्र समझता हुआ सकल लोकव्यवहार साधता रहता है, जिससे त्रिविध कर्म नष्ट हो जाते हैं, वह जीवन्मुक्ति जाननी चाहिए।

देहे अवसाणे पुण, होदि लीणो जोदीए जोदीव।
परमतच्चम्मि जादो, णो पुण आगमणं विदेहा॥457॥

पुनः देह का अवसान होने पर ज्योति में ज्योति की भांति वह परम तत्त्व में समा जाता है, तब उसका पुनरागमन सम्भव नहीं। यही इसकी विदेह मुक्ति है।

मीमंसगोव्व छव्विह-पमाणं पच्चक्खमणुमाणं तहा।
उवमाण-मत्थापत्ति-अणुवलद्धी मण्णदि सद्दो॥458॥

यहाँ भी मीमांसकों के समान छह प्रकार के प्रमाण हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि व शब्द।

संखोव्व अक्ख-पच्चक्खं तह विसेसो बंभ-पच्चक्खं।
चिदप्पडिबिंबिद-चित्त-विट्टी बंभुम्मुही खयदे॥459॥

अण्णाण-मविज्जं वा, पच्छा बंभे पच्चक्खे सयं पि।
चित्तं हि बंभरूवो, बंभस्स पच्चक्खणुभूदी॥460॥ (जुम्मं)

इन्द्रियप्रत्यक्ष साङ्ख्यवत् है परन्तु ब्रह्मप्रत्यक्ष साक्षात् प्रक्रिया विशेष है। चित् प्रतिबिम्बित चित्तवृत्ति ब्रह्मोन्मुखी होकर अविद्या वा अज्ञान को नष्ट कर देती है। पश्चात् ब्रह्म का प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) होने पर वह स्वयं भी नष्ट हो जाती है। तब चित्त स्वयं ही ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। यही ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति है।

पच्चक्खपमाणं बेविहं इंदियजं तह अणिंदियजं।
इंदियजं अवि दुविहं, सविअप्पं चिय णिव्विअप्पं॥461॥

प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकार का है—इन्द्रियज तथा अनिन्द्रियज। इन्द्रियज दो प्रकार का है—सविकल्प व निर्विकल्प।

णइयाइगोव्व पढमं, सुहदुहाइ-वेयणं अणिंदियजं।
वत्तिणाणुप्पण्ण-अणुमिदी तस्स करण-मणुमाणं।।462।।

प्रथम तो नैयायिकों के समान है। सुख-दु:खादि का वेदन यहाँ अनिन्द्रियज है। व्याप्ति ज्ञान से उत्पन्न जो अनुमिति है, उसके करण को अनुमान कहते हैं।

केवलं मण्णदि हेदू, अणवयी ण वदिरेगी वेदंते।
णाणं सयं पयासी, सयं पामण्णवादी हि तं।।463।।

वेदान्त में हेतु केवल अन्वयी ही मानते हैं, व्यतिरेकी नहीं। ज्ञान स्वयं प्रकाशी मानने से इसका स्वत: प्रामाण्यवादी होना स्वाभाविक है।

भक्करेण पवट्टिदे, भक्करवेदंते बंभो दुविहो।
कारण-कज्ज-रूवम्मि,दइद-अद्दइदवायीमदं।।464।।

भास्कराचार्य द्वारा प्रवर्तित भास्कर वेदान्त में ब्रह्म तत्त्व कारण व कार्य के रूप में दो प्रकार का होता है। इसलिए यह द्वैताद्वैतवादी मत कहलाता है।

णिच्च-चेयण्ण-रूवो, कारणबंभो चिय संविदिदव्वो।
कज्ज-बंभो य अणिच्च-जग-पवंच-सरूवो य अत्थ।।465।।

यहाँ नित्य चैतन्य स्वरूप कारणब्रह्म और अनित्य जग-प्रपञ्च स्वरूप कार्य ब्रह्म जानना चाहिए।

विज्जाए य अट्ठंग-जोगब्भासरूवे आवसियो दु।
णाणं किरिया उहयो, मोक्खपत्तीइ भक्करमदे।।466।।

भास्कर मत में मोक्ष प्राप्ति के लिए विद्या एवं अष्टाङ्ग योग के अभ्यास रूप में ज्ञान व क्रिया दोनों की आवश्यकता है।

मुत्ती दुविहा णेया, सज्जोमुत्ती कममुत्ती तहा दु।
पढमं लहदि तक्खणं, पच्चक्खबंभुवासणाए।।467।।

इसमें मुक्ति दो प्रकार की जाननी चाहिए-सद्यो मुक्ति व क्रम मुक्ति। प्रथम प्रत्यक्ष ब्रह्म की उपासना से तत्क्षण प्राप्त होती है।

पावदे विदियमुत्तिं विविहलोएसुं भमंतो अंते।
देवयाणमग्गेणं, अस्स मदस्स हिरण्णेण सह।।468।।

इस मत की द्वितीय मुक्ति देवयान मार्ग से विविध लोकों में भ्रमण करते हुए अन्त में हिरण्यगर्भ के साथ होती है।

चिदो अचिदो विसिट्ठो, बंभतच्चं मण्णदि इदं तम्हा।
रामाणुजवेदंतं, विसिट्ठ-अद्दइदवायी खलु।।469।।

रामानुज वेदान्त ब्रह्म तत्त्व को चित् अचित् विशिष्ट मानता है इसलिए यह दर्शन विशिष्ट अद्वैतवादी है।

ण गुणो णाणं दव्वं, सुहदुक्खादी अवि सरूवो तस्स।
अप्पा सग-पयासगो, णाणं पर-पयासगो अत्थि।।470।।

रामानुज वेदान्त में 'ज्ञान' गुण नहीं द्रव्य है। सुख-दुःखादि भी उसी के स्वरूप हैं। आत्मा स्व-प्रकाशक और ज्ञान पर-प्रकाशक है।

बंभुवासणाइ सयल-कम्म-णासादो रंधदारादो।
जीवप्पा णिक्कसित्तु, बंभलोयं सुक्कमग्गेण॥471॥

पहुच्चित्तु पहुसेवं, कुव्वदि मोक्खो इमो मुणेदव्वो।
एदस्स दु रामाणुज-वेदंत-दंसणस्स जणेहि॥472॥ (जुम्मं)

ब्रह्म उपासना से सकल कर्मों का नाश हो जाने पर जीवात्मा रंध्र द्वार से बाहर निकलकर शुक्ल मार्ग से ब्रह्मलोक पहुँचकर प्रभु की सेवा करता है। यही लोगों के द्वारा इस रामानुज वेदान्तदर्शन का मोक्ष जानना चाहिए।

पमाणं तिविहं जाण, पच्चक्खाणुमाणसद्दाण तहा।
भेयादो य सरूवो, ताणं संकरवेदंतोव्व॥473॥

प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द के भेद से प्रमाण तीन प्रकार का जानना चाहिए। उनका स्वरूप शाङ्कर वेदान्त के समान है।

णिंबक्क-वेदंतम्मि, जीवप्पा परमप्पा तह पइडी।
तिण्णितच्चं दु तम्हा, भेदवायी संविदिदव्वो॥474॥

निम्बार्क वेदान्त में तत्त्व तीन हैं-जीवात्मा, परमात्मा तथा प्रकृति। इसलिए यह दर्शन भेदवादी जानना चाहिए।

रयणायर-तरंगोव्व, परमप्पेणं सह चिय सेसाणं।
संबंधो मण्णे तं, अद्दइदवायी णादव्वो॥475॥

और परमात्मा के साथ शेष दो का सागर तरङ्गवत् सम्बन्ध मानता है अतः यह अद्वैतवादी जानना चाहिए।

णिंबक्क-वेदंतो दु, दइद-अद्दइदवायी पसिद्धो य।
णिंबक्काइरियेणं, पवट्टिदो चिय दंसण-मिदं॥476॥

इस प्रकार निम्बार्क आचार्य द्वारा प्रवर्तित यह निम्बार्क वेदान्तदर्शन द्वैताद्वैतवादी प्रसिद्ध है।

जीवप्पाणेगा अणु-रूवो हवंतो वि पयासो तस्स।
देहपमाणं णिच्चं, आणंद-सरूवो णेव चिय॥477॥

णिय-बंध-मोक्खाणंच,णिब्भरोपरमप्प-ईसरम्मिवा।
एयारसाइंदिया,णाण-कम्मिंदियामणोतह॥478॥(जुम्मं)

जीवात्मायें अनेक हैं। अणु रूप होते हुए भी उसका प्रकाश देह प्रमाण है। आनन्द स्वरूप नहीं है पर नित्य हैं और अपने बन्ध व मोक्ष के लिए परमात्मा वा ईश्वर पर निर्भर हैं। इन्द्रियाँ ग्यारह हैं, पाँच कर्मेन्दिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और मन।

मद्धाइरियेणं वट्टिद - मद्धवेदंतो दइदवायी।
जम्हा मण्णेदि विविह-पदत्था वइसेसिगोव्व चिय॥479॥

मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित माध्व वेदान्त द्वैतवादी है क्योंकि वैशेषिकों के समान यह विविध पदार्थों को मानता है।

दसपदत्था दव्व-गुण-कम्म-सामण्ण-विसेस-विसिट्ठा य।
अंसी सत्ती अभाव-सारिच्छा दु संविदिदव्वा॥480॥

पदार्थ दस जानने चाहिए—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य और अभाव।

परमप्पा लच्छी तह, जीव-अव्वाकिद-आयास-पइडी।
गुणत्तय - बुद्धी महद - महंकारो मणो इंदिया।।481।।

तम्मत्ता पंचभूद - बंभंड - वण्णंधकार - अविज्जा।
वासणा तह याल-पडिबिंबा बीस-दव्वा इत्थं।।482।। (जुम्मं)

परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, बुद्धि, महत्, अहङ्कार, मन, इन्द्रिय, तन्मात्रा, पञ्चभूत, ब्रह्माण्ड, वर्ण, अन्धकार, अविद्या, वासना, काल तथा प्रतिबिम्ब इस प्रकार द्रव्य बीस हैं।

वइसेसिगाणं दु चउवीस-गुणादिरित्ता अणेगगुणा।
आलोग-सम-तितिक्खा-दम-किवा-बल-भय-लज्जादी।।483।।

वैशेषिकों के चौबीस गुणों के अतिरिक्त इनके आलोक, शम, तितिक्षा, दम, कृपा, बल, भय, लज्जा आदि अनेक गुण हैं।

कम्मो तिविहो णेयो, विहिदो णिसिद्धो तह उदासीणो।
वेदविहिदकम्मो बेविहो सकामो णिक्कामो य।।484।।

कर्म तीन प्रकार के जानने चाहिए—विहित, निषिद्ध तथा उदासीन। वेद विहित कर्म दो प्रकार का है—सकाम व निष्काम।

कम्मो दु उदासीणो, उक्खेवण-अवक्खेवण-पहुडी हु।
विसिट्ठो विसेसणजुद-विसेसस्स आयारो जाण।।485।।

उत्क्षेपण व अवक्षेपण आदि कर्म उदासीन हैं। विशेषण युक्त विशेष का आकार 'विशिष्ट' जानना चाहिए।

अंसी पुढवि-गगणाइ-पच्चक्ख-सिद्धपदत्था णिच्चं हि।
अणिमा महिमा आदी, विविहा सत्ती मुणेदव्वा॥486॥

पृथ्वी, गगन आदि प्रत्यक्ष सिद्ध पदार्थ सर्वदा ही 'अंशी' हैं। अणिमा, महिमा आदि विविध शक्तियाँ जाननी चाहिए।

भत्ति-कितणादीहिं, हवदि मोक्खो चदुविहो चिय भोगो।
कम्मक्खओ उक्कंति-लओ तह अच्चिराइ-मग्गो॥487॥

भक्ति, कीर्तन आदि से मोक्ष होता है। वह चार प्रकार का है-कर्म क्षय, उत्क्रान्ति लय, अर्चिरादि मार्ग और भोग।

सव्वकज्जाणं दोण्णि-कारणं उवादाणं णिमित्तं च।
अप्पा-मणिंदिय-विसय-सण्णिकस्सादो उप्पण्णो॥488॥

णाण-मप्पपरिणामो, जाण पामण्णं सपगासत्तादु।
पच्चक्खं अणुमाणं, सद्दपमाणं तिविहं जाण॥489॥ (जुम्मं)

सभी कार्यों के दो कारण होते हैं-उपादान और निमित्त। आत्मा, मन, इन्द्रिय व विषय-सन्निकर्ष से उत्पन्न आत्मा का परिणाम ज्ञान जानना चाहिए। स्व-प्रकाशत्व होने से वह स्वतः प्रमाण्य है। वह प्रमाण तीन प्रकार का है-प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द।

सद्दपमाणं दुविहं, अत्तवयणं दु पोरिसेयं तहा।
मद्धवेदंतमदम्मि, वेदवक्कं अपोरिसेयं॥490॥

माध्व वेदान्त मत में शब्द प्रमाण दो प्रकार का है-पौरुषेय व अपौरुषेय। आप्तवचन पौरुषेय है और वेद वाक्य अपौरुषेय।

सिवो परमट्ठ - तच्चं, सुद्धअद्दइद - वल्लहवेदंते।
छत्तीस - तच्चं अत्थ, पणवीस - तच्चं दु संखा व्व।।491।।

परमसिव-सत्ती सदा-सिव-ईसर-सुद्धविज्जा माया य।
मायाइ पणकंचुगा, एयारस-तच्चं दु इत्थं।।492।। (जुम्मं)

शुद्ध अद्वैत वल्लभवेदान्त में 'शिव' ही एक परमार्थ तत्त्व है। यहाँ छत्तीस तत्त्व कहे गए हैं-साङ्ख्य के समान पच्चीस तत्त्व एवं परमशिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्ध विद्या, माया, माया के पञ्च कञ्चुक इस प्रकार ग्यारह अन्य तत्त्व हैं।

अत्थ मदे परमसिवो, णिच्च-सुद्ध-वावग-चेयण्णं चिय।
जडे चेयणे सव्वे, सव्वत्थ परमसिवो वत्तो।।493।।

यहाँ मत में 'परमशिव' नित्य शुद्ध व्यापक चैतन्य है। जड़, चेतन सभी में सर्वत्र परमशिव व्याप्त है।

णिव्विअप्प-सिवे जदा, अहंताभावो फुरदि यालपत्ते।
तदा सदासिवो सो हि, जाणेज्ज वल्लहवेदंते।।494।।

काल प्राप्त होने पर निर्विकल्प शिव में जब अहन्ता के भाव का स्फुरण होता है, तब वही 'सदा शिव' है। इस प्रकार वल्लभवेदान्त दर्शन में जानना चाहिए।

अहमिदं भावणाए, इमाए ईसरो तह इदमहं दु।
सुद्धाविज्जा णेया, सुद्ध-अद्दइद-मदम्मि इमे।।495।।

इस शुद्ध अद्वैत मत में अहं इदं की भावना से युक्त हो जाने से 'ईश्वर' और इदं अहं की भावना से युक्त विद्या 'शुद्ध विद्या' जाननी चाहिए।

जीवो बंभ-अंसो य, संसारो अवि सदंसो-बंभस्स।
तिण्णि-अभेया तम्हा, सुद्ध-अद्दइदवायी मदं।।496।।

जीव ब्रह्म का अंश ही है। संसार भी ब्रह्म का सत् अंश है, तीनों अभेद हैं इसलिए यह मत शुद्ध अद्वैतवादी जाना जाता है।

इदमहं जागरिदम्मि, अहमिदं भावो जागरदि पच्छा।
अहं भावो हि सेसो, पुण पलीदि सिवे अद्दइदो।।497।।

'इदं अहं' भाव जागृत होने पर 'अहं इदं' भाव जागृत होता है पश्चात् मात्र अहं ही शेष रह जाता है पुनः 'अहं' के साथ शिव में लीन हो जाता है। यही परमार्थ अद्वैत है।

वेदांतदर्शन समीक्षा

लोए पसिद्धा पमुह-अवधारणा वेदंतदंसणस्स।
बंभो एगो सच्चं, णेव विदियं तच्चं कयावि।।498।।

वेदांत दर्शन की यह प्रमुख अवधारणा लोक में प्रसिद्ध है कि एक ब्रह्म ही सत्य है, अन्य कोई दूसरा तत्त्व या जीव नहीं है।

सतंतत्थित्तं दु, पत्तेय-मप्पस्स लोए पच्चक्खे।
दिस्संति जम्म-मरणं, कुव्वंतो अणंताणंता।।499।।

तब जैन कहते हैं कि लोक में प्रत्येक आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व है। संसार में अनन्तानन्त जीव प्रत्यक्ष में जन्म-मरण करते हुए देखे जाते हैं।

को वि हेदू पच्चक्ख-पमाणं खंडिदुं समत्थो ण जह।
पच्चक्खे अग्गि-धम्म-उण्हत्त-खंडण -मसंभवो॥500॥

कोई भी हेतु प्रत्यक्ष प्रमाण को खण्डित करने में समर्थ नहीं है। जैसे-अग्नि का धर्म प्रत्यक्ष में ऊष्णता है, इसका खण्डन असम्भव है।

सव्वेसुं बंभेगो, अणेगजलपत्तेसु सिसबिंबं व।
जदि वेदंती भणदे, तो जइणो खंडदे इत्थं॥501॥

तब यदि वेदान्ती कहते हैं कि सभी जीवों में एक ही ब्रह्म उस प्रकार है जिस प्रकार चंद्रमा एक ही होता है, किन्तु जल से भरे अनेक पात्रों में वह अलग-अलग दिखाई देता है तो जैन इसका खण्डन इस प्रकार करते हैं-

दिस्सदि तो दिस्स किण्णु, बंधंति कम्माणि स-स-भावेहिं।
अणंतजीवा सग-सग कम्मफलाणि भुंजंति सया॥502॥

यदि चन्द्रबिम्ब दिखता है तो दिखे; किन्तु जीव अपने भावों से कर्मों का बन्ध करते हैं और वे अनन्त जीव सदैव अपने-अपने कर्मों का फल ही भोगते हैं।

अणंतविहं अवत्थं, लहंति जीवा स-स-कम्मुदयादो।
तं सिद्धं इह विस्से, बंभेगो दु केवलं णेव॥503॥

जीव अपने-अपने कर्म के उदय से अनन्त प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त करते हैं। (जीवों की अनुभूति, परिणति सब भिन्न है) अतः यह सिद्ध होता है कि इस विश्व में केवल एक परमब्रह्म नहीं है।

सचंदबिंब-विहिण्णायार-जुदपत्तादु परिणदि-भिण्णा।
ण दोसो बंभेगादु, तं आइक्खेदि वेदंती।।504।।

तब वेदान्ती कहते हैं कि चन्द्र बिम्ब से युक्त पात्रों का आकार भिन्न होने से परिणति भिन्न होती है। अर्थात् चन्द्रमा एक ही है किन्तु भिन्न परिणति विभिन्न पात्र आकृति के समान है। अतः ब्रह्म एक होने से कोई दोष नहीं है।

विहिण्ण-जलपत्तादो, जलायारो हि भिण्णो भिण्णो तो।
णेव मिअंगबिंबस्स, तं कहं हु परिणदी एगा।।505।।

तब जैन कहते हैं कि विभिन्न जलपात्र होने से जल का आकार ही अलग-अलग होता है। किन्तु चंद्र बिम्ब का नहीं तब परिणति एक कैसे हो सकती है।

जलिद-अणंत-दीवेसु, अणलेगो वरं सव्व जोदी पिथु।
अप्पा-लक्खणेगो य, जह तह पुध-पुध हि सव्वप्पा।।506।।

जैसे जलते हुए अनन्त दीपकों में अग्नि एक दिखाई देती है, किन्तु लौ सबकी अलग-अलग है। उसी प्रकार आत्मा का लक्षण एक (चेतना) है किन्तु सभी आत्माएँ अलग-अलग हैं।

खेत्ते बहुरुक्खाणं, उप्पत्ति-विड्ढि-पुप्फाइ-पत्तीव।
भिण्ण-मप्प-परिणमणं, भिण्णा अणंताणंतप्पा।।507।।

जैसे एक खेत में बहुत वृक्ष होते हैं और उन सबकी उत्पत्ति, वृद्धि व पुष्प आदि की प्राप्ति भिन्न-भिन्न होती है,

उसी प्रकार अनन्तानन्त आत्मा भिन्न ही होती हैं और प्रत्येक जीव का परिणमन भिन्न होता है।

भिण्णा-भिण्णा दिस्सदि, याल-किरिया-कारगाइ-भेयादु।
तं अद्दइदवादो हु, भेदरूवो पच्चक्खेणं॥508॥

क्योंकि प्रत्यक्ष से काल, क्रिया-कारक आदि के भेद से भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं, अतः भेद रूप प्रत्यक्ष से अद्वैतवाद भेदरूप प्राप्त होता है।

संभवो किरिया-कारगाइ-भेदो सिविण-संवेदणं व।
णो पच्चक्ख-विरुद्धो, भासेदि जदि वेदंती तो॥509॥

यदि वेदन्ती कहते हैं कि एक तत्त्व में क्रिया-कारकादि भेद स्वप्न संवेदन के समान सम्भव है अतः अद्वैत प्रत्यक्ष से विरुद्ध नहीं है, तब जैन कहते हैं-

जागद-दसा व सिविणे, अणेग-किरिया-कारग-पडिभासो।
सिआवायीण इट्ठो, पच्चक्ख-विरुद्ध-अद्दइदो॥510॥

जागृत दशा के समान स्वप्न में भी अनेक क्रिया-कारक प्रतिभास होता है, जो स्याद्वादियों के लिए इष्ट है। अतः यह अद्वैतवाद प्रत्यक्ष से विरुद्ध है।

इंदजालादीसुं च, भंती संभवो अण्णेसुं णेव।
बाल-णर-मादंगा व, भेदो किरिया-कारगेसुं॥511॥

इन्द्रजाल आदि में भ्रान्ति सम्भव है किन्तु अन्य में नहीं। बालक, पुरुष, मातंग के समान क्रिया-कारकों में भी भेद है।

अद्दइद-बाहगो तं, जह रज्जुम्मि सप्पस्स पडिभासो।
सिप्पीए रयदस्स य, मिग-मरीचिगाए णीरस्स ॥512॥

अत: अद्वैत बाधक है। जैसे रस्सी में सर्प का, सीप में चाँदी का एवं मृग मरीचिका में जल का प्रतिभास होता है।

तदा ताण भंतीए, रज्जू सप्पो तह सिप्पी रयदं।
मिग-मरीचिगा णीरं, भिण्णो भिण्णो मुणेदव्वो॥513॥ (जुम्मं)

तब उनकी भ्रांति के लिए रस्सी-सर्प, सीप-चांदी, मृग मरीचिका व जल भिन्न भिन्न जानना चाहिए। अर्थात् इन्हें भिन्न मानना आवश्यक है।

उग्घाडिद - णेत्तेहिं, विसेस - देसादीणं सामण्णं।
अवलोयणं संभवो, अणिच्छिदाणं ण अवलावो॥514॥

खुले हुए नेत्रों से ही विशेष देश आदि का सामान्य अवलोकन सम्भव है। अनिश्चित देशादि का अवलोकन सम्भव नहीं, यह तो अपलाप का प्रसङ्ग आता है।

णेव होदि सामण्णं, विसेसरहिदं आयासपुप्फं व।
बंभवादो असिद्धो, सामण्णरहिदं विसेसं ण॥515॥

क्योंकि विशेष का अभाव होने से सामान्य भी वैसे ही नहीं होता जैसे आकाश में पुष्प। और सामान्य से रहित विशेष भी नहीं होता। अत: यह ब्रह्मवाद असिद्ध है।

कहं विस्सासजोग्गो, पच्चक्खबाहिदो अद्दइदमदो।
विवेगीहिं च पमाण-विरोहि-बहुकप्पणाए चिय॥516॥

इस मत में प्रमाण विरोधी बहुत सी कल्पनाएँ हैं। तब प्रत्यक्ष से बाधित यह अद्वैतमत विवेकीजनों के द्वारा विश्वास योग्य किस प्रकार हो सकता है?

पत्तेयं पदत्थो हु, पुध पुध सगचदुट्ठयम्मि ताणं च।
सतंत-परिणमणं तं, णेव सव्व-पदत्था एगो।।517।।

प्रत्येक पदार्थ अपने पृथक्-पृथक् स्वचतुष्टय में विद्यमान है। उन सबका स्वतन्त्र परिणमन होता है। अत: सभी पदार्थ एक रूप नहीं हैं।

अणंतजलबिंदू णो, संभवो कयावि इगबिंदुरूवो।
ताणं जलबिंदूणं, पुध पुध गंध-रस-वण्णादी।।518।।

अनन्त जलबिन्दु एक बिन्दु रूप कदापि नहीं होती। उन जलबिन्दुओं का गन्ध, रस, वर्णादि पृथक्-पृथक् होता है।

लक्खणावेक्खाए दु, विज्जंत-पोग्गला एगो लोए।
सतंत-सत्ता हि किण्णु, अणंताणंत-परमाणूण।।519।।

वैसे ही लोक में विद्यमान सभी पुद्गल लक्षण की अपेक्षा एक हैं, किन्तु अनन्तानन्त परमाणुओं की सत्ता स्वतन्त्र है।

जदि भणसि अविज्जाए, णो करिदुं समत्थो जगपदीदिं।
खरविसाणं व तदा, अविज्जा बंभो दइदो अत्थ।।520।।

यदि आप कहते हैं कि यह संसार गधे के सींग के समान अभावरूप है, किन्तु अविद्या के कारण इसकी प्रतीती करने में समर्थ नहीं है; तब अविद्या व ब्रह्म, ये यहाँ द्वैत हो जाएगा।

अविज्जासच्चादु, मिच्छापदीदीइ हेदुत्त-सिद्धी ण।
सच्चादो सिद्धीए, दइदपसंगो अणिट्ठो जं॥521॥

और अविद्या के असत्य होने से मिथ्या-प्रतीति के हेतुपने की सिद्धि नहीं होती है। अविद्या के सत्य होने से मिथ्याप्रतीति के हेतुपने की सिद्धि होती है, जिससे द्वैत का प्रसङ्ग आ जाता है, जो अनिष्ट है।

बंभेगे मण्णे कम्मदइदं भावदइदं फलदइदं।
लोयदइदं च विज्जा-अविज्जा बंधो मोक्खो णो॥522॥

एक ब्रह्म ही मानने पर ब्रह्म अद्वैतवादियों के कर्मद्वैत-पुण्य-पाप, भावद्वैत-सुभाव-कुभाव, फलद्वैत-सुख-दुःख, लोकद्वैत-इहलोक-परलोक, विद्या-अविद्या, बंध व मोक्ष की व्यवस्था नहीं होती।

दइदभावेणं विणा, असंभवो अद्दइदभावसिद्धी।
जं कारणं च कज्जं, हेदू सज्झं सया दइदं॥523॥

द्वैतभाव के बिना अद्वैतभाव की सिद्धि असम्भव है, क्योंकि कारण व कार्य हेतु व साध्य सदैव द्वैत है।

जदि भणसे बंभेगो, सव्वण्णा पडिभासा पुच्छामो।
भमो बंभादु पिथगो, अपिथगो आहो चिय॥524॥

यदि आप कहते हैं कि एक ब्रह्म ही है, अन्य सभी प्रतिभास हैं, तो हम पूछते हैं कि वह भ्रम ब्रह्म से पृथक् है अथवा अपृथक्।

जदि अपिथगो अभिण्णा, दोण्णि सण्णा कहं संभवो तरिहि।
पिथगो भणसि सगवयण-बाहिदो दु दइदसिद्धीए।।525।।

यदि आप कहते हैं कि भ्रम ब्रह्म से अपृथक् या अभिन्न है, तो दो संज्ञा कैसे सम्भव हो सकती हैं और यदि आप कहते हैं कि पृथक् है तो द्वैत की सिद्धि होने से स्ववचन बाधित हो जाता है।

अत्थित्त-विहीण-वत्थु-वण्णणं करिदुं ण समत्थो को वि।
भो पुरिसो सिविणं अवि, सच्चं हि सिविणावेक्खाए।।526।।

अस्तित्व विहीन वस्तु का वर्णन करने में कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है। अहो पुरुष! स्वप्न भी स्वप्न की अपेक्षा से सत्य ही है।

णत्थि जस्स अत्थित्तं, तं वत्थुं असंभवो सिविणम्मि वि।
विवेगेणं वियारिय, गहेज्ज तच्चं णाणी-जणा।।527।।

जिस वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं है, वह वस्तु स्वप्न में भी असम्भव है। अतः ज्ञानीजनों को विवेकपूर्वक, विचारकर तत्त्व ग्रहण करना चाहिए।

मीमांसा दर्शन

मीमंसा-दंसणस्स, पवट्टगो जइमिणी वाससिस्सो।
जइमिणी-सुत्तं मूल-गंथो मणिज्जेदि चिय अस्स॥528॥

इस मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक व्यास-शिष्य ऋषि जैमिनी तथा मूलग्रन्थ 'जैमिनी सूत्र' माना जाता है।

सिरिवीरणिव्वाणस्स, किंच समहिद-चउसयवस्स-पच्छा।
मीमंसा बेविहा दु, बंभ-कम्माणं भेयादो॥529॥

श्री वीरनिर्वाण के कुछ अधिक चार सौ वर्ष पश्चात् जैमिनी का समय है। मीमांसा दर्शन के दो भेद हैं—उत्तर या ब्रह्म मीमांसा तथा पूर्व या कर्म मीमांसा।

वेदंतणामेण वा, खादो उत्तर-बंभ-मीमंसा य।
वेदंतदंसणं तं, सुप्पसिद्धं सडदंसणम्मि॥530॥

आज उत्तर या ब्रह्म मीमांसा वेदान्त नाम से प्रसिद्ध है। वह वेदान्तदर्शन षड्दर्शन में सुप्रसिद्ध है।

पुव्व - कम्म - मीमंसा - दंसणं जइमिणीय - णामेणं पि।
विक्खादं तस्स जाण, तिण्णि-पहाण-संपदायो य॥531॥

पूर्व या कर्म मीमांसा दर्शन जैमिनीय नाम से भी विख्यात है। उसके तीन प्रधान सम्प्रदाय जानने चाहिए।

पहागर-भट्ट-मदं य, पहायर-गुरु-मदणामेण खादं।
कुमारिल-भट्टस्स भट्टं मुरारिमिस्सस्स मिस्सं॥532॥

प्रभाकरभट्ट का मत 'प्रभाकर मत' या 'गुरु मत' के नाम से विख्यात है। कुमारिलभट्ट का 'भट्ट मत' और मुरारिमिश्र का 'मिश्र मत'।

सग्गमोक्खाण सिद्धी, वेदोवदिट्ठ-अणुट्ठाण-पवत्तीइ।
पसुबलि-आदीहि अस्स, दंसणस्स मूलसिद्धंतो॥533॥

वेद में कहे गए अनुष्ठान प्रवृत्ति से, पशुबलि आदिकों के माध्यम से स्वर्ग व मोक्ष की सिद्धि होती है, यह इस दर्शन का मूल सिद्धान्त है।

तियालसंझुवासणा - जवदेवरिसिपिदुतप्पणादी।
णिच्चअणुट्ठाणं णादव्वं च मीमंसगमदम्मि॥534॥

त्रिकाल संध्या उपासना, जप, देवऋषि पितृ तर्पण आदि मीमांसक दर्शन में नित्य अनुष्ठान जानना चाहिए।

दरिस-पुण्णमासीए, गहणादीसुं तहा किरियमाणं।
णइमित्तिगणुट्ठाणं, विहिदकम्मं पि मुणेदव्वं॥535॥

दर्श, पूर्णमासी, ग्रहणादि में क्रिया करना नैमित्तिक अनुष्ठान है। ये नित्य व नैमित्तिक अनुष्ठान विहित अनुष्ठान भी जानना चाहिए।

पुत्तकम्मिट्ठादिगं, जण्णइज्जकम्माणुट्ठाणं चिय।
जोदिट्ठोमादिगं च, अमुत्तिगकम्माणुट्ठाणं॥536॥

पुत्र की कामना करना इष्ट आदि याज्ञिक काम्य अनुष्ठान हैं। तथा ज्योतिष्टोम आदिक अमुत्रिक काम्य अनुष्ठान है।

सेण-अहिचरण-जण्णं, करेज्ज आदी णिसिद्धणुट्ठाणं।
मीमंसे सिवहेदू, णो कम्मणिसिद्धणुट्ठाणं।।537।।

"श्येन अभिचरन यजेत्" इत्यादि निषिद्ध अनुष्ठान है। मीमांसक मत में काम्य व निषिद्ध अनुष्ठान मोक्ष का हेतु नहीं है।

सिट्ठि-ववत्थाइ तिण्णि-मदाणि असदकज्जारंभवादी।
वइसेसिगोव्व भट्टे, मिस्समदे ईसर-अकत्ता।।538।।

सृष्टि व्यवस्था में तीनों ही मत वैशेषिकों के समान असत्कार्यवादी व आरम्भवादी हैं। भट्ट व मिश्र मत में ईश्वर कर्ता नहीं है।

जहवि पहायर-मदं ण, मण्णदि किदत्त-सत्तं ईसरस्स।
तहवि दु ववहारत्थं, उवयारेण मण्णदि कयाइ।।539।।

यद्यपि प्रभाकर मत परमार्थतः ईश्वर की कर्तृत्व सत्ता को भी स्वीकार नहीं करते तद्यपि व्यवहारार्थ उपचार से कदाचित् मान लेता है।

पमा जहट्ठ-अणुभवो, अण्णादत्थस्स पगास-रूवो हु।
अणुभव-पमाणरूवं, भिण्णो पमेय-पमादादो।।540।।

अज्ञात अर्थ का यथार्थ अनुभव ही प्रमा है, जो प्रकाश रूप होता है। यद्यपि यह अनुभव प्रमेय व प्रमाता से भिन्न प्रमाण रूप ही होता है।

पमाणं पंचविहं च, पच्चक्ख-मणुमाण-मुवमाणं तह।
अत्थापत्ती सद्दो, अण्णा अण्णा वि मण्णंते।।541।।

प्रमाण पाँच प्रकार का है–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति व शब्द। कुछ अन्य आचार्य अन्य भेद भी मानते हैं। (जैसे कुछ अनुपलब्धि सहित छह भी मानते हैं या कुछ इनके अतिरिक्त सम्भव, ऐतिह्य, योगज, प्रातिभ आदि अन्य भी अनेकविध ज्ञानों को प्रमाण स्वीकार करते हैं।)

इह मदे सण्णिकस्सो, वइसेसिगोव्व णवरि विणा दव्वं।
गुणाण गुणेहि विणा वि, सक्को तह दव्वपच्चक्खं।।542।।

इस मत में सन्निकर्ष वैशेषिक के समान ही है। अर्थात् यहाँ भी इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष–हेतुक है। विशेषता यह है कि यहाँ बिना द्रव्य के गुणों का और गुणों के बिना भी द्रव्य का प्रत्यक्ष होना सम्भव है।

संजोगो समवायो, संजुत्तसमवायो सण्णिकस्सो।
विसेस्स–विसेसणो तह, चदुविहो चिय संविदिदव्वो।।543।।

अतः यहाँ सन्निकर्ष मात्र चार प्रकार का जानना चाहिए– संयोग, समवाय, संयुक्त समवाय और विशेष्य–विशेषण सम्बन्ध।

पच्चक्खं बेविहं हु, णिव्विअप्प–सविअप्प–भेयादो य।
णिव्विअप्प–णाणं चिय, अणुभवोव्व णायदंसणस्स।।544।।

निर्विकल्प व सविकल्प के भेद से प्रत्यक्ष दो प्रकार का है। सविकल्प के पूर्वक्षण में होने वाला निर्विकल्प ज्ञान न्यायदर्शन के 'अनुभव' तुल्य है।

पदिण्णा हेदू तहा, उदाहरणं अणुमाणस्सवयवं।
उदाहरणं उवणयो, णिगमणं तिअवयवं अहवा।।545।।

अनुमान के तीन अवयव हैं- प्रतिज्ञा, हेतु व उदाहरण अथवा उदाहरण, उपनय व निगमन।

सारिच्छपच्चक्खेण,सारिच्छणाणंअदिस्स-विसयस्स।
लक्खणं उवमाणस्स, मीमंसादंसणे इमम्मि॥546॥

सादृश्य के प्रत्यक्ष द्वारा अदृश्य विषय के सादृश्य का ज्ञान हो जाना इस मीमांसा दर्शन में उपमान का लक्षण है।

दिट्ठसुदविसयाणं च, उप्पत्ती णेव जेण विणा तस्स।
अत्थणाणं दु अत्थापत्ती दुविहो दिट्ठो सुदो॥547॥

दृष्ट व श्रुत विषय की उत्पत्ति जिस बिना न हो, उस अर्थ का ज्ञान 'अर्थापत्ति' है। वह दो प्रकार की होती है-दृष्ट व श्रुत।

जह थूल-देवदत्तो, णो दिट्ठो दिणे अदंतो सिद्धं।
रत्तीए अददि दिट्ठ-अत्थापत्ति-उदाहरणं दु॥548॥

जैसे देवदत्त मोटा है किन्तु वह दिन में तो खाता हुआ दिखता नहीं अतः यह सिद्ध है कि रात्रि में खाता है। यह दृष्ट अर्थापत्ति का उदाहरण है।

जीविदो देवदत्तो, गिहे पुच्छणे गहदे उत्तरं दु।
णेव सो अत्थ सिद्धं, बहिरो सुद-अत्थापत्ती हु॥549॥

देवदत्त जीवित तो है, परन्तु घर पर पूछने पर वह ऐसा उत्तर ग्रहण करता है कि 'वह घर पर नहीं है' तब वह बाहर है ऐसा यहाँ सिद्ध होता है, यही ज्ञान श्रुत अर्थापत्ति है।

पहायर-गुरुमदे वा, णवपदत्था चिय दव्व-गुण-कम्मा।
सामण्ण-विसेसा समवाय-सत्ति-संख-सारिच्छा।।550।।

प्रभाकर मत अथवा गुरुमत में नव पदार्थ हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, सङ्ख्या, शक्ति व सादृश्य।

समवायंत-सरूवो, वइसेसिगोव्व तह गुणेगवीसा।
दोस-विभाग-पिथगत्त-संखाहि विणा सवेगक्खा।।551।।

द्रव्य से लेकर समवाय तक का स्वरूप वैशेषिकों के समान है। तथा यहाँ 'गुण' इक्कीस हैं। द्वेष, विभाग, पृथक्त्व व सङ्ख्या के बिना यहाँ वेगाख्य गुण हैं।

कारणभूददव्वम्मि, का वि कज्जुप्पायगा हंदि तस्स।
सत्ती जाए णिच्छिद-कारणेणं णिच्छिदकज्जं।।552।।

कारणभूत द्रव्य में उसकी अपनी कोई कार्योत्पादिका शक्ति अवश्य रहती है, जिसके द्वारा निश्चित कारण से ही निश्चित कार्य होता है।

संखा संविदिदव्वा, गणणा मत्ता आहो वत्थूणं।
वत्थु-मज्झे समत्तं, तस्स पमाणं दु सारिस्सं।।553।

वस्तुओं की गणना या मात्रा सङ्ख्या जाननी चाहिए। वस्तुओं के मध्य समानता अथवा उस समान का प्रमाण सादृश्य है।

इंदियाहिगरणं चिय, सरीरं तस्सणुसारेण पणहा।
एगिंदियादी तया, जीहा घाण-णयण-सोत्ताणि।।554।।

शरीर इन्द्रियों का अधिकरण है। उसके अनुसार यह एकेन्द्रियादि पाँच प्रकार का है। वे पाँच इन्द्रियाँ इस प्रकार हैं– त्वक्, जिह्वा, घ्राण, नेत्र व श्रोत्र।

तिविह-देहो जराउज-अंडज-सेदज-भेयादु जरम्मि य।
जणिदपढमो अंडादु, अंडजं सेदजं मलादीदु।।555।।

जरायुज, अण्डज व स्वेदज के भेद से शरीर तीन प्रकार है। जर में उत्पन्न होने वाले प्रथम-जरायुज, अण्डे से उत्पन्न होने वाले अण्डज एवं मलादि से उत्पन्न होने वाले स्वेदज कहे जाते हैं।

दंसणमिदं ण मण्णदि ,वणप्फदीण उब्भिज्ज-सरीरं च।
तहेव णो जोगीणं अजोणिज-सरीरं तहा अवि।।556।।

यह दर्शन वनस्पतियों का उद्भिज्ज शरीर नहीं मानता, उसी प्रकार यह योगियों का अयोनिजशरीर भी नहीं मानता।

मण-संजोगेण हवदि, उदयो धम्माधम्माणं अप्पे।
णिच्च-णइमित्तिग-कम्म-णुट्ठाणेण कम्मचागेण।।557।।

जोगसाहणाइ पत्त-णाण-पगडे धम्माधम्मादीण।
सव्वकम्म-सक्कारक्खओ इमेव मोक्ख-सरूवो।।558।। (जुम्मं)

मन के संयोग से आत्मा में धर्म व अधर्म का उदय होता है। नित्य-नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठान से, निषिद्ध कर्मों के त्याग से तथा अष्टाङ्ग योग की साधना से प्राप्त ज्ञान प्रकट हो जाने पर धर्म-अधर्म आदि रूप समस्त कर्मों का व संस्कारों का नाश हो जाना ही इस दर्शन का मोक्ष है।

भट्टमदम्मि पदत्था, बेविहा भावाभाव-भेयादो।
भावो चदुविहो दव्व-गुण-कम्म-सामण्णा तहा दु।।559।।

भट्ट मत में भाव व अभाव के भेद से मूल पदार्थ दो प्रकार के हैं। भाव पदार्थ चार प्रकार का है-द्रव्य, गुण, कर्म तथा सामान्य।

पागभावाइ-रूवो, अभावो-चदुविहो य पुव्वुत्तोव्व।
दव्वेयारसो पुव्व-णवेण सह सद्दंधयारो।।560।।

अभाव पदार्थ भी प्रागभाव आदि भेदरूप पूर्व के समान चार प्रकार है। पूर्व वैशेषिक वाले नौ एवं शब्द व अन्धकार सहित द्रव्य ग्यारह हैं।

छाया व्व णीलगुणेण, संजुद-सत्ताधारि-दव्वरूवे।
पस्सेदि अंधयारं, पच्चक्ख-चक्खुसो गगणं व।।561।।

यह मत अन्धकार को छायावत् नील गुण से युक्त एक सत्ताधारी द्रव्य के रूप में देखता है। जिसका प्रत्यक्ष आकाशवत् चाक्षुष है।

सद्दो णिच्चो णेयो, सव्वगदसत्ताभूददव्वो तह।
णेव दु आयासगुणो, मण्णेज्जा एदम्मि मदम्मि।।562।।

'शब्द' नित्य व सर्वगत सत्ताभूत द्रव्य है, यह आकाश का गुण नहीं है। ऐसा इस मत में माना जाता है।

गुणो तेरसविहो चिय, गंध-रस-रूव-फास-परिमाणा य।
पिथगत्तो संजोगो, विभाग-परच्चापरच्चा य।।563।।

तहा पुण गुरुत्त-गुणो, दव्वत्त-णेह-गुणो मुणेदव्वो।
सद्दो दव्वो अस्सिं, आयासस्स गुणो णेव चिय॥564॥ (जुम्मं)

गुण तेरह प्रकार के जानने चाहिए-गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रव्यत्व और स्नेह गुण। इस मत में शब्द द्रव्य है, आकाश का गुण नहीं।

मणो सातंतेण गहिदुं अप्पं णाणाइ-गुणा सक्को।
मणो विभू अत्थ जेण, जुदो णिय-णिय-अप्पेहिं सह॥565॥

मन स्वतन्त्र रूप से आत्मा का व उसके ज्ञानादि गुणों का ग्रहण करने में समर्थ है। यहाँ मन विभु है जिससे वह निज-निज आत्माओं के साथ सदा युक्त रह सके।

बज्झ-वत्थु-णाणं अवि, ण केवलं इंदियेण णवरि तेण।
मणप्प-संजोगेणं, अप्पा अत्थ हु णादा जाण॥566॥

बाह्य वस्तुओं का ज्ञान भी न केवल इन्द्रिय से बल्कि उसके द्वारा मन व आत्मा के संयोग से होता है। आत्मा को यहाँ ज्ञाता जानना चाहिए।

मोक्खहिमुहदा मेत्तं, णाणेण णो मोक्खो तस्स हेदू।
कम्माणुट्ठाणं चिय, कम्मणासो ताण भोगेण॥567॥

ज्ञान से मोक्षाभिमुखता मात्र होती है, न कि मोक्ष। उसका हेतु कर्मानुष्ठान है और उन कर्मों का नाश भोग से होता है।

मुत्तवत्थाइ अप्पा, सरीरिंदियादु सुण्णं होच्चा वि।
संजुत्तो दु पुव्ववुत्त-सामण्ण-विसेस-गुणेहिं च॥568॥

मुक्तावस्था में आत्मा शरीर व इन्द्रियों से शून्य होकर भी अपने पूर्वोक्त सामान्य व विशेष गुणों से युक्त रहता है।

अक्खत्थ-सण्णिकस्सो, बेविहो संजोगो समवायो य।
चदु-ठाणेहि पओगो, मणिज्जदि मीमंसग-मदम्मि॥569॥

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष यहाँ दो प्रकार का है—संयोग व समवाय। मीमांसामत वा दर्शन में चार स्थान पर ही इनका प्रयोग माना जाता है।

अप्पेणं सह मणस्स, मणेण दव्वस्स तेण गुणेहिं च।
इंदियाण सुहदुहाइ-पच्चक्खे य दुट्ठाणीयो॥570॥

अत्थेणं अप्पेणं, सह मणस्स चिय अत्थ मुणेदव्वो।
एवंविह दु कुमारिल-भट्टस्स भट्टमदे भणिदं॥571॥ (जुम्मं)

आत्मा के साथ मन का, मन के साथ द्रव्य का, उस द्रव्य और गुणों के साथ इन्द्रियों का। सुखदुःखादि प्रत्यक्ष में यहाँ उसका प्रयोग द्विस्थानीय जानना चाहिए—मन का अर्थ के साथ और आत्मा के साथ। इस प्रकार कुमारिल भट्ट के भट्टमत में कहा गया है।

परमत्थतच्च-बंभो, धम्मी धम्माहारो पदेसो य।
चउपदत्थो एदम्मि, धम्मासयो णेयो धम्मी॥572॥

ब्रह्म ही एक 'परमार्थ तत्त्व' है। इसमें धर्मी, धर्म, आधार व प्रदेश नामक चार पदार्थ हैं। धर्म के आश्रय को धर्मी जानना चाहिए।

सामण्ण-गुणो धम्मो, धम्मिस्स जह घडत्तं णादव्वो।
अणियदासयाहारो, घडाहारो सोणंदादी।।573।।

घटत्व के समान धर्मी का सामान्य गुण धर्म जानना चाहिए। धर्मी के अनियत आश्रय को आधार कहते हैं, जैसे–घट का आधार चौकी आदि।

संपइयालम्मि जत्थ, धम्मिट्ठिदो सो खेत्तविसेसो दु।
पदेसो मुणेदव्वो, कुंभकारस्स घडो हु जहा।।574।।

वर्तमान में जहाँ धर्मी स्थित है वह क्षेत्र विशेष 'प्रदेश' जानना चाहिए। जैसे कुम्भकार का घट।

सव्वुक्किट्ठ-सोक्खं च, सग्गम्मि चिय विज्जमाणं सोक्खं।
अस्स मिस्स-मदस्स चिय, भावप्पग-गुणो दु अप्पस्स।।575।।

स्वर्ग में विद्यमान सुख इस मिश्र मत का सर्वोत्कृष्ट सुख है, जो आत्मा का एक भावात्मक गुण है।

वेदणिहिदकम्माइं, पालिदूणं च कम्मबंधणादो।
मुत्ती णेयो मोक्खो, मीमंसग-दंसणे इमम्मि।।576।।

वेद निहित कर्मों का पालन कर कर्म बन्धन से मुक्ति ही इस मीमांसक दर्शन में मोक्ष जानना चाहिए।

मीमांसक दर्शन समीक्षा

सत्ताइसामण्णेणु, मण्णंते पुढवी-आइ-पदत्था।
सत्ता सामण्णा इह, मदम्मि णिच्चा णिरवयवा।।577।।

मीमांसक मत वाले पृथ्वी आदि पदार्थ सत्तादि सामान्य से मानते हैं। यहाँ वह सत्ता सामान्य नित्य व निरवयव है।

किण्णु दु दिट्ठविरुद्धं, अणेगरूवस्स पच्चक्खपदीदी।
अणेगवत्तरूवेण, सारिसपरिणामलक्खणस्स।।578।।

सामण्णस्स दु अणिच्च-असव्वगदस्स रूवादीव तहा।
भिण्णदेसवत्तीसुं, ठाणुवंसादीव पदीदी।।579।। (जुम्मं)

किन्तु यह सत्तादि सामान्य प्रत्यक्ष विरुद्ध है; क्योंकि सदृश परिणाम लक्षण रूप सामान्य के अनित्य, असर्वगत के रूप आदि के समान अनेक व्यक्त के स्वरूप से अनेक रूप की ही प्रत्यक्ष से प्रतीति होती है। तथा भिन्न देशों में व भिन्न व्यक्तियों में (सामान्य एक प्रत्यक्ष से) स्थाणु, वंशादि के समान प्रतीति होती है।

सत्ता सामण्णा जदि, णो उप्पादो णो विणासो तादु।
णेव पेच्चादिभावा, णेव तहा कम्म-सिद्धंतो।।580।।

यदि सत्ता सामान्य का उत्पाद न हो और विनाश न हो तो उससे परलोक गमन नहीं होगा तथा कर्म सिद्धान्त नहीं होगा।

णेव पच्चहिणाणस्स, सिद्धी सव्वहा य णिच्चपक्खम्मि।
सुमरण-अपदीदी अवि, णेव संभवो मोक्खो णेव॥581॥

सामान्य सत्ता उत्पाद-व्यय रहित मानने पर, इस सर्वथा नित्य पक्ष में प्रत्यभिज्ञान की सिद्धि नहीं है। यहाँ स्मरण की अप्रतीति भी होगी और इस मत में मोक्ष संभव नहीं हो सकेगा।

उप्पादव्वयेहिं च, विणा धुवत्तं कहं संभवो जं।
जह रयणायरं किण्णु, णो तत्थ कल्लोलं कया वि॥582॥

उत्पाद और व्यय के बिना ध्रौव्यपना कैसे सम्भव होगा क्योंकि जैसे समुद्र तो हो लेकिन उसमें तरङ्गें कदापि न हों, कूटस्थ हो, यह कैसे हो सकता है। अर्थात् जैसे सागर में लहरें उठती-गिरती हैं, उसी प्रकार द्रव्य में भी उत्पाद-व्यय होता ही है।

जदि रयणायरो तरिहि, तरंगो वि अण्णहा कूडत्थादु।
सुण्णत्तपसंगादो, तादो सामण्णसत्ता णो॥583॥

यदि रत्नाकर है, तो तरङ्गें भी हैं अन्यथा सब कूटस्थ होता है, और उससे शून्य का प्रसङ्ग आता है। इसलिए सामान्य सत्ता दृष्ट इष्ट विरुद्ध है।

जदि सीसेदि गवत्तं, सव्वगवेसुं सामण्ण-सत्ता य।
तरिहि भिण्ण-वण्ण-जादि-ववहारजुद-गवा-गवा णो॥584॥

यदि बौद्ध कहते हैं कि सभी गायों में 'गौत्व' नामक सामान्य सत्ता है तो भिन्न वर्ण, जाति व व्यवहार से युक्त गायें, गायें नहीं रहेंगी।

हेदुविणासो णियमा, कज्जुप्पाद-लक्खणादु पुधत्तं।
ण जादि-अवट्ठाणादु, अणवेक्खिदा गगणपुप्फं व॥585॥

जो (उपादान कारणभूत) हेतु का नाश है वही नियम से कार्य का उत्पाद एवं लक्षण से दोनों में भिन्नता है। किन्तु जाति अवस्थान के कारण उत्पाद-व्यय भिन्न नहीं है। परस्पर की अपेक्षा से रहित उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आकाश पुष्प के समान असत् ही है।

वेदो अपोरुसेयो, मण्णेदि सय पुव्वमीमंसमदं।
दिट्ठिट्ठविरुद्धो सो, सद्दाणं अणिच्चत्तादो॥586॥

पूर्व मीमांसक मत वेदों को सदा अपौरुषेय मानते हैं। किन्तु शब्दों के अनित्य होने से यह दृष्ट-इष्ट-विरुद्ध है।

सद्दा उप्पज्जंते, केण संजोगुच्चारणादीहिं।
जदि णिच्चो तरिहि सया सव्वत्थ पगड-पसंगादो॥587॥

शब्द किसी के द्वारा संयोग, उच्चारणादि से उत्पन्न होते हैं। यदि शब्द नित्य हो तो सर्वथा सर्वत्र प्रकट होने का प्रसंग आ जाएगा।

पदत्थेगस्स विहिण्ण-यालेसु पदेसेसुं भासासुं।
भिण्ण-सद्दा पउत्ता, ताण सरूवा परिवट्टंति॥588॥

एक पदार्थ के लिए विभिन्न कालों में, प्रदेशों में व भाषाओं में भिन्न शब्द प्रयुक्त होते हैं। उन शब्दों का स्वरूप परिवर्तित होता है।

परिवट्टणसीलादो, सव्वहा णिच्चो सद्दो ण कया वि।
जदि कहसि सावेक्खाइ, इट्ठं च सव्वहा अणिट्ठं॥589॥

परिवर्तनशील होने से शब्द सर्वथा कदापि नित्य नहीं हैं। यदि किसी अपेक्षा से कहते हैं तो हम स्याद्वादियों को इष्ट है, किन्तु यदि सर्वथा नित्य कहते हैं तो अनिष्टकारक है।

दव्वादु सद्द-णिच्चो, अणिच्चो य पज्जायावेक्खाए।
णिच्चो णो पज्जाओ, तं सद्दो दु णिच्चाणिच्चो॥590॥

द्रव्य की अपेक्षा शब्द नित्य है और पर्याय की अपेक्षा शब्द अनित्य है। क्योंकि पर्याय कभी नित्य नहीं होती। अतः शब्द नित्य भी है और अनित्य भी।

गंथाण पमाणत्तं, होदि सय वत्ता-पमाणत्तेणं।
वेदो अप्पमाणिगो, अपोरिसयत्तादो णिच्चं॥591॥

दूसरी बात–ग्रंथों की प्रमाणिकता सदा वक्ता की प्रमाणिकता से होती है। अपौरुषेय अर्थात् किसी के द्वारा रचित न होने से (वक्ता की अप्रमाणिकता होने से) वेद नित्य ही अप्रमाणिक हैं।

वेदो तुज्झ ईसरो, कहं सक्को तेण हिंसुवदेसो।
ईसरे रक्खसत्तं, पयडदि जदि देसदि हिंसं दु॥592॥

आपका वेद आपका ईश्वर है, तो उस ईश्वर से हिंसा का उपदेश कैसे शक्य है? यदि वे हिंसा का उपदेश देते हैं, तो ईश्वर में भी राक्षसपना प्रकट हो जाता है।

एग-सामण्णणरो वि, दयावंतो कहं ईसरो णेव।
हिंसुवदेसगस्स खलु, असंभवो सय ईसरत्तं॥593॥

क्योंकि जब एक सामान्य मनुष्य भी दयावान् होता है तो ईश्वर दयालु कैसे नहीं होगा अर्थात् अवश्य होगा। हिंसा का उपदेश देने वाले के ईश्वरपना सदैव असंभव ही है।

केण अभासित्तादो, सद्दुप्पत्ती सय खर-विसाणं व।
वेद-अपमाणिगो सिद्धो वत्ता-अपमाणत्तादु॥594॥

किसी के द्वारा नहीं कहे जाने से शब्दों की उत्पत्ति गधे के सींग के समान है। अतः वक्ता की अप्रमाणिकता से वेद अप्रमाणिक हैं, यह सिद्ध होता है।

जिणागमो अदूसिदो, सव्वण्हु-अत्तेण भासित्तादो।
सव्वण्हू खलु सिद्धो, दोसावरणरहिदत्तादो॥595॥

सर्वज्ञ आप्त के द्वारा कहा जाने वाला होने से जिनागम दोष रहित है एवं रागद्वेष व आवरण आदि से रहित होने से सर्वज्ञ सिद्ध हैं हीं।

सहावकालदेसादु, परोक्खत्था पच्चक्खा कस्स वि हु।
अणुभेयत्तादो जह, अग्गी सव्वण्हु-संठिदी वि॥596॥

स्वभाव, काल व देश से परोक्ष (जैसे क्रमशः परमाणु, राम, सुमेरु आदि) पदार्थ किसी के तो प्रत्यक्ष होते ही हैं, क्योंकि ये अनुमान ज्ञान के विषय है। जैसे अग्नि आदि पदार्थ अनुमान ज्ञान के विषय हैं अतः किसी के प्रत्यक्ष अवश्य हैं। उसी प्रकार सर्वज्ञ की सिद्धि है।

रायदोसरहिदादो, असच्चवयणकारणं तस्स णेव।
तम्हा विरोह-रहिदो, अबाहिदो अत्तवयणं सय॥597॥

राग-द्वेष से रहित होने से उन सर्वज्ञदेव के असत्य वचन का भी कारण नहीं है। अतः आप्त के वचन सदैव अबाधित व विरोध रहित हैं।

अणुमाणं दु संभवो, सहायपमाणं णो सव्वभोमं।
बंधिदस्स कस्स वि मद-वेदगेणं पक्खवायी वि॥598॥

यदि मीमांसक अनुमान को प्रमाण मानते हैं, तो वह अनुमान सहायक प्रमाण तो हो सकता है किन्तु सार्वभौम प्रमाण नहीं।

वत्तीइ पुट्ठिं विणा, अणुमाणं भंती चिय संभवो वि।
तं चिय संतुलिद - तक्क - पच्चक्खणेगंतदिट्ठीहि॥599॥

व्याप्ति की पुष्टि के बिना अनुमान भ्रान्ति भी हो सकता है। तर्क, प्रत्यक्ष व अनेकान्त की दृष्टि से ही वह संतुलित होता है।

णइदिग - तच्चिग - ववहारिग - दट्ठीए संविदिदव्वं।
अणुमाणं हु पमाणं, जइणाण वेदपक्खे णेव॥600॥

नैतिक, तात्त्विक व व्यवहारिक दृष्टि से जैनों का अनुमान सदैव प्रमाण है, किन्तु वेदपक्ष में वह प्रमाण नहीं है।

अंसिग-समाणत्तं हि, दरिसावदे केवलं सारिच्छं।
मज्जारोव्व सीहो जह, किण्णु णो मज्जारो सीहो॥601॥

सादृश्य केवल आंशिक समानता ही दिखाता है, न कि वास्तविकता। जैसे 'शेर बिलाव के समान है' किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि बिलाव ही शेर है।

णेवअत्थापत्ती वि, सतंत-पमाणं अप्पमाणिदं हि।
मेत्तं इगदिट्ठीए, णिक्कस्सं णेव सच्चं जं।।602।।

अर्थापत्ति भी कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है, वह अप्रमाणित है। क्योंकि यहाँ मात्र एक दृष्टि से ही निष्कर्ष निकाला जाता है और मात्र एक दृष्टि से निकाला गया निष्कर्ष कभी सत्य नहीं होता।

जादु कस्स वि वत्थुस्स, हवेदि णाणं दु अणुवलद्धीए।
तं सतंत-पमाणं ण, तह णेव आवसियं कया वि।।603।।

जिससे किसी भी वस्तु की अनुपलब्धि का ज्ञान होता है, वह स्वतंत्र प्रमाण नहीं हो सकता और कभी आवश्यक भी नहीं होता।

जं घडम्मि पडं णेव, णेव तत्थ घडं णो पडं आहो।
ताण अभावेहि णादि, अभावणाणं पि पच्चक्खं।।604।।

घड़े पर कपड़ा नहीं है। या तो वहाँ घड़ा नहीं है अथवा वहाँ कपड़ा नहीं है। उनके अभाव से ही उनके अभाव का ज्ञान होता है, यह अभाव ज्ञान भी प्रत्यक्ष ही है।

णेव पडं घड़े तरिहि, पच्चक्खं तं ण पडं अणुमाणं।
अणुवलद्धी पमाणं, तम्हा अणावसियं सया हि।।605।।

घड़े पर कपड़ा नहीं है, तो यह प्रत्यक्ष है। क्योंकि कपड़ा नहीं है, यह अनुमान है। क्योंकि प्रत्यक्ष व अनुमान से ही सिद्धि हो जाती है अतः अनुपलब्धि प्रमाण सदा अनावश्यक ही है।

णरमेह-अस्समेहा स-पसुबली रायसूयाइ-जण्णा।
माणवत्त-विरुद्धा य, अइ-अघ-हेदू हिंसत्तादु।।606।।

पशुबलि से युक्त नरमेध, अश्वमेध, राजसूयादि यज्ञ मानवता के विरुद्ध हैं। उनमें हिंसापना होने से वे अत्यन्त पाप के हेतु हैं।

जीवहिंसाइ धम्मो, लोयविरुद्धो दिट्ठिट्ठविरुद्धो।
आगमविरुद्धो सया, सगप्पाणुभूदि - विरुद्धो वि।।607।।

जीवों की हिंसा से धर्म होता है; यह बात सदा लोक-विरुद्ध है, प्रमाण व अनुमान से विरुद्ध है, आगम से विरुद्ध है और निजात्मानुभूति से भी विरुद्ध है।

ईसरो रत्त-कंखी, जदि तो कहं ईसरो ण णरो सो।
जदि इमा परंपरा हु, तरिहि तस्स खंडणं धम्मो।।608।।

यदि ईश्वर रक्त चाहता है, तो वह ईश्वर कैसे है? वह तो मनुष्य भी नहीं है। यदि मीमांसक कहते हैं कि यह बलि परम्परा है, तो उसका खण्डना करना ही धर्म है।

जदि णंदेदि बलीए, णिद्दय-पसुवहादो ईसरो तो।
किं विण्णवदि ईसरं, णिय-आरोग्गस्स संतीए।।609।।

यदि ईश्वर बली से, निर्दय पशुवध से आनन्दित होता है तो फिर अपने स्वास्थ्य लाभ और शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना क्यों करते हो? क्योंकि ईश्वर तो निर्दय है।

जं णो देदुं सक्को, तं णेव गहिदुं अहियारी तुमं।
कस्स वि पसुवहो तस्स, मूलहियार-उल्लंघणं दु।।610।।

आप जो देने में समर्थ नहीं है, आप उसको ग्रहण करने के अधिकारी भी नहीं हैं। किसी भी पशु का वध उसके मूल-अधिकारों का उल्लङ्घन या हनन है।

कस्स वि पीडा दुक्खं, वहो णेव धम्मो कत्थ वि कया वि।
पसुबलीइ दोसो णो, जदि तरिहि णेव णरवहम्मि वि।।611।।

किसी को भी पीडा, दुःख, वध कभी भी, कहीं भी धर्म नहीं है। यदि पशुबलि में दोष नहीं है तो फिर मनुष्य के वध में भी दोष नहीं मानना चाहिए।

धम्मो सिक्खावदि सय, अहिंसं पेम्मं मेत्तिं णेहं च।
संवेदणं हु जणेदि, णो कया वि पसुवहं घादं।।612।।

धर्म सदा अहिंसा, प्रेम, मैत्री व स्नेह सिखाता है, संवेदना उत्पन्न करता है। वह कभी भी पशुवध व घात नहीं करता।

पसुबली णेव पूया, कूरत्तस्स परम-चरमसिहा सा।
माणुसत्तस्स खओ य, अण्णायो अच्चायारो हि।।613।।

पशुबलि कभी पूजा नहीं है। वह तो क्रूरता की परम-चरम शिखा है। वह मानवता का क्षय, अन्याय व अत्याचार ही है।

अप्पसुद्धी धम्मस्स, उद्देसो सा ण संभवो वहेण।
णेव अदयाइ कया वि, णेव हिंसाइ ण कसायेण॥614॥

धर्म का उद्देश्य आत्मशुद्धि है। वह वध से सम्भव नहीं है। वह न अदया, न हिंसा और न कषाय से ही सम्भव है।

अहिंसा परमधम्मो, विस्ससंरक्खगा खलु जगजणणी।
संतीए बीयं सय, सुहंकरा दु पाणवाऊ व्व॥615॥

अहिंसा ही परमधर्म है। वह अहिंसा विश्व का संरक्षण करने वाली, जगजननी है। वह सदा शान्ति का बीज है और प्राणवायु के समान सुखदायिनी है।

अवियारी व पवित्ती, जत्थ मंसाइ-अभक्ख-भक्खणे वि।
हिंसाइ कयायारे, कहं संभवो धम्मो तत्थ॥616॥

जहाँ अविचारि-जनों के समान प्रवृत्ति हो, माँसादि अभक्ष्य भक्षण में, हिंसा में व कदाचार में प्रवृत्ति हो, तो वहाँ धर्म सम्भव कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

भो जिणो सव्वदंसी, अहिंसा-पहाणधम्मो तुज्झं हि।
करिदु-मप्पहिदं खमो, अणेगंतमदेणं तेणं॥617॥

हे सर्वदर्शी जिनेन्द्र! आपका धर्म ही अहिंसा प्रधान है। उस अनेकान्त मत से ही जीव आत्महित करने में समर्थ होते हैं।

बौद्ध दर्शन

सिद्धत्थगोदमेणं, बुद्धपवट्टिद-माहो बोद्धमदं।
वीरसमकालीणं दु, मणिज्जेदि इदं दंसणं च॥618॥

सिद्धार्थ गौतम या बुद्ध के द्वारा प्रवर्तित यह बौद्धमत है। यह बौद्धदर्शन महावीरस्वामी के समकालीन माना जाता है।

वीरणिव्वाणगदम्मि, किंचिवस्सपच्छा होज्ज पहावी।
णवसाहासु विहत्तं, दंसणं अग्गे बेदहेसु॥619॥

भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के कुछ वर्ष बीत जाने पर बौद्धदर्शन का प्रभाव हुआ। वह नौ शाखाओं में विभक्त हुआ और आगे बारह शाखाओं में विभक्त हो गया।

वइभासिग-सउतंदिग-योगायार-मज्झमिगा य अज्जं।
पढमा दु हीणयाणी, सेसा दु महायाणी जाण॥620॥

आज चार सम्प्रदाय शेष हैं—वैभाषिक सौत्रान्त्रिक, योगाचार व माध्यमिक। प्रारम्भ के दो हीनयानी और शेष महायानी जानने चाहिए।

चदु अज्ज-सच्चं अत्थ, दुहं दुहसमुदयो दुक्खणिरोहो।
दुक्खणिरोहगामिणी-पडिपदा णादव्वं बोद्धे॥621॥

यहाँ बौद्ध दर्शन में चार आर्य सत्य जानने चाहिए—दु:ख, दु:ख-समुदय, दु:ख-निरोध और दु:खनिरोध गामिनी प्रतिपदा।

संसारो दुक्खमओ, मूल-मविज्जा दुहपरम्पराए।
दुक्खसमुदओ ताए, अविज्जाइ परंपरा जाण॥622॥

'संसार दुःखमय है' यह प्रथम सत्य है। दुःख परम्परा का मूल अविद्या है और उस अविद्या की परम्परा दुःख-समुदय है। यह दूसरा सत्य है।

अविज्जा सक्कार-विण्णाण-णाम-रूव-सडायदणाइं।
फास-वेयणा तिण्हा, उवादाण-भव-जादी जरा।।623।।

मरणं तेसु पुव्व-पुव्व-कारणं उत्तरुत्तर-कज्जं च।
वेरग्गेण णिरोहे, दुह-णिरोहो वि होदि तिदियं।।624।। (जुम्मं)

अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप, षडायतन (मन सहित पाँच इन्द्रियाँ), स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान अर्थात् विषयों का ग्रहण, भव अर्थात् संसार भ्रमण, जाति (जन्म), जरा, मरण इनमें पूर्व-पूर्ववर्ती कारण हैं और उत्तर-उत्तरवर्ती उसका कार्य। वैराग्य द्वारा इनका निरोध करने पर दुःख का भी निरोध हो जाता है, यही तृतीय सत्य है।

इमम्मि णिरोहम्मि जो जो उवाओ अवेक्खणीयो तस्स।
णामं पडिपद-सच्चं, चदुत्थं च बोद्धदंसणम्मि।।625।।

इस निरोध में जो-जो उपाय अपेक्षणीय है, उसका नाम ही बौद्धदर्शन में प्रतिपद नामक (दुःख-निरोध का मार्ग) चतुर्थ सत्य है।

अट्ठ-उवाओ अस्स दु, सम्मादिट्ठी सम्मासंकप्पा।
सम्मावाचा सम्मा-कम्मंता सम्माजीवा य।।626।।

सम्मवायामो सम्म-सत्ती सम्मसमाही एदेसु वि।
पुव्व-पुव्व-कारणं च, उत्तर-उत्तर-कज्जं ताण।।627।। (जुम्मं)

इसके आठ उपाय हैं-(1) 'सम्मादिट्ठी' अर्थात् इन आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान, (2) 'सम्मा संकप्प' अर्थात् रागादि के त्याग का दृढ़ निश्चय (3) 'सम्मा वाचा' अर्थात् सत्य वचन (4) 'सम्मा कम्मंत' अर्थात् अकुशल (पाप) कर्मों का त्याग कुशल (पुण्य) कर्मों का सम्पादन। (5) 'सम्मा आजीव' अर्थात् न्यायपूर्वक आजीविका करना। (6) 'सम्मा वायाम' अर्थात् असद्भावनाओं को रोककर निरन्तर सद्भावनाओं को जागृत करने का प्रयत्न करते रहना (7) 'सम्मा सत्ती' अर्थात् चित्त शुद्धि (8) 'सम्मा समाही' अर्थात् चित्त की एकाग्रता। इन आठों में भी पूर्व-पूर्ववर्ती कारण हैं और उत्तर-उत्तरवर्ती कार्य।

बेलक्खव-पहाणं बोद्धाण सोवयारो परोवयारो।
पढमेणं अरिहपदं, विदियेण लहदि बोहिसत्तं।।628।।

बौद्ध साधकों के दो लक्ष्य प्रधान हैं—स्वोपकार व परोपकार। प्रथम से अर्हत् पद की प्राप्ति होती है और द्वितीय से बोधिसत्त्व की प्राप्ति होती है।

पढम-साहणा मेत्तं, सगकल्लाणत्थं उविक्खिय परं।
विदियो दुहादु मुत्तं, कुणिदुं पवट्टिदो दयाए।।629।।

प्रथम की साधना पर की उपेक्षा कर मात्र स्वकल्याण के लिए होती है। जबकि द्वितीय दयापूर्वक दूसरों को दुःख से मुक्त करने के लिए प्रवर्तित होती है।

अरिहपदो दु णिव्वाण-पत्ती अट्ठंगमग्गसाहणाइ।
बोहिसत्तस्स पत्ती, जम्माण साहणाए फलं।।630।।

अष्टांग मार्ग की साधना के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति कर लेना ही 'अर्हत् पद' है जबकि 'बोधि सत्त्व' की प्राप्ति जन्मों की साधना का फल है।

अरिहपदस्स साहगो, हीणयाणसंपदायो जाणेज्ज।
महायाणी बोद्धा य, साहगो चिय बोहिसत्तस्स।।631।।

हीनयान सम्प्रदाय अर्हत्पद के साधक और महायानी बौद्ध बोधिसत्त्व के साधक जानने चाहिए।

सोदापण्णा सक्किद-गामी अणागामी अरिहो चदू।
मही सावगणामेण, खाद-हीणयाण-साहगाण।।632।।

श्रावक नाम से विख्यात हीनयान साधकों की चार भूमियाँ वा भूमिकाएँ हैं—स्रोतापन्न, सकृद्गामी, अनागामी व अर्हत्।

अणेगजम्मेसु बोहि-लाहपत्त-साहग-सोदापण्णो।
अणंतर-भवम्मि बोहि-पत्त-साहग-सक्किदगामी।।633।।

अनेक जन्मों में बोधि का लाभ प्राप्त करने वाला साधक 'स्रोतापन्न' है। एक भव के अनन्तर बोधि को प्राप्त करने वाला साधक सकृद्गामी है।

वट्टमाणभवे बोहि-पत्त-साहगो अणागामी तहा।
अरिहो संविदिदव्वो, पच्चक्खे बोहिसंपत्तो।।634।।

वर्तमान भव में ही बोधि को प्राप्त करने वाला साधक अनागामी तथा प्रत्यक्ष में बोधि प्राप्त 'अर्हत्' जानना चाहिए।

मुदिदा य विमला पहागरी अच्चिस्मदी स सुदुज्जया दु।
अहिमुत्ती दुरंगमा, अयला य साहमदी भूमी॥635॥

धम्ममेह-भूमी चिय, इत्थं महायाणीण दसभूमी।
परोवयार-भावणा-उदओ मुदिदा पढमभूमी॥636॥ (जुम्मं)

मुदिता, विमला, प्रभाकरी, अर्चिष्मति, सुदुर्जया, अभिमुक्ति, दुरंगमा, अचला, साधमति और धर्ममेघ इस प्रकार महायानी साधकों की दस भूमियाँ हैं। परोपकार की भावना का उदय प्रथम मुदिता भूमि है।

सीलस्स दु अब्भासो, विमला धीरिमस्स पहागरी तह।
वीरियस्स चदुत्था दु, झाणस्स सुदुज्जया णेया॥637॥

शील का अभ्यास विमला, धीरता का अभ्यास प्रभाकरी, वीर्य का अभ्यास चतुर्थ अर्चिष्मति, ध्यान का अभ्यास सुदुर्जया जाननी चाहिए।

पण्णब्भासो छट्ठी, सव्वण्हुत्त-पत्ती दुरंगमा य।
जगादु इदर-बोहणं, णियं अयला संविदिदव्वा॥638॥

प्रज्ञा का अभ्यास षष्ठ अभिमुक्ति, सर्वज्ञता की प्राप्ति दुरङ्गमा, स्वयं को संसार से इतर समझना अचला भूमि जाननी चाहिए।

लोय-कल्लाणत्थं च, उवाय-चिंतणं साहमदि-भूमी।
धम्ममेहा दु समाहि-णिट्ठ बुद्धत्त-संपत्ती य॥639॥

लोक कल्याणार्थ उपाय चिन्तन साधमति और समाधि निष्ठ बुद्धत्व की प्राप्ति धर्ममेघ भूमि है।

सिट्ठिपकिरियाइ इदं, दंसणं च सहाववादी णेयं।
सहावेण गदिमंता, णेव को वि कता इमाए।।640।।

सृष्टि प्रक्रिया में यह दर्शन स्वभाववादी जानना चाहिए। यह सृष्टि स्वभाव से गतिमान् है, कोई भी इसका कर्ता नहीं है।

मदं णिरीसरवायी, मीमंसग-संखादीव चिय किण्णु।
विस्सासादो णिव्वाणादीसुं च णत्थिगं णेव।।641।।

यह मत मीमांसक व साङ्ख्य आदि के समान निरीश्वरवादी है। किन्तु निर्वाणादि पर विश्वास करने से यह नास्तिक नहीं है।

अविसंवादी अपुव्व-गाही सण्णाणं पमाणं जाण।
तं दुविहं णादव्वं, पच्चक्ख-अणुमाण-भेयादु।।642।।

अविसम्वादी व अपूर्वग्राही सम्यग्ज्ञान 'प्रमाण' जानना चाहिए। वह प्रत्यक्ष व अनुमान के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए।

सव्वकप्पणारहिदं, अब्भंतणाणं जाण पच्चक्खं।
इंदिय-मण-संवेदण-योगजाण भेयादु चदुहा।।643।।

समस्त कल्पनाओं से रहित अभ्रान्त ज्ञान 'प्रत्यक्ष' जानना चाहिए। वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष, मन प्रत्यक्ष, सम्वेदन प्रत्यक्ष और योगज प्रत्यक्ष के भेद से चार प्रकार का जानना चाहिए।

णो इंदिय-पच्चक्खं, मण्णदि योगायारं मज्झमिगं।
विण्णाणवायी तहा, सुण्णवायी कमेण जम्हा।।644।।

योगाचार व माध्यमिक मत इन्द्रिय प्रत्यक्ष को नहीं मानता क्योंकि ये क्रमशः विज्ञानवादी और शून्यवादी हैं।

अणुमाणं दुविहं तह, भेयादो चिय सत्थ-परत्थाणं।
अण्णसाहणेहि विणा, जं णाणं हंदि तं सत्थं॥645॥

स्वार्थ व परार्थ के भेद से 'अनुमान' दो प्रकार का है। अन्य साधनों के बिना जो ज्ञान होता है वही 'स्वार्थानुमान' है।

सम्मं हेदुं दायिय, अप्पच्चक्खवत्थुस्स णाणं जं।
तं परत्थाणुमाणं, बोद्धदंसणे मुणेदव्वं॥646॥

सम्यक् हेतु देकर जो अप्रत्यक्ष वस्तु का ज्ञान होता है, वह बौद्धदर्शन में परार्थानुमान जानना चाहिए।

हेदू तिविहो णेयो, अणुवलद्धि-सहाव-कज्ज-भेयादु।
हेच्चाभासो तिविहो, असिद्धविरुद्धणइगंतिगा॥647॥

हेतु अनुपलब्धि, स्वभाव व कार्य के भेद से हेतु तीन प्रकार का जानना चाहिए। हेत्वाभास तीन प्रकार का है- असिद्ध, विरुद्ध व अनैकान्तिक।

विरुद्ध-विरुद्धकज्जुवलद्धि-कारण-सहावणुवलद्धीण।
भेयादो दु चदुविहो, अणुवलद्धिहेदू बोद्धम्मि॥648॥

विरुद्ध उपलब्धि, विरुद्धकार्योपलब्धि, कारण अनुपलब्धि, स्वभाव अनुपलब्धि के भेद से अनुपलब्धि हेतु बौद्धदर्शन में चार प्रकार का है।

अत्थ णो सीदफासो, अग्गीदो विरुद्धुवलद्धी तहा।
विरुद्धकज्जुवलद्धी, णो सीदफासो धूमादो॥649॥

'यहाँ अग्नि होने से शीत स्पर्श नहीं है' वह विरुद्ध उपलब्धि हेतुक अनुमान है। 'धूम होने से शीत स्पर्श नहीं है' वह विरुद्ध कार्योपलब्धि हेतुक अनुमान है।

कारणाणुवलद्धी य, अत्थ ण धूमो अणलाभावादो।
अणुवलद्धो वि लक्खणपत्ते सहावाणुवलद्धी॥650॥

यहाँ 'अग्नि का अभाव होने से धूम नहीं है' यह कारण अनुपलब्धि हेतुक अनुमान है एवं ''लक्षण प्राप्त होने पर भी उपलब्ध नहीं हो रहा'', यह स्वभाव अनुपलब्धि हेतुक अनुमान है।

सहावहेदू णेयो, रुक्खो इमो चिय सिंसपादो जह।
कज्जहेदू धूमादु, अत्थ अणलस्स दु सब्भावो॥651॥

'यह वृक्ष है' क्योंकि शिंशपा है। कारण कि वृक्षत्व के अभाव में शिंशपत्व उपलब्ध नहीं होता, यह स्वभाव हेतुक अनुमान है। 'यहाँ अग्नि का सद्भाव है, क्योंकि यहाँ धूम है। यह 'कार्य हेतुक' अनुमान का उदाहरण है।

वइहासिग-मदं बज्झ-वत्थूण सत्ता-सलक्खणरूवे।
ताण मुणदि पच्चक्खं, सव्वत्थित्तवायो तम्हा॥652॥

वैभाषिक मत बाह्य वस्तुओं की सत्ता व स्वलक्षणों के रूप में उनका प्रत्यक्ष मानता है अतः सर्वास्तित्ववाद है।

वइहासिगे बेविहो, जगो विसयगदबज्झजगो पढमो।
विसयीगद-अब्भंतर-जगो विदियो संविदिदव्वो॥653॥

वैभाषिक सम्प्रदाय में जगत् दो प्रकार का है-प्रथम विषयगत बाह्य जगत् एवं द्वितीय विषयीगत अभ्यन्तर जगत् जानना चाहिए।

पढमस्स धम्मो मूल-उवादाणं विदियस्स तह खंधो।
धम्मतच्चं दुविहं, असक्किद-सक्किद-धम्मो तह॥654॥

प्रथम विषयगत बाह्य जगत् का मूल उपादान 'धर्म' तथा द्वितीय विषयीगत अभ्यन्तर जगत् के उपादान 'स्कन्ध' है। धर्म तत्त्व दो प्रकार का है-असंस्कृत व संस्कृत धर्म।

असक्किदो अहेदुगो, ठायी गदिविहीणो णिरस्सवो य।
असक्किदो अवि दुविहो, आयासो तहा णिव्वाणं॥655॥

'असंस्कृत धर्म' अहेतुक, स्थायी, गतिहीन व निरास्रव होता है। असंस्कृत धर्म दो प्रकार का है-आकाश तथा निर्वाण।

सक्किदधम्म-सासवो, सहेदुगो अट्ठायी गदिजुत्तो।
चदुहा रूव-चित्त-चइदसिग-चित्तविप्पमुत्ता तह॥656॥

संस्कृत धर्म सास्रव, सहेतुक, अस्थायी और गतियुक्त है। वह चार प्रकार का है-रूप, चित्त, चैतसिक तथा चित्त विप्रमुक्त।

पणिंदिया पणविसया, विण्णत्ती य एयारससमूहो।
रूवो संविदिदव्वो, वइहासिग-संपदायम्मि दु॥657॥

पाँच इन्द्रियाँ, पाँच विषय व विज्ञप्ति, इन ग्यारह का समूह वैभाषिक सम्प्रदाय में 'रूप' जानना चाहिए।

मणवयणतणुगद-सयल-पगड-अप्पगड-कम्म-विण्णत्ती य।
चित्तं दुविहं णेयं, णिव्विअप्पं तह सविअप्पं॥658॥

मन, वचन व कायगत सकल प्रकट व अप्रकट कर्म 'विज्ञप्ति' है। चित्त दो प्रकार का जानना चाहिए—निर्विकल्प तथा सविकल्प।

एदस्स विविह-माणस-वावारो चइसिग-धम्मो णेयो।
चित्त-चइदसिगदीदो, सामण्णभाव-विप्पमुत्तो॥659॥

इसके विविध मानसिक व्यापार 'चैतसिक धर्म' जानना चाहिए। चित्त व चैतसिक इन दोनों से अतीत कोई सामान्य भाव ही चित्त विप्रमुक्त धर्म है।

सव्वपदत्थाणं अवगाहणं हंदि आयास-सरूवो।
दीव-णासोव्व मदम्मि, वइहासिगम्मि दु णिव्वाणं॥660॥

सर्व पदार्थों का अवगाहन आकाश का स्वरूप है। वैभाषिक मत में निर्वाण दीप नाश के समान है।

विसयीगद-अब्भंतर-जगो तिविहो खंधायदण-धादू।
तस्स मूलुवादाणं, खंधो पणविहो णादव्वो॥661॥
रूव - वेयणा - सक्कार - सण्णा - विण्णाणाण भेयादो।
पुढवी-जल-तेउ-वाउ-धम्माधम्मादी रूवो य॥662॥ (जुम्मं)

विषयीगत अभ्यन्तर जगत् तीन प्रकार का है—स्कन्ध, आयतन व धातु। उसका मूल उपादान 'स्कन्ध' रूप, वेदना, संस्कार, सञ्ज्ञा व विज्ञान के भेद से पाँच प्रकार का जानना चाहिए। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, धर्माधर्मादि रूप हैं।

बज्झवत्थूण चित्ते, सुह-दुह-रूव-पहावो वेयणा हु।
रायदोसवित्तीए, हेदू सक्कारो चित्तस्स॥663॥

बाह्य वस्तुओं का चित्त पर सुख-दु:ख रूप जो प्रभाव पड़ता है, वह वेदना है। चित्त की राग-द्वेष वृत्तियों के जो हेतु हैं, वे ही संस्कार हैं।

इंदियत्थसण्णिकस्स-अणंतरं च अत्थायार-णाणं।
अहपच्चय-संजुत्तं, सण्णा सया संविदिदव्वा॥664॥

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष के अनन्तर जो अहं प्रत्यय संयुक्त अर्थाकार ज्ञान होता है उसे सदा 'सञ्ज्ञा' जानना चाहिए।

मणेण सह पणिंदिया, ताण छव्विसया बारसायदणं।
घडणापवाहो जणदि, जाणेगीगरणेण धादू॥665॥

मन सहित पञ्च इन्द्रियाँ और छह उनके विषय ये बारह 'आयतन' हैं। जिन शक्तियों के एकीकरण से घटनाओं का प्रवाह उत्पन्न होता है, वह धातु है।

दिट्ठिगोयरो विस्सो, जह सो णेव परमट्ठिग-सच्चं दु।
मेत्तं ववहारिगो दुविहो तत्थ-मिच्छा-भेयादु॥666॥

यह जगत् जैसा दृष्टिगोचर है वह वास्तव में पारमार्थिक सत्य नहीं है, मात्र व्यवहारिक ही है। वह तथ्य व मिथ्या के भेद से दो प्रकार का है।

इंदियेहि गहणीया, घडाइ-पदत्था तत्थववहारो।
मिगमरीइया आदी, मिच्छा-ववहारो जाणेज्ज॥667॥

इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य घटादि पदार्थ तथ्य व्यवहार है और मृगमरीचिका आदि मिथ्या व्यवहार जानना चाहिए।

सउतंदिगणुसारेण, णेव पदत्थाण होदि पच्चक्खं।
अणुमाणं हि केवलं, तं बज्झाणुमेयवायो दु॥668॥

सौत्रान्तिक के अनुसार पदार्थों का प्रत्यक्ष नहीं होता केवल अनुमान ही होता है। अतः बाह्यानुमेयवाद है।

खणिग- वत्थु-पत्तेयं, खणे खणे उप्पज्जदे णस्सेदि।
वत्थुणास-अहेदुगो, सहावेणुप्पण्णक्खयादु॥669॥

प्रत्येक वस्तु क्षणिक होती है। वह क्षण-क्षण में उत्पन्न होती है व नष्ट होती है। स्वभाव से उत्पन्न व क्षय होने से वस्तु का नाश अहेतुक है।

योगायार-दंसणे, विण्णाणं हि एगमेत्तं तच्चं।
विण्णाणदिरित्त-अण्ण-वत्थुस्स अत्थित्तं जगे ण॥670॥

योगाचार दर्शन में विज्ञान ही एकमात्र तत्त्व है। विज्ञान के अतिरिक्त अन्य वस्तु का अस्तित्व संसार में नहीं है, अतः विज्ञानवाद है।

सामण्ण-णिव्विअप्पं, णाणं वत्थुस्स अत्थ विण्णाणं।
उत्तरुत्तरो जणदे, पुव्व-पुव्व-खण-विण्णाणेण॥671॥

वस्तु का सामान्य निर्विकल्प ज्ञान ही यहाँ विज्ञान है। वस्तु का पूर्व-पूर्व क्षण के विज्ञान से उत्तर-उत्तरवर्ती उत्पन्न हुआ करता है।

अत्थाभासे अंते, एगमेत्तं विण्णाणं हि सेसं।
विण्णाणं चिय दुविहं, आलय-पवट्टीण भेयादु॥672॥

पदार्थों के आभास का अन्त होने पर एक मात्र विज्ञान ही शेष रहता है। आलय व प्रवृत्ति के भेद से विज्ञान दो प्रकार का है।

आलयविण्णाणं चिय, आहारभूदं सव्ववासणाण।
तस्स आलयविण्णाण-विसुद्धी मोक्खो णादव्वो॥673॥

सर्ववासनाओं का आधारभूत आलय विज्ञान है। उस आलय विज्ञान की विशुद्धि मोक्ष जानना चाहिए।

वासणाहिं सह पंच-इंदिया मणो तहा किलिट्ठमणो।
सत्तविण्णाणं पि सय, तम्मि आलय-विण्णाणम्मि दु॥674॥

उस आलय विज्ञान में वासनाओं के साथ पञ्च इन्द्रिय, मन व क्लिष्ट मन ये सात विज्ञान भी सदा रहते हैं।

सत्तविण्णाणं हंदि, पवट्टिविण्णाणं ववहारेणं।
आलय-विण्णाणे चिय, णिब्भरं दु सव्व-विण्णाणं॥675॥

व्यवहारगत ये सात विज्ञान ही 'प्रवृत्ति विज्ञान' कहलाते हैं। सर्व विज्ञान आलयविज्ञान पर ही निर्भर हैं।

विण्णाणं पि असच्चं, मज्झमिगे सव्वदा सव्वसुण्णं।
सुण्णं हि सदो मेत्तं, मुत्ती तहा सुण्णत्तेणं॥676॥

माध्यमिक सम्प्रदाय में विज्ञान भी असत्य है। वहाँ सर्वदा सर्व शून्य है, शून्य ही एकमात्र सत् है एवं शून्यता से ही मुक्ति है।

सुण्णं खलु णिव्वाणं, णिव्वाणं सुण्णं ण को वि भेदो।
अणिव्वयणीयं च णिस्सरूवं णिरसहाव-सुण्णं॥677॥

शून्य ही निर्वाण है और निर्वाण ही शून्य है। दोनों में कोई भी भेद नहीं है। वह शून्य निरस्वभाव, निःस्वरूप व अनिर्वचनीय है।

बौद्धदर्शन समीक्षा

अस्स दंसणस्स पमुह-आहारो खणिगवायो किण्णु जदि।
कस्स अवेक्खाइ कहसि, तरिहि संगच्छामो वयं पि॥678॥

इस दर्शन का प्रमुख आधार क्षणिकवाद है। किन्तु यदि आप यह किसी अपेक्षा से कहते हैं, तो यह तो हम भी स्वीकार करते हैं।

जदि खणिगं मेत्तं तो, पच्चक्ख-विरुद्ध-मिदं सच्चं णो।
पज्जायावेक्खाए, खणिमं दव्वस्स सय णिच्चं॥679॥

और यदि मात्र क्षणिक ही मानते हैं, तो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है, यह सत्य नहीं है। क्योंकि पर्याय की अपेक्षा से वस्तु अनित्य है और द्रव्य की अपेक्षा से सदा नित्य है।

सव्वं वत्थुं खणिगं, मण्णेज्ज तो सासयं किं लोए।
खणक्खयेणं दु णेव, अत्थकिरियासिद्धी कया वि॥680॥

यदि आप सभी वस्तुओं को क्षणिक मानते हैं, तो लोक में शाश्वत क्या है? यदि क्षण-क्षण में वस्तु का क्षय मानेंगे तो अर्थक्रिया की सिद्धि कदापि नहीं होगी।

दुद्धपूरिद-पत्तस्स, खयादो कहं तम्मि तं ठाएज्ज।
असिद्धो सिद्धंतो दु, णिरहेदुगत्त-आपत्तीइ॥681॥

दूध से पूर्ण पात्र का क्षय होने पर, वह उसमें किस प्रकार ठहरेगा? अतः निर्हेतुकपने की आपत्ति होने से बौद्धों का यह सिद्धांत असिद्ध है।

घडविणासोव्व दु दीवसमत्तीव जीव-विणासो मोक्खो।
इट्ठागमविरुद्धो हु, अप्पदव्व-सासयो जम्हा॥682॥

बौद्ध घट-विनाशवत् वा दीप-समाप्ति या निर्वाण के समान मोक्ष मानते हैं अर्थात् आत्मा के नाश को मोक्ष मानते हैं, किन्तु यह अनुमान विरुद्ध व आगम विरुद्ध है; क्योंकि आत्मद्रव्य सदैव शाश्वत है।

बोद्धमदाणुवत्तगो, देज्ज गोसमूहं गोसंधियस्स।
मासपच्छा आवीअ, ओग्गहिदुं सगवेयणं तो॥683॥

सीसिदं गो-सामिणा, को तुमं कस्स वेयणं कंखेसि।
तुमं हं वि खलु खणिगो, सव्व विस्सखणिगत्तादो य॥684॥ (जुम्मं)

एक बार एक बौद्ध-मतानुयायी ने एक गोपालक को अपनी गायों के समूह को चराने के दिया। जब वह एक मास पश्चात् अपना पारिश्रमिक लेने आया तो उस गायों के स्वामी ने कहा–तुम कौन हो और किसका वेतन चाहते हो? पूरा विश्व क्षणिक रूप होने से तुम भी क्षणिक हो, और मैं भी क्षणिक हूँ। अर्थात् जिसने गाय दी थीं, वो भी कोई और था और जिसने ली थीं वो भी कोई और था, तब वेतन कैसा?

गोसंधियग-वरागो, गड्डुअ जइणसावगगिहं तिप्पीअ।
सदुहहेदुं कहंतो, सिआवाय-मदणुवत्तगो य।।685।।

कहीअ अज्जं पि गच्छ, णेव पडिदाएज्ज भो गो णिअरं।
आगदे बोहेज्ज तं, तस्स खणिगवायसिद्धंतं।।686।। (जुम्मं)

बेचारा गोपालक! एक जैन श्रावक के घर जाकर अपना दुःख कहते हुए रोने लगा तब स्याद्वाद मतानुयायी ने कहा कि तुम आज भी जाओ। अहो गोपालक! और आज उसकी गायें लौटाना नहीं। उसके आने पर उसका क्षणिकवाद सिद्धांत उसे समझाना।

तहेव तेण कुव्विदं, बोद्धो सुणित्तु अइकुविदो जम्हा।
कहिदं तव गोणिअरं, णस्सेज्ज चिय खणिगत्तादो।।687।।

उसने वैसा ही किया। जब बौद्ध गायें लेने आया, तो उसकी बात सुनकर वह अत्यन्त क्रोधित हुआ; क्योंकि उस गोपालक ने कहा कि सब कुछ क्षणभंगुर होने से तुम्हारी गायों का समूह भी नष्ट हो गया।

पुण बुज्झीअ ण खणिगं, सव्वहा कं पि वत्थुं खणिगं णो।
जइण-सिआवायं सय, आसयेज्जा हु सण्णाणस्स॥688॥

पुनः उसे समझाया भाई! सर्वथा कोई भी वस्तु क्षणिक नहीं होती। सम्यग्ज्ञान के लिए जैनों के स्याद्वाद का आश्रय लेना चाहिए।

इत्थं हु खणिगवादो, दिट्ठविरुद्धो य बोद्धसिद्धंतो।
दिट्ठिट्ठविरोहस्स य, णो कं पि सम्म-समाहाणं॥689॥

इस प्रकार क्षणिकवाद, बौद्धों का यह सिद्धांत प्रत्यक्ष विरुद्ध है। और दृष्ट व इष्ट विरोध का कोई भी सम्यक् समाधान नहीं होता।

तस्स पमाणाभावादो दु परमाणू णेव पच्चक्खं।
तं पच्चक्खं कहदे, जदि णिव्विअप्प-पच्चक्खेण॥690॥

परमाणु प्रत्यक्ष नहीं है; क्योंकि उसके (प्रत्यक्ष होने में) प्रमाण का अभाव होता है। यदि बौद्ध कहते हैं कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष से वह प्रत्यक्ष है, तो यह भी ठीक नहीं है।

अविसंवाद - रहिदा हु, अववसायत्त - अप्पमाणत्तादु।
सो खलु णेव पमाणं, अण्णाणिस्स विसदंसणं व॥691॥

क्योंकि उस परमाणु के अव्यवसायात्मक अप्रामाण्य होने से अविसंवाद से रहित होता है। और जो अविसंवाद से रहित होता है, वह प्रमाण नहीं है। जैसे अज्ञानी का विषदर्शन।

जदि सीसदि अभिप्याय-णिवेदणादो अविसंवादो तो।
णो णिवेदण-अववसायस्स विसदंसण-पसंगादु॥692॥

यदि कहते हैं कि अभिप्राय के निवेदन से अविसंवाद होता है, तो उस निवेदन अव्यवसाय के अविसंवाद नहीं होता; क्योंकि अज्ञानी-विषदर्शन के भी अविसंवाद का प्रसंग आ जाएगा।

अविसंवाद-हाणिदो, दंसणं णेव पमाणं जम्हा दु।
पमाण-अभावादु णो, पच्चक्खस्स तस्स सिद्धी हु॥693॥

क्योंकि अविसंवाद की हानि होने से दर्शन प्रमाण नहीं होता। प्रमाण का अभाव होने से उस परमाणु के प्रत्यक्ष की सिद्धि नहीं होती।

पच्चक्ख-अभावादो परमाणूणं पडिभासणम्मि तं।
पच्चक्ख-पमाणं खलु, असिद्धो सव्वदा सत्वत्थ॥694॥

अतः प्रत्यक्ष का अभाव होने से परमाणुओं के प्रतिभासन में प्रत्यक्ष प्रमाण सर्वदा सर्वत्र असिद्ध ही है।

जदि कहसि अक्खेहि पच्चक्खं परमाणू विरुद्धो तरिहि।
तस्स हु आयारो अइ-सुहुमो णेव अक्खसीमाइ॥695॥

यदि आप बौद्ध कहते हैं कि इन्द्रियों के द्वारा परमाणु प्रत्यक्ष है, तो यह दृष्ट विरुद्ध है; क्योंकि उसका आकार अति सूक्ष्म है। यह इन्द्रियों की सीमा में नहीं आता।

जदि मण्णसि तो थूलो, इंदिय-सीमाइ आगमणत्तादु।
जादो णो सुहुमत्तं, तस्स णेव वि अविभागित्तं॥696॥

यदि आप ऐसा मानते हैं कि परमाणु इन्द्रिय-सीमा में आता है तो वह इन्द्रियों की सीमा में आने से स्थूल हो जाता

है, जिससे उसका सूक्ष्मत्व नहीं रहता और अविभागीपना भी नहीं रहता।

परमाणू तव मदम्मि, खणिगो जादो ण अक्ख-पच्चक्खं।
इंदिय गहण-पकिरिया, असक्का अइअप्पयालम्मि।।697।।

दूसरी बात आपके मत में परमाणु क्षणिक है, जिससे वह इन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं हो सकता; क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने की यह प्रक्रिया अति अल्पकाल में सम्भव नहीं है। अर्थात् इन्द्रिय को वस्तु का रूप ग्रहण करने में कालान्तर तो चाहिए ही, और इतने में वह नष्ट ही हो जाएगी।

असंख पदेसिलोए, दिट्ठा अणंताणंतपरमाणू।
जदि तो णहे तरंता, दिस्संते किण्णु एरिसो ण।।698।।

यदि असंख्यात प्रदेशी लोक में अनन्तानन्त परमाणु दृश्यमान हैं, तो वे आकाश में चारों ओर अनन्तानन्त परमाणु तैरते दिखाई देते। किन्तु ऐसा नहीं है।

जो दिट्ठो सो धूली - धुंध - धूमादीण परमाणूणं।
विसालजूहो सिद्धो, णेव सो इंदिय-पच्चक्खो।।699।।

किन्तु जो दिखाई देता है वह धूल, धुंध और धुएँ आदि के परमाणुओं का विशाल समूह है, अतः सिद्ध है कि परमाणु इन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं है।

अणुमाणेण असिद्धं, परमाणुपच्चक्खवादं ताणं।
लिंगदंसणपुव्वस्स, तस्स पच्चक्ख-अभावादो।।700।।

उन: परमाणुओं के लिङ्ग दर्शन पूर्वक का प्रत्यक्ष अभाव होने से बौद्धों के अनुमान से भी परमाणु प्रत्यक्षवाद असिद्ध है।

आगमेण वि असिद्धं, जं ण इट्ठो आगमो सोगदाण।
अत्थपमिदी ण सक्का, सव्वपमाण-अभावादो हु॥701॥

यह परमाणु प्रत्यक्षवाद आगम से भी असिद्ध है; क्योंकि आगम सौगतों के इष्ट नहीं है। इस प्रकार सर्व प्रमाणों का अभाव होने से अर्थप्रमिति शक्य नहीं है।

ताण अभावादो पुण, परुदिदपणक्खंध-रूवपमेयो।
णो सिद्धो तादु सयलजग-सुण्णत्तादो अणिट्ठो॥702॥

उन सभी परमाणुओं के अभाव होने से परमत अर्थात् बौद्धमत में मान्य पञ्चस्कन्ध रूप प्रमेय की सिद्धि नहीं होती है। और उससे सम्पूर्ण जगत् के शून्यता का प्रसङ्ग आता है। अत: इनके महा अनिष्ट होता है।

परमाणु-पडिभासस्स, पदिण्णा विणट्ठा परदंसणस्स।
थूलाइ-आयारस्स, पदीदीए संवेदणाइ॥703॥

परमाणुओं के प्रतिभास की परमत की यह प्रतिज्ञा नष्ट होती है तथा सम्वेदना द्वारा स्थूलादि आकार की प्रतीति की प्रतिज्ञा भी नष्ट होती है।

पच्चक्ख-पुव्वम्मि अवि, पीदाइ थूलायार-दंसणादु।
पीद-विअप्पोव्व होदि, थूलाइ-विअप्प-पदीदी हु॥704॥

प्रत्यक्ष से पहले भी पीतादि स्थूल आकारों का दर्शन होने से पीत विकल्प के समान स्थूलादि विकल्पों की प्रतीति होती है।

तं अक्खबुद्धीए वि, सगलक्खण-विसया णेव केवलं।
थूलाइ-आयारस्स, विसयं हु देक्खिज्जेदि तत्थ॥705॥

इसलिए इन्द्रियबुद्धि के भी स्वलक्षण विषय नहीं होता है, केवल वहाँ स्थूलादि आकार का विषय देखा जाता है।

अदिट्ठम्मि विअप्पस्स, असंजोगादु अदि-पसंग-दोसो।
दोससंजुत्तं कं वि, णेव पमाणरूवं कया वि॥706॥

अदृष्ट में विकल्प का संयोग नहीं होने से अति प्रसङ्ग दोष आता है। और कोई भी दोष से युक्त कदापि प्रमाण रूप नहीं होता।

पीदविसये रत्ताइ-विसयाणं चिय अदंसणादो जह।
थूलाइ-विअप्पस्स दु, णेव उप्पत्ती खलु तहेव॥707॥
थूलाइ अदंसणादु, थूलाइ-विअप्पाण अणुप्पत्ती।
सलक्खण-दंसणादो, सलक्खणविअप्पुप्पत्तीदु॥708॥(जुम्मं)

जिस प्रकार पीले विषय में लाल आदि विषयों का दर्शन नहीं होने से उस स्थूलादि विकल्प की उत्पति नहीं होती है, उसी प्रकार स्थूलादि विषय का दर्शन न होने से स्थूलादि विकल्प की उत्पत्ति नहीं होती। अथवा स्वलक्षण (विषय परमाणु) का दर्शन होने से स्वलक्षण विकल्प की ही उत्पत्ति होना चाहिए।

विअप्पुप्पत्ती थूल-आयारेसु हि सलक्खणेसु णेव।
थूलाइ अदंसणादु, जदि अणाइवासणावसेण॥709॥

थूलविअप्पुप्पत्ती, पीदाइ-अदंसणे वि वासणाइ।
पीदाइ-विअप्पाणं, उप्पत्तीए अववत्था य॥710॥

स्थूल आकारों में विकल्प की उत्पत्ति होती है, स्व-लक्षणों में नहीं। यदि फिर स्थूलादि आकारों के दर्शन न होने पर भी उस स्थूलादि अनादि वासना के वश से ही उस स्थूल के विकल्प की उत्पत्ति मानते हैं, तब पीतादि रूप अदर्शन में भी उस वासना से पीतादि विकल्पों की उत्पत्ति होगी; जिससे अव्यवस्था हो जाएगी।

एगस्सणेगवित्ती, भागस्स णेव अभावो आहो दु।
णेगत्तं भागित्तादु दोसो अरिह-असद्धालूण॥711॥

एक के अनेक वृत्ति होती है। अथवा भाग का अभाव नहीं होता। भागीपना होने से एकपना नहीं होता। इस प्रकार जो अरिहन्त के प्रति अश्रद्धालु हैं, उनके बहुत दोष आते हैं।

थूलायारो दु णेव, परमट्ठो जम्हा परमाणूणं।
संबंधो दु असिद्धो, तस्स देसिगेण संबंधे॥712॥

सडंसत्त-आपत्ती, सव्वप्पेण संबंधे पचयस्स।
परमाणुत्तमेत्तस्स, आपत्तीइ दूसिदेगंतो॥713॥(जुम्मं)

परमार्थ स्थूलाकार नहीं है; क्योंकि परमाणुओं का सम्बन्ध असिद्ध होता है। उसका एकदेश से सम्बन्ध होने पर षडंशता की आपत्ति आती है। सर्वात्म द्वारा संबंध होने पर प्रचय के एक परमाणुमात्रपने की आपत्ति आती है। इससे यह एकान्त भी दूषित होता है।

णइयायिगा भणंते, विवित्तावत्थावंत-परमाणू।
पचय-अवत्थाइ वि णो, उज्झेदि परमाणुत्तं सो।।714।।

नैयायिक कहते हैं कि परमाणु विविक्त अवस्थावान् होता है। वह प्रचय अवस्था में भी परमाणुपने का त्याग नहीं करता।

सिआवायी सीसंति, परमाणूणं लुक्खणिद्धाणं दु।
अजहण्णगुणाणं बे, अहियाणगुणाण उहयाणं।।715।।

विजादि-सजादीणं च, सत्तुजलं व सिआ खंधायारं।
परिणाम-संबंधं हु, संगच्छंति-सिआवायी हु।।716।। (जुम्मं)

तब स्याद्वादी कहते हैं कि यह भी ठीक नहीं है। परमाणुओं का स्निग्ध-रूक्ष का अजघन्य गुणों का दो अधिक गुणों का उभय विजातीय और सजातीय का सत्तु-पानी के समान कथंचित स्कन्धाकार परिणाम सम्बन्ध को स्याद्वादी स्वीकार करते हैं।

परमद-मंगीकरेज्ज, परमाणूण बंध-ववत्थमित्थं।
अण्णहा अत्थकिरिया-विरोहो परमदम्मि हवेदिं।।717।।

परमत को भी इस प्रकार परमाणुओं की बंध व्यवस्था स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा पर मत अर्थक्रिया का विरोध आता है।

सिआवायी संगच्छदि, साहम्मरूवं सिप्पे रयदं व।
णो अण्ण-मदं तादो, णिच्चसहावाभावो ताण।।718।।

स्याद्वादी सीप में चांदी के समान साधर्म्य रूप अर्थात् सादृश्य परिणाम वाले सामान्य को स्वीकार करते हैं; किन्तु

अन्य मत स्वीकार नहीं करते। उससे उनके नित्य स्वभाव का अभाव होता है।

हवेदि अणेग-वत्ती, जहेगभिण्णदेसत्थाण तहेव।
करेज्ज अणेगवत्तिं, भिण्णकालत्थाणं कमसो॥719॥

जिस प्रकार एक भिन्न देशार्थ के अनेक की व्याप्ति होती है उसी प्रकार भिन्न काल पदार्थ के अनेक व्याप्ति क्रम से करना चाहिए।

अत्थकिरियाविरोहो, पुव्वुत्तरखण-णिरणवयत्ते सय।
खणक्खयेगंतम्मि हु, णेव अत्थकिरिया-सिद्धी य॥720॥

पूर्व-उत्तर क्षणों के निरन्वयपना मानने पर अर्थक्रिया का विरोध आता है। क्षणक्षय एकांत पक्ष में अर्थक्रिया की सिद्धि नहीं होती।

अहेदुगत्तापत्ती, बज्झंतत्थम्मि णिरणवयणासम्मि।
कज्जस्स तहा सिद्धो जम्मविरोहो तं विरुद्धो॥721॥

बाह्य व अंतर पदार्थ का निरन्वय (अन्वय रहित) विनाश होने पर कार्य के अहेतुकपने की आपत्ति होती है और जन्म का विरोध सिद्ध होता है। अत: सर्वथा निरन्वयपना इष्ट विरुद्ध है।

पुव्वखणादु उत्तरुप्पत्तीए कुदो णिक्कारणत्तं।
कज्जस्स तो णो पत्तकज्जकालस्स कारणत्तं॥722॥

बौद्ध कहते हैं कि पूर्व क्षण से उत्तर क्षण की उत्पत्ति होने से किससे निष्कारणपना कार्य के सिद्ध होगा, तो

ऐसा नहीं है; क्योंकि कार्य काल को प्राप्त होने वाले के कारणपना नहीं होता।

अण्णहा सव्वसमखणवत्तीण कारणत्तपसंगादो।
अणवयवदिरेगाणुविधायि-कज्जं कारणं तस्स॥723॥

अन्यथा सभी समान क्षणवर्ती सामग्री के कारणपने का प्रसङ्ग आता है। अतः जो अन्वय-व्यतिरेक अनुविधायी कार्य है, वही उसका कारण है।

अणवयवदिरेगेहिं, सह कारणं कहदि सोगदो तो ण।
खणववयेगंतम्मि दु,अणवयवदिरेगो चियणेव॥724॥

जो अन्वय-व्यतिरेक के साथ रहता है, वही कारण है, यदि सौगतमत वाले ऐसा कहते हैं तो ऐसा नहीं है; क्योंकि क्षणक्षय एकान्त में अन्वय-व्यतिरेक घटित नहीं होता।

परमत्थत्तं सिद्धं, थिर-थूल-साहारणायाराणं।
जइणदंसणम्मि सयल-बाहग-अभावादो इत्थं॥725॥

इस प्रकार सकल बाधक का अभाव होने से जैनदर्शन में स्थिर-स्थूल साधारण आकारों के परमार्थपना सिद्ध होता है।

सोगदोदिदसलक्खण-तच्चस्स ण दोसो अवच्चत्तादु।
जदि कहदे बोद्धो तो, कहणं णो संगदं कयावि॥726॥

सौगत मत द्वारा मान्य स्वलक्षण तत्त्व के ऐसे दोष नहीं आते, क्योंकि वह अवाच्य होता है, यदि बौद्ध ऐसा कहते हैं तो उनका यह कथन कदापि सङ्गत नहीं है।

सलक्खणतच्चस्स चिय, वच्चत्तादो अवच्चसद्देणं।
सग-वयणेण सगपदिण्णाए हासदंसणादो य॥727॥

क्योंकि अवाच्य शब्द से स्वलक्षण तत्त्व का वाच्यपना होता है। और स्ववचन से ही स्वप्रतिज्ञा की हानि देखी जाती है।

अवच्चेगंतो णेव, कल्लाणयरो पच्चक्खविरोहं।
हरिदुं सत्तिविहीणो, दिट्ठ विरुद्धसासणमिदं हु॥728॥

अवाच्य एकान्त कल्याणकारी नहीं है और प्रत्यक्ष के विरोध को दूर करने की शक्ति से हीन है। अतः यह बौद्ध कृत शाक्य शासन दृष्ट और विरुद्ध सिद्ध होता है।

सव्वहा खणिगत्तेण, कमक्कमेणत्थ-किरियाविरोहो।
तहेव णिच्चत्तेण वि, सत्ताभावादु जहट्ठो ण॥729॥

सर्वथा क्षणिकपने से क्रम और अक्रम रूप से अर्थक्रिया का विरोध होता है। उसी प्रकार सर्वथा नित्यपने से भी सत्ता का अभाव होने से वह यथार्थ नहीं है।

णिच्चाणिच्चेगंते, अकज्जत्त-पसंगादो उहयो दु।
णेव सेट्ठो कयावि हु, तं अणेगंतो जयवंतो॥730॥

नित्य एकान्त व अनित्य एकान्त में अकार्यपने का प्रसङ्ग होने से दोनों ही कदापि श्रेष्ठ नहीं हैं। अतः अनेकान्त जयवन्त है।

पुण्णपावणिरयसग्ग-बंध हेदु-बंध-सिव-सिवहेदूण।
तप्फलादीणं परोक्खादु, सरूव-पडिपादगो ण॥731॥

पुण्य-पाप, नरक, स्वर्ग, बंध और बंध का कारण, मोक्ष व मोक्ष के हेतु और उनके फलादि का परोक्ष होने से स्वरूप का प्रतिपादक नहीं होता।

तम्हा सोगदागमो, ण पमाणं अपमाणत्तापत्ती।
पच्चक्ख-अणुमाण-अदिपसंगदोसादो चिय अत्थ॥732॥

इसलिए सौगत का आगम प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्ष और अनुमान अतिप्रसंग दोष आने से यहाँ अप्रमाण की आपत्ति आती है।

पच्चक्ख-विरुद्धादो, अणुमाण-पमाण-विरुद्धादो तह।
बोद्धमदं णो सच्चं, असच्चेण सच्चसिद्धी णो॥733॥

प्रत्यक्ष विरुद्ध होने से, अनुमान-प्रमाण से विरुद्ध होने से बौद्धमत सत्य नहीं है। और असत्य से कभी सत्य की सिद्धि नहीं होती।

जैन दर्शन

जइण-दंसणं णेयं, जिणवरेहिं सुपवट्टमाणादो।
णो को वि संठावगो, अस्स चिय अणाइणिहणादो॥734॥

जिनवरों के द्वारा प्रवर्तमान होने से यह दर्शन जैन-दर्शन जानना चाहिए। अनादिनिधन होने से इसका कोई भी संस्थापक नहीं है।

हुंडावसप्पिणीए, अस्सिं किण्णु पढमो तित्थयरो दु।
सिरिउसह-आदिणाहो, जिणधम्म-पवट्टगो णेयो॥735॥

किन्तु इस हुण्डावसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभनाथ या श्री आदिनाथ स्वामी जिनधर्म के प्रवर्तक जानने चाहिए।

जइणदंसणं दु सव्व-दव्वाणं च वत्थूणं गुणाणं।
सहावपज्जायाणं, खावगं अणाइणिहणमिदं॥736॥

अनादिनिधन यह जैनदर्शन सर्व द्रव्य, वस्तु, गुण, स्वभाव व पर्यायों का ख्यापक है।

अणाइणिहणा सव्वा, दव्वा सासया जइणदंसणम्मि।
एगो वि दव्वो णेव, कया वि णस्सदे जणदे वा॥737॥

जैनदर्शन में सर्व द्रव्य शाश्वत व अनादिनिधन हैं। एक भी द्रव्य कदापि नष्ट नहीं होता और उत्पन्न भी नहीं होता।

सदो हु दव्वलक्खणं, उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तो।
असदोणोउप्पज्जदि,सदोणत्थि विणस्सेदि तहा॥738॥

द्रव्य का लक्षण 'सत्' है एवं उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य से युक्त सत् है। सत् का कभी विनाश नहीं होता और असत् कभी उत्पन्न नहीं होता।

वसंति गुणपज्जाया, जम्मि तं वत्थुं अणेगंतरूव।
वत्थु लक्खणं अहवा, अत्थकिरियाकारित्तं चिय॥739॥

जिसमें गुण और पर्याय निवास करते हैं, वह अनेकान्त रूपात्मक वस्तु है। अथवा अर्थक्रियाकारित्व ही वस्तु का लक्षण है।

दव्वासिदा णिग्गुणा, गुणा चिय दव्वेसु गुणेसु वा।
उप्पज्जमाणवत्था, पज्जाओ वा उप्पादोत्थि॥740॥

द्रव्य के आश्रित व स्वयं गुण निर्गुण हैं। द्रव्य वा गुणों में उत्पद्यमान अवस्था पर्याय वा उत्पाद है।

दव्वस्स धुवत्तुप्पादविणासेगत्त - रूवपरिणामो।
वत्थु-धम्मो सीलो य, पइडी वा सहावो णेयो॥741॥

द्रव्य का ध्रौव्य, उत्पाद, विनाश की एकता स्वरूप परिणाम स्वभाव है। अथवा वस्तु का धर्म, शील या प्रकृति स्वभाव जानना चाहिए।

परिणमणं पज्जाओ, दव्वपरिणमणं दव्वपज्जाओ।
गुण-परिणमणं गुणस्स, जं दव्वो णेव कूडत्थो॥742॥

परिणमन ही पर्याय है। द्रव्य का परिणमन द्रव्यपर्याय और गुण का परिणमन गुणपर्याय है। क्योंकि द्रव्य कभी कूटस्थ नहीं होता।

दुविह दव्वपज्जाओ, भेयादो सहाव-विहावाणं च।
धम्मादि-चउक्कस्स हु, सहावो य अण्णाण-मुहयो।।743।।

स्वभाव और विभाव के भेद से द्रव्यपर्याय दो प्रकार की है। धर्मादि चतुष्क (अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश व काल) की स्वभाव पर्याय ही होती है और अन्य (जीव व पुद्गल) की स्वभाव व विभाव दोनों पर्यायें होती हैं।

सिद्धो य कम्मजुत्तो, सहावविहावपज्जाओ कमसो।
पोग्गलस्स परमाणू, देस-थूल-खंधाइ-रूवो।।744।।

सिद्ध पर्याय व कर्म युक्त जीव क्रमशः जीव की स्वभाव विभाव पर्याय हैं। परमाणु, देश, स्थूल, स्कन्धादि रूप पर्याय पुद्गल की पर्याय हैं। परमाणु पुद्गल की स्वभाव व देशादि विभाव पर्याय हैं।

गुणपज्जाओ दुविहो, भेयादु सुद्धासुद्धाण णेया।
सुद्धदव्वाण गुणाण, सुद्धा असुद्धाण असुद्धा।।745।।

शुद्ध व अशुद्ध के भेद से गुणपर्याय दो प्रकार की जाननी चाहिए। शुद्ध द्रव्यों के शुद्ध गुणों की नियम से शुद्ध व अशुद्ध द्रव्यों के अशुद्ध गुणों की अशुद्ध पर्यायें होती हैं।

मदिसुदादी णाणं च, चक्खु-पहुदि दंसणं संसारीण।
कम्मक्खओवसमेण, चारित्तं वि विहावगुणा हु।।746।।

संसारी जीवों के कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला मति-श्रुतादि ज्ञान, चक्षु आदि दर्शन व चारित्र भी विभाव गुण पर्याय ही है।

पोग्गलखंधाणं खलु, रसाइ-विहावगुणा सव्वयाले।
विहाव-गुण-पज्जाया, होंति चिय असुद्धदव्वादो॥747॥

निश्चय से पुद्गल स्कन्धों के सर्वकाल में रस आदि विभाव गुण होते हैं। (स्कन्ध) अशुद्ध द्रव्य होने से उसकी विभाव-गुण-पर्याय ही होती है।

गुणाण सुद्धजीवाण, पज्जाया हवंति सुद्धा णियमा।
केवलणाणं दंसण-सम्मत्तं वीरियमादी य॥748॥

शुद्ध जीवों के गुणों की नियम से केवलज्ञान, केवलदर्शन, सम्यक्त्व और अनन्तवीर्य आदि शुद्ध पर्याय ही होती हैं।

एयरसगंधवण्णं, दोण्णिफासं अणुस्स सुद्धगुणा दु।
ताणं पज्जाया अवि, सुद्धा पोग्गलाणं णेया॥749॥

दो स्पर्श, एक रस, एक गन्ध व एक वर्ण अणु के शुद्धगुण हैं। उन शुद्ध पुद्गलों की पर्यायें भी शुद्ध जाननी चाहिए।

विंजणत्थाण समये, भेदादो पज्जाओ दोण्णिविहो।
पत्तेयं दुविहो ते, जहक्कमेणं मुणेदव्वो॥750॥

आगम में व्यञ्जन और अर्थ के भेद से पर्याय दो प्रकार की कही हैं। वे प्रत्येक यथाक्रम से दो प्रकार की जाननी चाहिए।

सुहुमो सद्दातीतो, खणखइणो तहा अत्थपज्जाओ।
धम्माइ-चउक्कस्स दु, होंति सया अत्थपज्जाया॥751॥

थूलो वयणगोयरो, चिरावत्थिदो विंजणपज्जाओ।
छउमत्थणाण-विसयो, उहयो जीवपोग्गलाणं च॥752॥ (जुम्मं)

सूक्ष्म, शब्दातीत, क्षण-क्षण में नष्ट होने वाली अर्थपर्याय है। धर्मादि चतुष्क की सदा अर्थ पर्यायें ही होती हैं। स्थूल, वचन के गोचर, चिरकाल तक अवस्थित छद्मस्थों के ज्ञान का विषय व्यञ्जन पर्याय है। अर्थ व व्यञ्जन दोनों पर्याय जीव व पुद्गलों के होती हैं।

सहावविहावाणं च, भेयादु दुविहो अत्थपज्जाओ।
धम्माइ-चउक्कस्स दु, सहावो सेसाणं उहयो॥753॥

स्वभाव व विभाव के भेद से अर्थपर्याय दो प्रकार की कही है। धर्मादि चतुष्क के स्वभाव अर्थपर्याय होती है। शेष जीव व पुद्गल के स्वभाव-विभाव दोनों अर्थपर्यायें होती हैं।

पज्जाय-णासो वयो, केसुं पि इगसमये इगहियो।
सम्भवो इगसमये वि, पज्जायविजुत्तो दव्वो ण॥754॥

पर्याय का नाश ही व्यय है। किन्हीं भी द्रव्यादि में एक समय में एक से अधिक पर्याय सम्भव नहीं हैं एवं एक भी समय द्रव्य, पर्याय से रहित नहीं हो सकता।

दव्वो मूले दुविहो, जीवाजीवाणं चिय भेयादो।
णाण-दंसण-चेयणा-संजुदो जीवो णादव्वो॥755॥

जीव व अजीव के भेद से द्रव्य मूल में दो प्रकार का जानना चाहिए। ज्ञान व दर्शन चेतना से युक्त जीव है।

जो जीवदे जीवीअ, जीवस्सेदि दु जीवो णादव्वो।
जीवो अप्पा पाणी, भूदो सत्तो य एगट्ठो॥756॥

जो जीता है, जीता था और जीवेगा, वह जीव जानना चाहिए। जीव, आत्मा, प्राणी, भूत व सत्त्व एकार्थवाची हैं।

संसारी तह मुत्तो, जीवो चिय बेविहो सुप्पसिद्धो।
कम्मजुदा संसारी, कम्मविजुत्ता मुत्ता जाण॥757॥

संसारी व मुक्त, ये दो प्रकार के जीव सुप्रसिद्ध हैं। कर्म से युक्त संसारी व कर्म से रहित मुक्त जानने चाहिए।

संसारी वि बेविहो, सण्णी असण्णी तसो थावरो य।
वा तिविहो एगिंदिय-वियलिंदिय-सयलिंदिया तह॥758॥

संसारी भी दो प्रकार के हैं—सञ्ज्ञी-असञ्ज्ञी वा त्रस-स्थावर। अथवा तीन प्रकार के भी संसारी जीव हैं—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय तथा सकलेन्द्रिय।

पंचविहो संसारी, एइंदियादो पंचिंदियंतं।
णिद्दिट्ठो जिणसमये, इंदियभेदाणुसारेणं॥759॥

जिनशासन में इन्द्रिय भेद के अनुसार संसारी जीव पाँच प्रकार के निर्दिष्ट किए गए हैं। एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक। अर्थात् एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय एवं पाँच इन्द्रिय।

पंचिंदियो वि दुविहो, गदि-अवेक्खाए चदुविहो णेयो।
णेरइया य तिरिच्छा, देवा मणुसा जिणसमयम्मि॥760॥

पञ्चेन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं–सञ्ज्ञी, असञ्ज्ञी। अथवा जिनशासन में गति की अपेक्षा जीव चार प्रकार के जानने चाहिए—नारकी, तिर्यञ्च, देव व मनुष्य।

जीवाणंताणंता, संखवेक्खाइ पत्तेयं जीवे।
असंखेज्जपदेसा दु, णेव कयावि हीणा अहिया।।761।।

सङ्ख्या की अपेक्षा जीव अनन्तानन्त हैं। प्रत्येक जीव में असङ्ख्यात प्रदेश होते हैं, वे कदापि हीन वा अधिक नहीं होते।

वा अण्णावेक्खाए, जीवो तिविहो अवि संविदिदव्वो।
पढमो चिय बहिरप्पा, अंतरप्पा तह परमप्पा।।762।।

अथवा अन्य अपेक्षा से जीव तीन प्रकार के भी जानने चाहिए—प्रथम बहिरात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा।

देहाइ–अत्था अप्प–रूवं मुणंति बहिरप्पा जे ते।
परत्थप्पाण भेयं, विजाणंते अंतरप्पा दु।।763।।

जो देह आदि पदार्थों को आत्म रूप मानते हैं, वे बहिरात्मा हैं और जो देहादि परपदार्थ व आत्मा के भेद को जानते हैं वे अन्तरात्मा हैं।

परमप्पा पुण दुविहो, दव्वभावणोकम्मरहिद–णियलो।
सयलो जम्ममरणाइ–विभावपरिणामहीणो सय।।764।।

पुनः परमात्मा के दो भेद हैं–निकल व सकल। जो द्रव्य, भाव व नोकर्म से सदा रहित हैं वे निकल परमात्मा कहलाते

हैं। जो जन्म, मरणादि विभाव परिणामों से हीन हैं वे सकल परमात्मा कहलाते हैं।

ववहारेणं अक्खं, बलमाउं तह आणपाणो चदू।
णिच्छयेण बेपाणा, णाण-दंसण-चेयणा जाण।।765।।

इन्द्रिय, बल, आयु व श्वासोच्छ्‌वास—ये व्यवहार से चार प्राण हैं। एवं ज्ञानचेतना व दर्शनचेतना निश्चय से दो प्राण जानने चाहिए।

इंदियं पंचविहं च, फास-रसणा-घाण-चक्खू कण्णं।
विणा भाविंदियेहिं, णेव होज्ज जीवम्मि दव्वं।।766।।

इन्द्रियाँ पाँच प्रकार की है—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, व कर्ण। भावेन्द्रियों के बिना जीव में द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होतीं।

फास-रस-गंध-वण्णा, सद्दा चिय ताणं विसया कमसो।
जहाजोग्गक्खजुत्ता, गहंति विसया सगसत्तीइ।।767।।

स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण व शब्द ये क्रमशः उन इन्द्रियों के विषय हैं। यथायोग्य इन्द्रियों से युक्त जीव अपनी शक्ति के अनुसार उन-उन विषयों को ग्रहण करते हैं।

मण-वयण-कायाणं च, भेयादो दु तिविहं बलं णेयं।
आउं चदुहा वि देव-मणुस-णेरइय-तिरिच्छाणं।।768।।

मन, वचन व काय के भेद से बल तीन प्रकार का जानना चाहिए। देव, मनुष्य, नारकी व तिर्यञ्च के भेद से आयु चार प्रकार की है।

पाणवाउ-गहणं चिय, उस्सासो आणो वा णादव्वो।
णिस्सासो सत्थेसुं, दूसिदवाउ-णिस्सारणं च॥769॥

प्राणवायु का ग्रहण करना उच्छ्वास वा आन जानना चाहिए। दूषित वायु का छोड़ना शास्त्रों में निःश्वास जानना चाहिए।

चदु-पाणादो चिय दस-पाणा सम्भवो संसारिगेसुं।
अपज्जत्तावत्थाइ, तिपाणादो तह णवपाणा॥770॥

सांसारिक जीवों में चार प्राण से दस प्राण तक सम्भव हैं। अपर्याप्त अवस्था में तीन से नौ तक प्राण सम्भव हैं।

अजीवो पंचविहो दु, पोग्गल-धम्माधम्मा खं यालो।
स-पूरण-गलण-सहाव-पोग्गलो चउगुणसंजुत्तो॥771॥

अजीव पाँच प्रकार के हैं– पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल। पूरण व गलन स्वभाव से युक्त एवं स्पर्श, रस, गन्ध व वर्ण इन चार गुणों से संयुक्त पुद्गल जानना चाहिए।

अविभागी अंसो परमाणूं मुणेदव्वो पोग्गलस्स।
बे-ते-चदु-पंच-पहुडि-परमाणूण णिअरो खंधो॥772॥

पुद्गल का अविभागी अंश परमाणु जानना चाहिए। दो, तीन, चार, पाँच आदि परमाणुओं का समूह स्कन्ध है।

पंचवग्गणा मुक्खा, तेवीसेसु पोग्गलवग्गणेसुं।
कम्मण-भासा य मणो, तइजसं सेसा णोकम्मा॥773॥

तेईस पुद्गल वर्गणाओं में पाँच वर्गणाएँ मुख्य हैं—कार्माण वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनोवर्गणा, तैजस वर्गणा व शेष नोकर्म वर्गणा।

णोकम्मवग्गणा चिय, णिम्माणंति देहा संसारीण।
तेहि विणा ण सम्भवो, देहणिम्माणं देहीणं।।774।।

नोकर्म वर्गणा संसारी जीवों की देह का निर्माण करती हैं। उनके बिना देही (जीवों) की देह का निर्माण सम्भव नहीं है।

पंचविहं च सरीरं, ओरालिय-वेगुव्वियाहाराणि।
तेजस-कम्मणाइं च, दो णूणदमं संसारीण।।775।।

शरीर पाँच प्रकार के हैं-औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस तथा कार्माण शरीर। सभी संसारी जीवों के न्यूनतम दो शरीर होते हैं।

णर-तिरिच्छाण ओरालियं सुर-णिरयाण वेगुव्वियं च।
आहारइड्ढिसंजुद-साहुस्स आहारदेहो दु।।776।।

मनुष्य व तिर्यञ्चों के औदारिक शरीर तथा देव व नारकियों के वैक्रियक शरीर होता है। आहारक ऋद्धि से संयुक्त साधु के आहारक शरीर होता है।

दित्तिणिमित्तं तेजे, उप्पज्जेदि वा तइजस-सरीरं।
अट्ठविहकम्मखंधा, कम्माणसरीरं जाणेज्ज।।777।।

जो दीप्ति का कारण है या तेज में उत्पन्न होता है वह तैजस शरीर है और आठ प्रकार के कर्मों का स्कन्ध कार्माण शरीर जानना चाहिए।

गमणसहयारि-धम्मो, गच्छमाण-जीव-पोग्गलाणं तह।
असंखेज्जपदेसी य, एगो संखाए अखंडो॥778॥

जो चलते हुए जीव व पुद्गल के लिए गमन में सहकारी है वह धर्मद्रव्य जानना चाहिए। वह धर्मद्रव्य असङ्ख्यात प्रदेशी, सङ्ख्या में एक व अखण्ड है।

ठाणसहयारी जो हु, थक्कंत-जीव-पोग्गलाणं च सो।
एगाखंडाधम्मो, असंखपदेसी णादव्वो॥779॥

जो ठहरते हुए जीव व पुद्गल के लिए ठहरने में सहकारी है वह अधर्म द्रव्य जानना चाहिए। वह अधर्म द्रव्य एक, अखण्ड व असङ्ख्यात प्रदेशी है।

देदि सव्वदव्वाणं, अवगाहणं दु जो सो आयासो।
अखंडणंतपदेसी, दुवियप्पो लोगालोगो य॥780॥

जो सभी द्रव्यों को अवगाहन देता है वह आकाश द्रव्य है। उस अखण्ड व अनन्त प्रदेशी आकाश के दो भेद हैं– लोकाकाश व अलोकाकाश।

जीवादी छद्दव्वा, जत्थ विज्जंति लोगागासो सो।
तत्तो परदो णेयो, अलोगागासो णाणीहिं॥781॥

जीवादि छह द्रव्य जहाँ विद्यमान होते हैं वह लोकाकाश है। उससे परतः ज्ञानियों को अलोकाकाश जानना चाहिए।

लोगो तिविहो खादो, भेयादो अह-उड्ढ-मज्झाणं च।
अहलोएसत्तणिरया, तत्तोअह कलकल-भूमीय॥782॥

अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और मध्यलोक के भेद से लोकाकाश तीन प्रकार का विख्यात है। अधोलोक में सात नरक हैं एवं उससे नीचे कलकल भूमि है।

मज्झलोयम्मि णेया, असंखेज्जा तह दीवा समुद्दा।
उड्ढलोए विमाणाणि विमाणवासीण देवाणं।।783।।

मध्यलोक में असङ्ख्यात द्वीप व समुद्र तथा ऊर्ध्वलोक में विमानवासी देवों के विमान जानने चाहिए।

तत्तो उवरि चिय सिद्ध-खेत्तं जत्थ कम्मविहीण-सिद्धा।
णिच्चाणंताणंता, णिरंजणा अणाइयालादु।।784।।

उनसे ऊपर सिद्ध क्षेत्र है; जहाँ नित्य, अनन्तानन्त, निरञ्जन, कर्मविहीन सिद्ध अनादिकाल से विद्यमान हैं।

परियट्टण-हेदू चिय, यालो जीवाइ-सव्वदव्वेसुं।
दुविहो सो णादव्वो, णिच्छय-ववहार-भेयादो।।785।।

जीवादि सभी द्रव्यों में परिवर्तन का हेतु काल है। निश्चय व व्यवहार के भेद से वह दो प्रकार का है।

आवलि-घडिगा-मुहुत्त-महोरत्ति-पक्ख-मासयण-वस्सा।
ववहार-यालो जाण, आदी अणंत-भेयरूवा य।।786।।

आवली, घटिका, मुहूर्त्त, अहोरात्रि, पक्ष, माह, अयन, वर्ष इत्यादि अनन्त भेद रूप व्यवहारकाल जानना चाहिए।

णिच्छययाल-लक्खणं, जाण वट्टणा दु सव्वदव्वाणं।
यालदव्वेणं विणा, परियट्टणं सम्भवो णेव।।787।।

सर्व द्रव्यों की वर्तना निश्चयकाल का लक्षण जानना चाहिए। कालद्रव्य के बिना परिवर्तन सम्भव नहीं है।

यालविजुत्तासेसा, पणत्थिकाया बहुपदेसत्तादु।
यालो एगपदेसी, संखाए असंखो खंडो।।788।।

काल के अतिरिक्त अन्य पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी होने से अस्तिकाय कहे जाते हैं। काल एक प्रदेशी, सङ्ख्या में असङ्ख्यात व खण्ड-खण्ड हैं।

अत्थित्तादो यालो, अत्थि किण्णु एगपदेसत्तादो।
काओ णेव कया वि दु, जम्हा बहुपदेसी काओ।।789।।

अस्तित्व होने से काल अस्ति है किन्तु एक प्रदेशी होने से काय कदापि नहीं है, क्योंकि काय बहुप्रदेशी होता है।

लुक्खत्तं णिद्धत्तं, असुद्धजीवे जेण गहदि कम्मं।
जम्हा पोग्गलम्मि सय, णिद्धादी अट्ठ फासगुणा।।790।।

अशुद्ध जीव में स्निग्धत्व व रुक्षत्व गुण होता है जिससे वह कर्म ग्रहण करता है क्योंकि पुद्‍गल में सदा स्निग्ध आदि आठ स्पर्श गुण होते हैं।

जीवाजीवासवाण, बंध-संवर-णिज्जरा-मोक्खाणं।
सत्त-तच्च-सद्दहणं विणा णेव को वि सद्दिट्ठी।।791।।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा व मोक्ष इन सात तत्त्वों के श्रद्धान के बिना कोई भी सम्यग्दृष्टि नहीं होता।

पुण्ण-पाव-जुत्त-सत्त-तच्चाणि णवपदत्था जाणेज्जा।
चेयणा-जुदो जीवो, पोग्गलो फास-गंधाइ-जुदो।।792।।

पुण्य व पाप से युक्त सात तत्त्व, इस प्रकार नौ पदार्थ जानने चाहिए। चेतनायुक्त जीव और स्पर्शगन्धादि से युक्त पुद्गल जानना चाहिए।

आसवदि कम्म-णोकम्मवग्गणा जीवो वियारि-भावेहि।
आसवो मुणेदव्वो, दुविहो दव्वभाव-भेयादु।।793।।

जीव विकारीभावों से कर्म व नोकर्म वर्गणाओं का आस्रव करता है, वह आस्रव जानना चाहिए। द्रव्य व भाव के भेद से वह आस्रव दो प्रकार का है।

कम्मवग्गणा आगच्छंति भावासवो जेहि भावेहि।
कम्मवग्गणागमणं, दव्वासवो जाण जीवाण।।794।।

जीवों के जिन भावों से कर्म वर्गणाओं का आगमन होता है, वह भावास्रव जानना चाहिए। एवं कर्म-वर्गणाओं का आगमन द्रव्यास्रव है।

मिच्छत्ताविरदि-जोग-पमाद-कसायेहिं च आसवो दु।
पण-पच्चया दु णेया, कारणं संसार-भमणस्स।।795।।

मिथ्यात्व, अविरति, योग, प्रमाद व कषायों से कर्मों का आस्रव होता है। ये पाँच प्रत्यय संसार भ्रमण के कारण जानना चाहिए।

अप्पपदेसेहिं सह, कम्मवग्गणण्णोण्णं णिबंधंति।
णीर-खीरं व होज्जा, एगमेगो बंधो णिच्चं।।796।।

आत्मप्रदेशों के साथ कर्म वर्गणाओं का अन्योन्य नीर व क्षीर के समान एकमेक बन्ध होता है। वही नित्य बन्ध जानना चाहिए।

पयडिट्ठिदि-अणुभागप्पदेस-भेयादु चदुविहो बंधो।
जोगणिमित्तेण पइडि-पदेसा कसायस्स अण्णा।।797।।

प्रकृति, प्रदेश, स्थिति व अनुभाग के भेद से बन्ध चार प्रकार का जानना चाहिए। प्रकृति व प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से होता है, जबकि अन्य (स्थिति व अनुभाग) बन्ध कषाय के निमित्त से होता है।

दुविहो णिरोह-हेदू, संवरो दु कम्मागमण-दारस्स।
कम्मणिरोहग-भावा,भावो कम्मणिरोह-दव्वो।।798।।

कर्म के आगमन के द्वार के निरोध का हेतु संवर है। वह संवर द्रव्य व भाव के भेद से दो प्रकार का है। कर्म के निरोध करने वाले भाव भाव-संवर है एवं कर्म का निरोध द्रव्य संवर है।

एगदेससडणं खलु, पुव्वसंचिदकम्म-वग्गणाणं च।
णिज्जरा भणिदागमे,दुविहा दव्व-भाव-भेयादु।।799।।

पूर्व सञ्चित कर्मवगणाओं का एकदेश झरना आगम में निर्जरा कही गई है। वह निर्जरा द्रव्य व भाव के भेद से दो प्रकार की है।

बेविहा णिज्जरा अवि, तह सविवागि-अविवागि-भेयादो।
होज्ज विदियाविवागी, सहगारि-कारणं मोक्खस्स।।800।।

सविपाकी व अविपाकी निर्जरा के भेद से भी निर्जरा दो प्रकार की जाननी चाहिए। द्वितीय अविपाकी निर्जरा मोक्ष की सहकारी कारण होती है।

जीवेहि जहक्काले, भुंजिज्जदि जं कम्म-रसं णिच्चं।
णेया सा सविवागी, अणवरदं होदि सव्वाणं।।801।।

जो कर्मरस यथार्थकाल में जीवों के द्वारा भोगा जाता है वह नित्य सविपाकी निर्जरा जाननी चाहिए। यह सविपाकी निर्जरा अनवरत सभी जीवों के होती है।

जह पयदि हालाहलो, किट्टिमरूवेणं फल-अपक्काणि।
जोगी तवेण णासदि, पचित्तु तह कम्माणि विदिया।।802।।

जिस प्रकार माली अपक्व (कच्चे) फलों को कृत्रिम रूप से पकाता है, उसी प्रकार योगी तप के द्वारा कर्मों को पकाकर नष्ट करता है, यह द्वितीय अविपाकी निर्जरा जाननी चाहिए।

सत्तिं अदिक्कमिय अवि, अण्णाणी मिच्छादिट्ठी कुणंति।
कुतवं तो वि ण लहंति, अविवागि-मकामणिज्जरा हि।।803।।

अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव शक्ति का उल्लङ्घन करके भी कुतप करते हैं, तो भी अविपाकी निर्जरा को प्राप्त नहीं करते, उनके अकामनिर्जरा ही होती है।

दव्व-भाव-णोकम्मं, जो सो णासेदि पुण्णरूवेणं।
रयणत्तयबलेणं दु, पावदि णियमेण णिव्वाणं।।804।।

जो जीव रत्नत्रय के बल से पूर्ण रूप से द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्म को नष्ट करता है वह नियम से मोक्ष प्राप्त करता है।

मोक्खमग्गो दु णेयो, सम्मद्दंसण-णाण-चरित्ताइं।
ववहारेणं तत्तिय-मइओ अप्पा णिच्छयेणं॥805॥

व्यवहार से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र की एकता ही मोक्षमार्ग है। एवं निश्चय से रत्नत्रयमय आत्मा ही मोक्षमार्ग है।

जइण-दंसणे मोक्खो, सया सव्वकम्मविहीणावत्था।
अण्णहा णेव गहदे, णेव संकदि उत्त-सरूवे॥806॥

सर्व कर्म से विहीन अवस्था ही जैनदर्शन में मोक्ष कहा गया है। जैन मोक्ष के स्वरूप को अन्यथा ग्रहण नहीं करते और उक्त स्वरूप में शङ्का नहीं करते।

अट्ठकम्मविप्पमुक्का, णिरंजणा लोयग्गठिदा णिच्चा।
सिद्धा सुद्धा मुत्ता, किदकिच्चा अट्ठगुणजुत्ता॥807॥

आठ कर्मों से रहित, निरञ्जन, लोकाग्र पर स्थित, नित्य, कृतकृत्य, आठ गुणों से युक्त, शुद्ध व मुक्त सिद्ध हैं।

जे के वि कम्मपइडी, देंति अणिट्ठफलं सय जीवाणं।
पावपइडी जाण दुह-दुग्गदि-दुरावत्था-हेदू॥808॥

जो कोई भी कर्मप्रकृतियाँ जीवों को सदैव अनिष्ट फल देती हैं, वे पाप प्रकृति जाननी चाहिए। वे पाप प्रकृतियाँ दु:ख, दुर्गति व दुरवस्था की हेतु हैं।

जे सुभावेहि जणिदा, कम्मपइडी देंति सोक्खं णंदं।
ते पुण्णपइडी मोक्ख-हेदू सय णिक्कंखपुण्णं॥809॥

शुभ भावों से उत्पन्न जो कर्मप्रकृतियाँ सुख व आनन्द देती हैं, वे पुण्यप्रकृति कहलाती हैं। निष्काङ्क्ष पुण्य सदा मोक्ष का कारण है।

जीवादि-सद्दहणं च, तच्चाणं पदत्थाण दव्वाणं।
जिणसुदणिग्गंथाणं, सम्मत्तदंसणं जाणेज्ज॥810॥

जीवादि तत्त्वों, पदार्थों, द्रव्यों, जिनेन्द्र प्रभु, जिनागम और निर्ग्रन्थ गुरुओं पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन जानना चाहिए।

सम्मत्तविणाभावी, जं णाणं जहत्थसरूवं णादि।
पदत्थाण णूणाहिय-रहिदं जाण सण्णाणं तं॥811॥

जो ज्ञान सम्यक्त्व का अविनाभावी है, पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को न्यूनता व अधिकता से रहित जानता है, उसे सम्यग्ज्ञान जानना चाहिए।

सम्मद्दंसणेण सह, असुहादु णिवत्ती सुहे पवत्ती।
सच्चरियं दु कारणं, मोहक्खयस्स दुविहं जाण॥812॥

सम्यग्दर्शन के साथ शुभ में प्रवृत्ति व अशुभ से निवृत्ति सम्यक् चारित्र है। यह मोहक्षय का कारण है। सम्यक् चारित्र दो प्रकार का है।

पंचाणुव्वदाणि तिय-गुणव्वदाणि चदुसिक्खावदाइं।
समये सावयधम्मो, एयारसा पडिमारूवा॥813॥

जिनागम में पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत और ग्यारह प्रतिमा रूप श्रावकधर्म कहा गया है।

रयणत्तय-जुत्ताणं, विसय-कसाय-पावादु रहिदाणं।
सत्तीइ णाणज्झाण-तवेसु वट्टणं मुणि-धम्मो।।814।।

जो विषय, कषाय व पापों से रहित हैं, रत्नत्रय से युक्त हैं, उनका स्वशक्ति अनुसार ज्ञान-ध्यान व तप में वर्तन करना मुनिधर्म जानना चाहिए।

जैन दर्शन में प्रमाण

लक्खणं तह पमाणं, णिक्खेव-णयाणुजोगदाराइं।
पदत्था विआणेदुं, लोयम्मि जाण पंचहेदू।।815।।

पदार्थों को जानने के लिए लोक में पाँच हेतु जानने चाहिए—लक्षण, प्रमाण, निक्षेप, नय और अनुयोग द्वार।

पुधकरण-कारण-मेग-वत्थुस्स हु अणेगवत्थूदो जं।
तं लक्खणमप्पणप्पभूदाण भेयादो दुविहं।।816।।

अनेक वस्तुओं से एक वस्तु के पृथक् करने का जो कारण है, वह लक्षण है। वह आत्मभूत व अनात्मभूत के भेद से दो प्रकार का है।

वत्थुम्मि लक्खणं जं, विज्जदि तं अणण्णरूवेण सया।
अप्पभूदलक्खणं च, अणप्पभूदलक्खणमिदरं।।817।।

जो लक्षण वस्तु में अनन्यरूप से सदैव विद्यमान रहता है, वह आत्मभूत लक्षण कहलाता है। इससे इतर अर्थात् जो

लक्षण वस्तु से अलग किया जा सकता है वह अनात्मभूत लक्षण कहलाता है।

पोग्गलस्स वण्णादी, जीवस्स णाणादी अप्पभूदो।
दंडछत्तजुदस्स वा, दंडो छत्तमणप्पभूदो॥818॥

जैसे पुद्गल का वर्णादि एवं जीव का ज्ञानादि लक्षण आत्मभूत है एवं दण्ड व छाते से युक्त व्यक्ति का दण्ड व छाता अनात्मभूत लक्षण है।

सिद्धंतागमेणं च, णायेणं णाणविभागं भिण्णं।
सिद्धंतागमेणं हु, परूवेमि सण्णाण-भेयं॥819॥

सिद्धान्त व आगम से और न्याय की अपेक्षा से ज्ञान का विभाग अलग है। सर्वप्रथम सिद्धान्त व आगम से सम्यग्ज्ञान के भेद का प्ररूपण करता हूँ।

मदी सुदोही णाणं, मणपज्जयं तह केवलं णाणं।
पंचविहं सण्णाणं, पमाणं णिच्चं जिणसमये॥820॥

सम्यग्ज्ञान पाँच प्रकार का है-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। जिनशासन में नित्य सम्यग्ज्ञान प्रमाण है।

बेविहं पि सण्णाणं, भेयादो पच्चक्ख-परोक्खाणं।
पच्चक्खं ते अंते, अज्जे बे परोक्खणाणं च॥821॥

प्रत्यक्ष व परोक्ष के भेद से सम्यग्ज्ञान भी दो प्रकार का है। अन्त के तीन अर्थात् अवधि, मनःपर्यय एवं केवलज्ञान

प्रत्यक्ष ज्ञान हैं और आदि के दो मति व श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं।

तिविहं मिच्छाणाणं, भेयादु कुमदि-कुस्सुद-कुओहीण।
संसारवड्ढगाइं, जुदा-मिच्छादिट्ठी इमेहि॥822॥

कुमति, कुश्रुत व कुअवधि के भेद से मिथ्याज्ञान तीन प्रकार का है। ये तीनों मिथ्याज्ञान संसारवर्द्धक हैं। मिथ्यादृष्टि जीव ही इनसे युक्त होते हैं।

विभंगोही सम्भवो, सण्णीसुं च कुमदी कुस्सुदमेव।
एइंदियादु असण्णि-पंचिंदियंतं जीवेसुं॥823॥

विभङ्गावधि ज्ञान संज्ञी जीवों में ही सम्भव है। कुमतिज्ञान व कुश्रुतज्ञान एकेन्द्रिय से लेकर असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त सभी जीवों में नियम से पाया जाता है।

मिच्छादिट्ठीसु सण्णि-पणिंदियेसु कुमदी कुसुदणाणं।
मदिसुदणाणं सया हि, णियमेण सम्मादिट्ठीसुं॥824॥

मिथ्यादृष्टि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों में नियम से कुमति व कुश्रुतज्ञान होता है एवं सम्यग्दृष्टियों में सदा ही मतिज्ञान व श्रुतज्ञान होता है।

पच्चक्ख-परोक्खाणं, भेयादु दुविह-पमाणं णायेण।
संववहारिगं पि परमट्ठिगं पच्चक्खं दुविहं॥825॥

प्रत्यक्ष व परोक्ष के भेद से प्रमाण दो प्रकार का जानना चाहिए। प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है–सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष व पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

इंदियणिंदियेहि जं, पदत्थं णादि पुट्ठ-मेगदेसं।
संववहारिग-पच्चक्खं संविदिदव्वं बुहेहिं॥826॥

इन्द्रिय व अनिन्द्रिय के द्वारा जो पदार्थ को एकदेश स्पष्ट जानता है वह बुधजनों के द्वारा सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष जानना चाहिए।

अवग्गहीहावाया, धारणा संववहारिगं चदुहा।
मदिणाणस्स भेया वि, छत्तीस-समहिद-तिण्णिसया॥827॥

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष चार प्रकार का है-अवग्रह, ईहा, अवाय व धारणा। ये ही मतिज्ञान के भेद भी हैं। इसके तीन सौ छत्तीस भेद भी होते हैं।

परमट्ठिग-पच्चक्खं, णादि पदत्थं विणा णिमित्तेहिं।
दुविहं सयल-वियलाण, भेयादो चिय मुणेदव्वं॥828॥

जो पदार्थों को बिना निमित्तों के जानता है, वह पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। वह पारमार्थिक प्रत्यक्ष सकल व विकल के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए।

वियलपरमट्ठिगं अवि, दुविह-मोहि-मणपज्जय-भेयादो।
ओहिजुद-मोहिणाणं, दव्वखेत्तयालभावाणं॥829॥

विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष भी अवधिज्ञान व मनःपर्यय ज्ञान के भेद से दो प्रकार का है। द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की मर्यादा से युक्त अवधिज्ञान है।

परचित्तट्ठिद-चिंतिद-मचिंतिदमद्धचिंतिदं वियारं।
जाणेदि मणपज्जयं, जं तं विसुद्धं ओहीदो॥830॥

जो दूसरे के मन में स्थित चिन्तित, अचिन्तित व अर्द्धचिन्तित विचारों को जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान है। वह अवधिज्ञान से अधिक विशुद्ध होता है।

सयलपच्चक्खणाणं, खइयणाणं वा केवलं णाणं।
तियालिया सव्व-दव्व-गुण-पज्जाया णादि जुगवं॥831॥

क्षायिकज्ञान अथवा केवलज्ञान सकल प्रत्यक्षज्ञान है। जो त्रैकालिक सर्व द्रव्य-गुण पर्यायों को युगपत् जानता है, वह केवलज्ञान है।

परोक्खपमाणं पंचविहं सई पच्चहिणाणं णेयं।
तक्को अणुमाणं चिय, आगमो णायावेक्खाए॥832॥

न्याय की अपेक्षा परोक्षप्रमाण पाँच प्रकार का जानना चाहिए—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम।

पुव्वजाणिद-वत्थुस्स, सुमरण-करणं सई वट्टमाणे।
पुव्वसक्कारो तहा, सय जाणेज्ज कारणं तस्स॥833॥

पूर्व में जानी हुई वस्तु का वर्तमान में स्मरण करना स्मृति जाननी चाहिए। पूर्व संस्कार सदा उसका कारण जानना चाहिए।

पच्चक्ख-संववहार-णाणं जं तं होदि सई-जुत्तं।
पच्चहिणाणं बहुविह-मेगत्ताइ-भेयादो खलु॥834॥

जो प्रत्यक्ष सांव्यवहारिक ज्ञान स्मृति से युक्त होता है वह प्रत्यभिज्ञान जानना चाहिए। वह एकत्वादि के भेद से बहुत प्रकार का है।

णाणमणेगविहं तं, सारिस-मेगत्तं वइसारिसं च।
पाडिजोगियं आदी, पच्चहिणाणं मुणेदव्वं।।835।।

वह ज्ञान भी अनेक प्रकार का जानना चाहिए, जैसे– सादृश्य प्रत्यभिज्ञान, एकत्व प्रत्यभिज्ञान, वैसादृश्य प्रत्यभिज्ञान, प्रातियोगिक प्रत्यभिज्ञान इत्यादि।

इत्थं जाणणं इदं, तदेव अत्थि एगत्तं जह जाण।
अयं सो एव पुरिसो, विदियवत्थुं होदि अस्सिं ण।।836।।

यह वही है, इस प्रकार जानना एकत्व प्रत्यभिज्ञान जानना चाहिए। यह वह ही पुरुष है। इस प्रत्यभिज्ञान में कोई दूसरी वस्तु नहीं होती।

जाणणमित्थं णेयं, वत्थुमिदं पुव्वजाणिद-वत्थुं व।
सारिसपच्चहिणाणं, जह रयणमिदं मम रयणं व।।837।।

यह वस्तु पूर्व में जानी गई वस्तु के समान है, इस प्रकार जानना सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है। जैसे–यह रत्न मेरे रत्न के समान है।

पुव्वणादवत्थूदो, वइसारिसं दु वत्थुमिदं इत्थं।
जाणणं वइसारिसं, पउमपुप्फं पाडलादु जह।।838।।

यह वस्तु पूर्व में जानी गई वस्तु से वैसदृश है इस प्रकार जानना वैसदृश्य प्रत्यभिज्ञान जानना चाहिए। जैसे–यह कमल का फूल गुलाब के फूल के समान नहीं है, उससे वैसा दृश्य या भिन्न है।

पुव्वजाणिदवत्थूदु, दूरमिदं अप्पबहुं णिगडं वा।
लहू दीहं जाणणं, इत्थं पाडिजोगिय-णाणं॥839॥

पूर्व में जानी हुई वस्तु से यह दूर है, निकट है, कम है, ज्यादा है, छोटी है या बड़ी है इस प्रकार जानना प्रातियोगिक प्रत्यभिज्ञान है।

वत्तिणाणं दु ऊहो, उवलंभाणुवलंभणिमित्तं वा।
तक्को अविणाभावी, सम्बन्धो वत्ती जाणेज्ज॥840॥

उपलम्भ व अनुपलम्भ के निमित्त व्याप्ति के ज्ञान को ऊहा या तर्क कहते हैं। अविनाभावी सम्बन्ध को व्याप्ति जानना चाहिए।

जत्थ साहणं तत्थ वि, सज्झं साहणं ण विणा सज्झेण।
अग्गिं विणा ण धूमो, जह अविणाभावि-सम्बन्धो॥841॥

जहाँ-जहाँ साधन हो, वहाँ-वहाँ साध्य का होना और जहाँ साध्य न हो वहाँ साधन का भी न होना अविनाभावी सम्बन्ध है। जैसे–अग्नि के बिना धुँआ नहीं होता। अर्थात् जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि और जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं, वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं।

साहणादो सज्झस्स, णाणं दु अणुमाणं मुणेदव्वं।
अणुमाणं बेविहं च, सत्थपरत्थाण भेयादो॥842॥

साधन से साध्य का ज्ञान अनुमान जानना चाहिए। स्वार्थ व परार्थ के भेद से अनुमान ज्ञान दो प्रकार का है।

परोवदेसेण विणा, जं णाणं सत्थं अणुमाणं तं।
परोवदेसेण होदि, परत्थणाणं जाणिदव्वं।।843।।

जो ज्ञान/अनुमान परोपदेश के बिना होता है, वह स्वार्थ अनुमान ज्ञान है एवं जो ज्ञान परोपदेश से होता है, वह परार्थ अनुमान ज्ञान जानना चाहिए।

पवणादो सयमेव दु, वरिसाणाणं अणुमाणं सत्थं।
परत्थंवरिसाणाण-मणिलादो परोवदेसेण।।844।।

जैसे–हवा से स्वयं ही वर्षा का ज्ञान हो जाता है, वह स्वार्थ अनुमान ज्ञान है। परोपदेश के द्वारा वायु से वर्षा का ज्ञान परार्थ अनुमान ज्ञान है।

बे अंगो य पदिण्णा, हेदू अणुमाणस्स मुणेदव्वो।
अणुमाणं णाणं णो, सम्भवो विणा बे-अंगेहि।।845।।

अनुमान ज्ञान के दो अङ्ग जानने चाहिए–प्रतिज्ञा व हेतु। इन दो अङ्गों के बिना अनुमानज्ञान सम्भव नहीं है।

पदिण्णा हेदुवणयं, उदाहरणं णिगमणं णादव्वं।
पंचंग-मणुमाणस्स, जिणसमयेण विबुहजणेहिं।।846।।

जिनागम से बुधजनों को अनुमान के पाँच अङ्ग भी जानने चाहिए–प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय व निगमन।

पक्खवयणं पदिण्णा, सज्झधम्मसंजुदधम्मी पक्खो।
पव्वयो अग्गिमाणो, इदं तम्मि पव्वयो धम्मी।।847।।

पक्ष का वचन प्रतिज्ञा है। साध्य धर्म से युक्त धर्मी ही पक्ष है। जैसे–यह पर्वत अग्निमान है। इसमें पर्वत धर्मी है।

अविणाभावी खलु जो, सज्झेणं सह हेदू णेयो सो।
अविणाभावीदु तस्स, हेदू जह धूमो अणलस्स॥848॥

जो साध्य के साथ निश्चय से अविनाभावी है वह हेतु जानना चाहिए। जैसे–अविनाभावी होने से अग्नि का हेतु धुआँ है।

सम्म-दिट्ठंतवयणं, उदाहरणं बेविहो दिट्ठंतो।
अणवयो वदिरेगो य, जिणवरेणं खलु णिद्दिट्ठो॥849॥

सम्यक् दृष्टान्त का वचन उदाहरण जानना चाहिए। जिनवर के द्वारा दृष्टान्त दो प्रकार का निर्दिष्ट किया गया है। अन्वय दृष्टान्त और व्यतिरेक दृष्टान्त।

पेच्छिज्जदि सज्झेणं, सह साहणवत्ती अणवयो जत्थ।
जह रसवई जाणेज्ज, साहम्मो अवरणामो खलु॥850॥

जहाँ साध्य के साथ साधन की व्याप्ति देखी जाती है, वह अन्वय दृष्टान्त जानना चाहिए, जैसे–रसोईघर। इस दृष्टान्त का अपर नाम साधर्म्य दृष्टान्त भी है।

अवअक्खिज्जदे जत्थ, सज्झाभावम्मि साहणाभावो।
वदिरेगो वइधम्मो, दिट्ठंतो जह जलासयो दु॥851॥

जहाँ साध्य के अभाव में साधन का अभाव देखा जाता है वह व्यतिरेक या वैधर्म्य दृष्टान्त कहलाता है जैसे–तालाब।

उवणयो खलु हेदुस्स, उवसंहारो जिणवरदेवेहिं।
णिगमणं पदिण्णाए, उवसंहारो य णिद्दिट्ठो॥852॥

हेतु का उपसंहार उपनय एवं प्रतिज्ञा का उपसंहार निगमन कहलाता है। ऐसा जिनवर देवों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।

राय दोसरहिदेसुं, गुरुसिस्सेसु वा वयणवावारो।
तच्चणिण्णयट्ठं तह, परोप्परे वीयरायकहा॥853॥

गुरु-शिष्य अथवा राग-द्वेष से रहित जीवों में तत्त्व-निर्णय के लिए परस्पर में जो वचन व्यापार होता है, वह वीतराग कथा है।

समद-ठावणत्थं जय-पराजयंतं वादिपडिवादीसु।
विजिगीसु-कहा णेया, परोप्परे वयणवावारो॥854॥

वादी-प्रतिवादी में स्वमत की स्थापना के लिए जय व पराजय तक परस्पर में होने वाला वचन व्यापार विजिगीषु कथा जाननी चाहिए।

विजिगीसु-कहाए खलु, बे अंगो हि किण्णु वीयरायम्मि।
उदाहरणमुवणयं च, णिगमणं दु अणुमाणस्स अवि॥855॥

विजिगीषु कथा में अनुमान के दो (प्रतिज्ञा व हेतु) अङ्ग होते हैं, किन्तु वीतराग कथा में उदाहरण, उपनय और निगमन भी होते हैं।

अत्तेहि सुप्पणीदो, संगहीदो गणहरदेवेहिं च।
मुणीहि लिहिदो णेयो, आगमो दु सवरहिदहेदू॥856॥

जो आप्त देवों के द्वारा प्रणीत है, गणधर देवों के द्वारा सङ्ग्रहीत एवं मुनियों के द्वारा लिखित है, वह स्वपर हित का हेतु आगम जानना चाहिए।

हेदु-लक्खणाभासो, पमाण-दिट्ठंत-णिगमणाभासो।
मिच्छा तं उज्झेज्जा, उवणयाइ-सव्वाभासा हु॥857॥

हेत्वाभाव, लक्षणाभास, प्रमाणाभास, दृष्टान्ताभास, निगमनाभास व उपनयाभास आदि सभी आभास निश्चय से मिथ्या हैं। अतः उन्हें छोड़ना चाहिए।

जो जहा होदि ण किण्णु, तह भासदि तण्णामाभासो सो।
भेदणुसारेण जाण, अत्थ विसेसं हु भणिस्सामि॥858॥

जो जैसा नहीं है किन्तु उस प्रकार प्रतिभासित होता है, वह उस नाम वाला आभास जानना चाहिए। भेद के अनुसार उन सबको जानना चाहिए। यहाँ विशेष को कहूँगा।

अणुमाणाभासो पण-विहो पक्खाभास-हेच्चाभासो।
दिट्ठंतुवणयणिगमण-आभासो खलु मुणेदव्वो॥859॥

अनुमानाभास पाँच प्रकार का जानना चाहिए। पक्षाभास, हेत्वाभास, दृष्टान्ताभास, उपनयाभास, आगमाभास।

जो णेव पक्खो किण्णु, पक्खोव्व पडिभासेदि णियमेणं।
पक्खाभासो णेयो, सो उज्झणीयो णाणीहिं॥860॥

जो पक्ष तो नहीं है किन्तु पक्ष के समान प्रतिभासित होता है, वह पाक्षाभास जानना चाहिए। वह ज्ञानियों के द्वारा नियम से त्याज्य है।

तिविहो पक्खाभासो, अणिट्ठ-सिद्ध-बाहिदा भेयादो।
वायिणो ण इट्ठो जो, तं पक्खं-कहणं अणिट्ठो।।861।।

अनिष्ट, सिद्ध और बाधित के भेद से पक्षाभास तीन प्रकार का जानना चाहिए। जो वादी के लिए इष्ट न हो उसे पक्ष कहना अनिष्ट पक्षाभास जानना चाहिए।।

सिद्धो पक्खाभासो, पुव्वसिद्धं पक्ख-सीसणं जाण।
जह अग्गी उण्हो तह, सीयला तरंगिणी सलिलो।।862।।

पूर्व सिद्ध अर्थात जो पहले से ही सिद्ध हो उसे पक्ष कहना सिद्ध पक्षाभास है। जैसे—नदी का जल शीतल है।

पच्चक्खणुमाणागम-लोय-सगवयणेहिं बाहिदो जो।
पक्खो सो णादव्वो, बाहिदो चिय पक्खाभासो।।863।।

जो पक्ष प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक या स्ववचन से बाधित है, वह निश्चय से बाधित पक्षाभास जानना चाहिए।

बाहिद-पक्खाभासो, पंचविहो पच्चक्खमणुमाणं च।
आगम लोयसगवयण-बाहिदो समयेणं णेयो।।864।।

बाधित पक्षाभास पाँच प्रकार का जानना चाहिए-प्रत्यक्ष बाधित, अनुमान बाधित, आगमबाधित, लोकबाधित और स्ववचन बाधित।

सज्झस्स सिद्धीए हि, किंचिवि णो कुव्वदि जो सो णेयो।
अप्पजोयगो-हेदू, अकिंचिक्कर-हेच्चाभासो।।865।।

जो साध्य की सिद्धि के लिए कुछ भी नहीं करता, वह अप्रयोजक हेतु अकिञ्चित्कर हेत्वाभास जानना चाहिए।

ण होदि दिट्ठंतो जो, किण्णु पडिभासदे दु दिट्ठंतोव्व।
दिट्ठंताभासो तह, अण्णयो विदिरेगो दुविहो।।866।।

जो दृष्टान्त नहीं है किन्तु दृष्टान्त के समान प्रतिभासित होता है वह दृष्टान्ताभास है। वह दो प्रकार का है–अन्वय दृष्टान्ताभास तथा व्यतिरेक दृष्टान्ताभास

ण हेदु–उवसंहारो, किण्णु भासेदि तदरूवो जो सो।
उवणयाभासो हु तं, सण्णाणस्स सय उज्झेज्जा।।867।।

जो हेतु का उपसंहार नहीं है किन्तु उस रूप प्रतिभासित होता है, वह उपनयाभास है। सम्यग्ज्ञान के लिए उसका त्याग कर देना चाहिए।

अणत्तसकहिद सत्थं, सियावाय–विरहिद–मेयंत–जुदं।
हिंसग–पोसगं जाण, कुसत्थं दु आगमाभासो।।868।।

जो शास्त्र अनाप्त द्वारा कथित, स्याद्वाद से रहित, एकान्त से युक्त, हिंसा का पोषण करने वाला है, वह कुशास्त्र वा आगमाभास जानना चाहिए।

पच्चक्खेण बाहिदो, जो सो पच्चक्ख बाहिदो णेयो।
जह अग्गी सीयलो हु, चंदगहत्थी तहा उण्हो।।869।।

जो पक्ष प्रत्यक्ष से बाधित है, वह निश्चय से प्रत्यक्ष बाधित पक्षाभास जानना चाहिए। जैसे अग्नि शीतल है तथा चन्द्रमा की किरण ऊष्ण है।

अणुमाणेण बाहिदो, अणुमाणबाहिदो पक्खाभासो।
जो सो खलु णादव्वो, जहा अपरिणामी दु सद्दो।।870।।

जो पक्ष अनुमान से बाधित है, वह निश्चय से अनुमान बाधित पक्षाभास जानना चाहिए। जैसे शब्द अपरिणामी हैं।

बाहिदो आगमेणं, आगम बाहिदो पक्खाभासो दु।
जो सो णादव्वो चिय, जह दुक्खं होदि धम्मेणं।।871।।

जो पक्ष आगम से बाधित है, वह निश्चय से आगम बाधित पक्षाभास है। जैसे धर्म से दुःख होता है।

लोयववहारेणं च, बाहिदो दु लोयबाहिदो जो सो।
माणुसस्स सिरो होदि, जह पवित्तो संख-सिप्पीव।।872।।

जो पक्ष लोकव्यवहार से बाधित है, वह निश्चय से लोकबाधित पक्षाभास है। जैसे मनुष्य का सिर शंख-सीप के समान पवित्र होता है।

सगवयणेण बाहिदो, जो सो सगवयण बाहिदो णेयो।
जह मम मादू बंझा, मदणोव्व पुत्तो हं ताए।।873।।

जो पक्ष स्ववचन से बाधित है, वह स्ववचन बाधित पक्षाभास जानना चाहिए। जैसे मेरी माँ बंध्या है, मैं उनका कामदेव के समान पुत्र हूँ।

जो भासदि हेदू इव, किण्णु हवेदि सम्मं हेदू णेव।
णिच्छयेण बुहजणेहि, हेच्चाभासो दु सो णेयो।।874।।

जो हेतु के समान भासित होता है किन्तु सम्यक् हेतु नहीं होता, वह बुधजनों के द्वारा निश्चय से हेत्वाभास जानना चाहिए।

असिद्धो विरुद्धो चिय, अणेगंतो अकिंचिक्करो तहा।
चदुविह-हेच्चाभासो, समयण्हूहिं विणिद्दिट्ठो।।875।।

समयज्ञ अर्थात् आत्मा को जानने वालों के द्वारा हेत्वाभास चार प्रकार का कहा गया है-असिद्ध, विरुद्ध, अनेकान्त और अकिञ्चित्कर हेत्वाभास।

जो सयमेव असिद्धो, हेदू सो असिद्ध-हेच्चाभासो।
सरूव संदिद्धाणं, भेयादो बेविहो णेयो।।876।।

जो हेतु स्वयं ही असिद्ध है, वह असिद्ध हेत्वाभास है। स्वरूप और संदिग्ध के भेद से वह दो प्रकार का जानना चाहिए।

सरूवासिद्धो जो हु, जस्स हेदुस्स सरूवाभावो य।
जह सद्दो परिणामी, जम्हा सो चक्खुसो णेयो।।877।।

जिस हेतु के स्वरूप का अभाव है, वह स्वरूप असिद्ध हेत्वाभास जानना चाहिए। जैस शब्द परिणामी है; क्योंकि वह चाक्षुष है।

सद्दो खलु परिणामी, पज्जायादो पोग्गलस्स णेयो।
किण्णु णो चक्खु विसयो, तं इदं हेदू असिद्धो हु।।878।।

पुद्गल की पर्याय होने से शब्द परिणामी जानना चाहिए। किन्तु यह चक्षु का विषय नहीं है, इसलिए यह हेतु असिद्ध है।

होदि संदिग्घो जस्स, हेदुस्स सरूवो सो विआणेज्ज।
संदिद्धासिद्धो जह, पंको सीयलो वत्थूदो॥879॥

जिस हेतु का स्वरूप संदिग्ध होता है, वह संदिग्धासिद्ध हेत्वाभास जानना चाहिए। जैसे पङ्क शीतल है, वस्तु होने से।

सज्झविवरीदत्थेहि, सह अविणाभावो जस्स होदि सो।
विरुद्धाभासो हु जह, खं अमुत्तिगो रस जुदादो॥880॥

साध्य के विपरीत पदार्थ के साथ जिसका अविनाभाव होता है, वह विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है। जैसे आकाश अमूर्तिक है, रस युक्त होने से।

अणेगंतिगो हु जस्स, वित्ती पक्खसपक्ख विपक्खेसुं।
सो दुविहो णादव्वो, णिच्छिद-संकिदाण भेयादु॥881॥

जिसकी वृत्ति पक्ष, सपक्ष व विपक्ष तीनों में होती है, वह अनैकांतिक हेत्वाभास कहलाता है। वह निश्चित विपक्ष-वृत्ति व शंकित विपक्षवृत्ति के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए।

णिच्छयेणं विपक्खे, जस्स वित्ती सो णिच्छिद-विपक्खो।
पमेयो दु जं सद्दाणिच्चो जह किण्णु णहादी वि॥882॥

निश्चय से विपक्ष में जिस हेतु की वृत्ति है, वह निश्चित विपक्षवृत्ति हेत्वाभास है। जैसे शब्द अनित्य है; क्योंकि प्रमेय है, किन्तु आकाश आदि भी प्रमेय हैं। यहाँ प्रमेय हेतु निश्चित विपक्ष वृत्ति हेत्वाभास है; क्योंकि वह नित्य आकाश आदि में भी रहता है।

विपक्खे जस्स वित्ती, संदिद्धो सो संकिद-विपक्खो य।
जह गगणममुत्तिगं दु, अचेयणादो मुणेदव्वो॥883॥

विपक्ष में जिस हेतु की वृत्ति संदिग्ध है, वह शङ्कित विपक्षवृत्ति हेत्वाभास जानना चाहिए। जैसे आकाश अमूर्तिक है, अचेतन होने से।

पमाणं ण पमाणं व, भासेदि पमाणाभासो तिविहो।
संसय-विपज्जय-अणज्झयवसायाणं भेयादो॥884॥

जो प्रमाण नहीं है, किन्तु प्रमाण के समान प्रतिभासित होता है वह प्रमाणाभास है। संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय के भेद से यह तीन प्रकार का है।

संसयो विरुद्धणेग-कोडि-फासिदणाणं मुणेदव्वं।
विपज्जयो विवरीदिग-कोडीइ णिच्छयकरणाणं॥885॥

विरुद्ध अनेक कोटि का स्पर्श करने वाला ज्ञान संशय जानना चाहिए और विपरीत एक कोटि का निश्चय करने वाला ज्ञान विपर्यय जानना चाहिए।

किमिदमिमो पडिभासो, अणज्झवसायो पमाणाभासो।
जह पहे गच्छंतस्स, तिणकंडगादीणं णाणं॥886॥

"यह क्या है?" ऐसे प्रतिभास को अनध्यवसाय कहते हैं। जैसे मार्ग में चलते हुए व्यक्ति के तृण, कंटकादि का ज्ञान।

निक्षेप

जुत्तिजुत्तसुमग्गेण, लोयववहारं पयलिदुं सक्को।
णिक्खेवो य चदुविहो, णाम-ठावणा दव्वभावा।।887।।

जो युक्तियुक्त मार्ग से लोकव्यवहार प्रचलित करने में समर्थ है, वह निक्षेप जानना चाहिए। यह निक्षेप चार प्रकार का है-नाम, स्थापना, द्रव्य व भावनिक्षेप।

काण वि वत्थु-वत्तीण, णामखेवणं च णामणिक्खेवो।
जह पुरिसस्स णामो दु, रामो जिणो अंबतरू वा।।888।।

किन्हीं भी वस्तु, व्यक्तियों का नाम रखना नाम निक्षेप है-जैसे किसी पुरुष का नाम राम या जिन है अथवा पेड़ का नाम आम्र।

कस्सिं अवि वत्थुम्मि दु, अण्णवत्थूण ठावणं जाणेज्ज।
सायाराणायारो, दुविहो ठावणाणिक्खेवो।।889।।

किसी भी वस्तु में अन्य वस्तुओं की स्थापना करना स्थापना निक्षेप जानना चाहिए। वह साकार व अनाकार स्थापना के भेद से दो प्रकार की है।

पडिमाए वीरस्स दु, ठावणा तदायार-ठावणा चिय।
अक्खेसु गयादीणं, अतदायार-ठावणा जाण।।890।।

प्रतिमा में वीर जिन की स्थापना साकार या तदाकार स्थापना है एवं अक्षपाशों में हाथी आदि की स्थापना अतदाकार या अनाकार स्थापना जाननी चाहिए।

भूद-भावीण कहणं, संपइयालम्मि दव्व-णिक्खेवो।
णवरि वट्टमाणे पज्जायाभावो णेयो तस्स॥891॥

भूत व भविष्य की पर्यायों को वर्तमान में कहना द्रव्य निक्षेप जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वर्तमान में उस पर्याय का अभाव होता है।

समणस्स जिण-सीसणं, बुड्ढस्स जुवा-उप्पालणं तहा।
सिद्धस्स अरिहो य विज्जत्थिस्स चिइच्छओ अहवा॥892॥

जैसे—श्रमणराज के लिए जिन कहना, वृद्ध को युवा कहना, सिद्ध के लिए अरिहन्त अथवा विद्यार्थी को चिकित्सक कहना।

दव्वस्स हि वट्टमाण-पज्जायकहणं भावणिक्खेवो।
पुज्जमाणो पूयगो, गच्छंतो दु पहिगो जह वा॥893॥

द्रव्य की वर्तमान पर्याय का कथन करना भाव निक्षेप है। जैसे पूजा करते हुए को पुजारी तथा चलते हुए को पथिक कहना।

नय

वत्ता-णादु-सोदाण, अहिप्पायो णयो संविदिदव्वो।
वियलादेसो णयो य, सयलादेसो चिय पमाणं॥894॥

वक्ता, ज्ञाता या श्रोता के अभिप्राय को नय जानना चाहिए। विकलादेश नय एवं सकलादेश प्रमाण जानना चाहिए।

पुण्णरूवेणं वत्थु-णाणं खलु सम्भवो पमाणेणं।
अंसरूवेणं वत्थु-णाणं णयेणं सव्वदा हि।।895।।

प्रमाण से पूर्ण रूप से वस्तु का ज्ञान सम्भव है तथा नय से सर्वदा ही अंश रूप से वस्तु का ज्ञान सम्भव होता है।

णयो बेविहो खादो, भेयादो ववहार-णिच्छयाणं।
ववहारेण विणा णो, सम्भवो दु णिच्छयो कया वि।।896।।

व्यवहार व निश्चय के भेद से नय दो प्रकार का विख्यात है। व्यवहार के बिना निश्चय कदापि सम्भव नहीं है।

अभेदरूवखावगो, णिच्छयो तह भेदस्स ववहारो।
भूदत्थाभूदत्थो, कयाइ वण्णिदो जिणसमये।।897।।

अभेदरूप कथन करने वाला निश्चयनय व भेद कथन करने वाला व्यवहारनय जिनागम में वर्णित है। कदाचित् ये नय भूतार्थ व अभूतार्थ भी हैं।

दव्वट्ठिग-पज्जट्ठिग-भेयादु दुविहो णयो णादव्वो।
दव्वट्ठिग-विसयो दव्वो पज्जाओ चिय इदरस्स।।898।।

द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक के भेद से नय दो प्रकार का जानना चाहिए। द्रव्यार्थिक नय का विषय द्रव्य एवं इतर अर्थात् पर्यायार्थिक नय का विषय पर्याय है।

दव्वट्ठिगो दसविहो, कम्मुपाहि-णिरवेक्खाइ-भेयादो।
सगप्पसुद्धं करिदुं, दव्वट्ठिग-णयो णादव्वो।।899।।

कर्मोपाधि निरपेक्षादि के भेद से द्रव्यार्थिकनय दस प्रकार का है। स्वात्मा को शुद्ध करने के लिए द्रव्यार्थिक नय जानना चाहिए।

पज्जट्ठिग-णयो जाण, छव्वियप्पो भव्वकल्लाणत्थं।
पज्जायणाणं विणा, अत्थणाणं होदि ण पुण्णं।।900।।

भव्यों के कल्याण के लिए पर्यायार्थिक नय छह प्रकार का जानना चाहिए। पर्यायज्ञान के बिना वस्तु का पूरा ज्ञान नहीं होता।

णेगमो संगहो तह, ववहारो दव्वट्ठिग-णयो जाण।
पज्जट्ठिगो चिय णयो, उजुसुत्तणयादी चत्तारि।।901।।

नैगम, सङ्ग्रह व व्यवहार ये तीन नय द्रव्यार्थिक नय तथा ऋजुसूत्रादि (शब्द, समभिरूढ़, एवम्भूत) चार नय पर्यायार्थिक नय जानने चाहिए।

णेगमो तह संकप्प-मेत्तगाहगो णाणावियप्पाण।
णेगं गच्छदि णिगमो, सो वियप्पो तं गहदि णयो।।902।।

सङ्कल्प मात्र को ग्रहण करने वाला या नाना विकल्पों को ग्रहण करने वाला नैगम नय है। जो एक को प्राप्त नहीं होता वह निगम या विकल्प है। वह विकल्प को ग्रहण करता है इसलिए नैगमनय है।

सजादि-अविरोहेणं, संपुण्ण-पदत्था संगहो गहदि।
संगहगहीदत्थेसु, भेयकारगो य ववहारो।।903।।

स्वजाति के अविरोधपूर्वक सम्पूर्ण पदार्थों को जो ग्रहण करता है, वह सङ्ग्रहनय है। सङ्ग्रहनय से ग्रहण किए गए पदार्थों में भेद करने वाला व्यवहारनय जानना चाहिए।

सरलं सुत्तदि कहदे, जो सो उजुसुत्तो संविदिदव्वो।
संखाकारगादीण, वभियार-णिवट्टगो सद्दो।।904।।

जो सरल को सूत्रित करता है, सरल को कहता है वह ऋजुसूत्र नय जानना चाहिए। जो सङ्ख्या, कारक आदि के व्यभिचार का निवर्तक है, वह शब्दनय है।

सद्दाणमणेगत्था, किण्णु पसंगाणुसारेण गहेज्ज।
समभिरूढ-णयो जाण, णाणत्थ-समहिरोहणादो।।905।।

शब्दों के अनेक अर्थ हैं किन्तु प्रसङ्गानुसार उन्हें ग्रहण करना चाहिए। नाना अर्थों में आरूढ़ होने से यह समभिरूढ़ नय जानना चाहिए।

जो पुरिसो जं किरियं, कुणदि याले जम्मि एवंभूदो।
तस्सिं पुरिसे ताए, किरियारोवगो णादव्वो।।906।।

जो पुरुष जिस काल में जो क्रिया करता है, उस पुरुष में उस क्रिया का आरोपण करने वाला एवंभूत नय जानना चाहिए।

अनुयोगद्वार

पदत्था संविदेदुं, उवाओ चिय अणुजोगदारं अवि।
सडविहमट्ठविहं वा, अणेगविहं वि मुणेदव्वं।।907।।

अनुयोग द्वार भी निश्चय से पदार्थों को जानने के उपाय हैं। वह छह, आठ या अनेक प्रकार का भी जानना चाहिए।

णिद्देसो सामित्तं, साहणाहिकरणट्ठिदिविहाणाणि।
ताण सरूवं वोच्छे, भव्वाण कल्लाणत्थं हं।।908।।

निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति व विधान ये छह प्रकार के अनुयोगद्वार हैं। भव्यों के कल्याण के लिए मैं उनके स्वरूप को कहूँगा।

वत्थु-सरूव कहणं च, णिद्देसो दु सामिस्स सामित्तं।
तस्सुप्पत्ति-कारणं, साहणं आहारहिकरणं।।909।।

वस्तु के स्वरूप का कथन निर्देश है। वस्तु के स्वामी का कथन स्वामित्व है। उसकी उत्पत्ति में कारण साधन और उसका आधार अधिकरण है।

काल-मज्जादा ठिदी, वत्थुस्स भेया विहाणं तहा दु।
पुण्णेण वत्थुं णादु-मणुजोगदारं णादव्वं।।910।।

काल को मर्यादा-स्थिति तथा वस्तु के भेद या प्रकार विधान है। पूर्ण रूप से वस्तु को जानने के लिए अनुयोग-द्वार जानना चाहिए।

सदो संखा य खेत्तं, फासणं यालो अंतरो भावो।
अप्प-बहुत्तमणुजोग-दाराणि हिदत्थं जाणेज्ज।।911।।

सत्, सङ्ख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, भाव और अल्पबहुत्व ये आठ अनुयोगद्वार भव्यों के हित के लिए जानने चाहिए।

सदो वत्थु-अत्थित्तं, भेद-गणणा संखा तहा खेत्तं।
संपइ वासट्ठाणं, तिल्लोय-खेत्तं फासणं च।।912।।

वस्तु का अस्तित्व सत् है, वस्तु के भेदों की गणना सङ्ख्या है, वर्तमान निवास स्थान क्षेत्र है और वस्तु का त्रिकाल क्षेत्र स्पर्शन है।

ठिदी यालो अंतरो, विरहयालो संपइदसा भावो।
हीणाहियत्त-कहणं, अप्पबहुत्त-मण्ण-वत्थूदु।।913।।

वस्तु की स्थिति काल है। विरह काल को अंतर कहते हैं। वस्तु की वर्तमान दशा भाव है। अन्य वस्तुओं से हीनाधिकता का कथन अल्पबहुत्व है।

जीव के भाव

जीवस्स असाहारण-पणभावा जिणवरेहि णिद्दिट्ठा।
णेव विज्जंति कया वि, असाहारणा ते अण्णेसु।।914।।

जिनेन्द्र भगवानों के द्वारा जीव के पाँच असाधारण भाव निर्दिष्ट किए गए हैं। क्योंकि वे जीव के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों में विद्यमान नहीं होते इसीलिए वे असाधारण भाव कहे जाते हैं।

ओवसमिय-खइय-खओवसमिय-ओदइय-पारिणामिगा य।
बे-णव-अट्ठारस-इगवीस-तिण्णि-भेया कमसो दु।।915।।

वे इस प्रकार हैं-औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक। इनके क्रमशः दो, नौ, अट्ठारह, इक्कीस व तीन भेद हैं।

मोहस्स उवसमादो, ओवसमियो सम्मत्तं चरियं च।
सव्वघादीणं उदय-अभावादु देसस्सुदयादु॥916॥
होदि खओवसमियो, चउणाणं अण्णाणं दंसणं च।
पणलद्धीसम्मत्तं, चरियंसंजमासंजमोय॥917॥(जुम्मं)

मोहनीय कर्म के उपशम से औपशमिक सम्यक्त्व व औपशमिक चारित्र होता है। सर्वघाति प्रकृतियों के उदय के अभाव से और देशघाति प्रकृतियों के उदय से क्षायोपशमिक भाव होता है। इसके अट्ठारह भेद इस प्रकार हैं-चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय), तीन अज्ञान (कुमति, कुश्रुत, कुअवधि), तीन दर्शन (चक्षु, अचक्षु, अवधि), पाँचलब्धि, (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र, संयमासंयम।

कम्मक्खयादोहोज्ज,खइयभावोकेवलि-अरिहंतम्मि।
पणलद्धी तह णाणं, दंसणं सम्मत्तं चरियं॥918॥

कर्म के क्षय से पूर्ण क्षायिक भाव अरिहन्त केवली में ही होते हैं। इसके नौ भेद इस प्रकार हैं-पाँच लब्धि (क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य), क्षायिकज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व व चारित्र।

जणंति कम्मुदयादो, ओदइया गदी कसायो लिंगं।
मिच्छ-दंसण-मण्णाण-मसिद्धासंजमो लेस्सा य॥919॥

कर्म के उदय से औदयिक भाव उत्पन्न होते हैं। इसके इक्कीस भेद इस प्रकार हैं-गति (मनुष्य, देव, तिर्यंच,

नारकी), कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), लिङ्ग (स्त्री, पुरुष, नपुंसक), मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असिद्ध, असंयम एवं लेश्या (कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल)।

जाण भावुप्पत्तीइ, कम्माण उदयादीण अवेक्खा ण।
पारिणामिया भव्वत्त-मभव्वत्तं जीवत्तं च॥920॥

जिन भावों की उत्पत्ति में कर्मों के उदय आदि की अपेक्षा नहीं होती, वे पारिणामिक भाव जानने चाहिए। इसके तीन भेद इस प्रकार हैं-जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व।

सव्वजीवेसु णियमा, जीवत्त-भावो दु संविदिदव्वो।
भव्वाभव्वेसु इगो, भावो हि विज्जदे जीवम्मि॥921॥

सभी जीवों में नियम से जीवत्व भाव जानना चाहिए। भव्यत्व व अभव्यत्व में जीव में से एक ही भाव विद्यमान होता है।

रयणत्तयबलेण जो, कम्मक्खयिदुं सक्को भव्वो सो।
इदरो सया अभव्वो, कंखहीणो कम्मक्खयस्स॥922॥

जो रत्नत्रय के बल से कर्म का क्षय करने में समर्थ हैं, वह भव्य हैं। जो इससे इतर है अर्थात् कर्म क्षय करने में असमर्थ हैं, वे अभव्य हैं। अभव्य जीव कर्म क्षय की आकाङ्क्षा से रहित होते हैं।

जैनदर्शन में कर्मवाद

कम्मबद्धजोग्गा कम्मवग्गणारूव - पोग्गलखंधा हु।
जीवस्स वियारि-भाव-णिमित्तं लहिय बंधदि कम्मं॥923॥

जीव के विकारी भावों का निमित्त प्राप्त कर कर्मबन्ध के योग्य कर्मवर्गणा रूप पुद्‌गल स्कन्ध जो जीव के साथ बंधते हैं, वे कर्म हैं।

भवभमणस्स दु हेदू, सुह-दुक्ख-कारणं जम्मादीणं।
कम्मं मुक्खं णेयं, विभावपरिणाम-कारणं पि।।924।।

कर्म संसार परिभ्रमण का, जन्मादि का एवं सुख-दुःख का मुख्य कारण जानना चाहिए। यह जीव के विभाव परिणाम का कारण भी है।

दव्वकम्मस्स दु मूल-भेयो घादी तह अघादी।
जीवस्सदुअणुजीवी-गुण-घादगंघादिकम्मंच।।925।।

द्रव्यकर्म के मूल भेद हैं-घातिया तथा अघातिया। जो जीव के अनुजीवी गुणों के घातक हों, वे घातिया कर्म हैं।

जीवस्स दु पडिजीवी-गुण-घादगं अघादिकम्मं जाण।
अहवा चदुविह-कम्मं, अवि संविदिदव्वं बुहेहिं।।926।।

जो जीव के प्रतिजीवी गुणों के घातक हैं, वे अघातिकर्म जानने चाहिए। अथवा बुधजनों के द्वारा कर्म चार प्रकार के भी जानने चाहिए।

जीव-विवागी पोग्गल-विवागी भव-खेत्त-विवागी तहा।
जीवस्स फलं जीवे, पोग्गलस्स पोग्गले णेया।।927।।

विपाक की अपेक्षा वे चार प्रकार की हैं-जीवविपाकी, पुद्‌गलविपाकी, भवविपाकी तथा क्षेत्रविपाकी। जीवविपाकी

कर्मप्रकृतियों का फल जीव में तथा पुद्गल विपाकी कर्म प्रकृतियों का फल पुद्गल में होता है।

घादी चदुहा णाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं च।
मोहणिज्जं च विग्घं, सव्वा पावपइडी णेया॥928॥

घातिया कर्म चार प्रकार का है—ज्ञानावरणीय, दर्शना-वरणीय, मोहनीय व अन्तराय। ये सभी पाप प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

णाणावरणं पणहा, णवहा तहा दंसणावरणिज्जं।
मोहं च अट्ठवीसा, विग्घं पणहा दु भवहेदू॥929॥

ज्ञानावरणी कर्म पाँच प्रकार का, दर्शनावरणी कर्म नौ प्रकार का, मोहनीय कर्म अट्ठाईस प्रकार का और अन्तराय कर्म पाँच प्रकार का है। यह संसार का कारण है।

अघादी अवि चदुविहा, वेयणीय-माउं णामं गोदं।
कमसो संविदिदव्वा, बे-चदु-तिणवदि-बे-भेया य॥930॥

अघातिया कर्म भी चार प्रकार का है-वेदनीय, आयु, नाम व गोत्र। इनके क्रमशः दो, चार, तेरानवें और दो भेद जानने चाहिए।

सादा वेयणीयं तिआउ-मुच्चगोदं दु आणुपुव्वी।
बे गदी एगजादी, संठाणं एग-संघडणं॥931॥

ति-अंगोवंगाणि परघादं चिय पसत्थ-विहाओगदी।
तस-बादर-पज्जत्तादेय-सुह-सुभग-जसकिती य॥932॥

पत्तेयं सुस्सर-थिर-अगुरुलहू उस्सासो तित्थयरो।
णिम्माणं उज्जोदो, आदवो य बीस-फासादी॥933॥

अट्ठसट्ठी पसत्थप्पइडी सेसा य सय-पावपइडी।
वीसफासादी सुहा, पुण्णपइडी असुहा पावा॥934॥ (चउक्कं)

साता वेदनीय, तीन आयु (नरकायु बिना), उच्चगोत्र, आनुपूर्वी, दो गति (देव व मनुष्य) एक जाति, एक संस्थान, एक संहनन, तीन अङ्गोपाङ्ग, परघात, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, सुख, सुभग, यशःकीर्ति, प्रत्येक, सुस्वर, स्थिर, अगुरुलघु, श्वासोच्छ्वास, तीर्थङ्कर, निर्माण, उद्योत, आतप व बीस स्पर्शादि।

इस प्रकार प्रशस्त वा पुण्य प्रकृतियाँ अड़सठ हैं एवं शेष सौ पाप प्रकृतियाँ हैं। बीस स्पर्शादि यदि शुभ रूप हैं तो पुण्य प्रकृति एवं अशुभ रूप हैं तो पाप प्रकृति हैं।

आणुपुव्वी चिय खेत्त-विवागी चदुआउं भवविवागी।
घादीयवेयणीयं,गदि-जादि-उस्सास-विहाओगदी॥935॥

तस-बादर-पज्जत्ती, सुभग-सुस्सरादेय-जसो इदरो।
तित्थयरो बेगोदं, मुणेदव्वं जीव-विवागी॥936॥ (जुम्मं)

चार आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी हैं और चार आयु भव विपाकी हैं। घातिया कर्म, वेदनीय, गति, जाति, श्वासोच्छ्वास, विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्ति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश, इतर अर्थात् स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, दुर्भग, दुःस्वर,

अनादेय, अयशकीर्ति, तीर्थङ्कर, उच्च व नीचगोत्र ये जीव विपाकी जाननी चाहिए।

दो-ऊण-असीदी चिय, जीवविवागी पइडी णाणीहिं।
सेसा सव्वा पोग्गल-विवागी चिय संविदिदव्वा।।937।।

ज्ञानीजनों को जीवविपाकी प्रकृतियाँ अठत्तर एवं (चार आयु, चार गत्यानुपूर्वी छोड़कर) शेष सभी पुद्‌गलविपाकी जाननी चाहिए।

णिमित्तं बंधिदुं जे, कम्मं रागाइ-वियारी भावा।
ते सव्व-भावकम्मं, णेयं मूलहेदू भवस्स।।938।।

जो रागादि विकारी भाव कर्मबन्ध में निमित्त हैं वे सभी भावकर्म जानने चाहिए। वह संसार का मूल कारण है।

जह तिव्वाइभावेहि, कम्मं बंधेदि दु उदययालम्मि।
तहेव कम्मफलाइं, भुंजेदि जीवो णियमेणं।।939।।

जिस प्रकार के तीव्र आदि भावों से जीव कर्म का बन्ध करता है, वह नियम से वैसे ही कर्म का फल भोगता है।

सग-अज्जिद-कम्माणं, फलाणि भुंजदि पत्तेयं जीवो।
मम एगकम्मफलं पि, अण्णो णो भुंजिदुं सक्को।।940।।

प्रत्येक जीव अपने अर्जित कर्मों का फल स्वयं ही भोगता है। मेरे एक भी कर्म का फल अन्य जीव भोगने में समर्थ नहीं है।

परजीवेहिं अज्जिद-कम्मफलं परजणा हि भुंजंते।
हं णो भोत्तुं सक्को, अण्णस्स कम्मफलं कया वि।।941।।

पर जीवों के द्वारा अर्जित कर्मों का फल पर जीव ही भोगते हैं। मैं अन्य के कर्म का फल भोगने में कदापि भी शक्य नहीं हूँ।

एगकम्मस्स फलं दु, एगवारं चिय भुंजेदि जीवो।
एगकम्मं कया वि ण, फलदे बे वारगो कत्थ वि।।942।।

जीव एक कर्म का फल एक बार ही भोगता है। एक कर्म कभी भी कहीं भी दो बार फलित नहीं होता।

कम्मसिद्धंतो हु अदि-पुट्ठो तहा अच्चंतणायपियो।
जह तह कुव्वदि भावं, बंधदि कम्मं लहेदि फलं।।943।।

कर्मसिद्धान्त अति स्पष्ट तथा अत्यन्त न्यायप्रिय है। जीव जैसे भाव करता है, उसी प्रकार के कर्म का बन्ध करता है और वैसा ही फल प्राप्त करता है।

को वि जीवो णो कस्स, देदि सुहं दुहं मण्णेदि जइणं।
सव्वा भुंजंति सया, चिय सग-सग-कम्माण फलं।।944।।

जैन दर्शन मानता है कि कोई भी जीव किसी को सुख-दु:ख नहीं देता। सभी जीव सदैव अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं।

कम्मेसुं णट्ठेसुं, परमसुद्धो जीवप्पा कणगं व।
जह अणलेणं कणगं, तह तवज्झाणेहिं अप्पा।।945।।

कर्मों के नष्ट होने पर जीवात्मा स्वर्ण के समान परमशुद्ध हो जाता है। जिस प्रकार स्वर्ण अग्नि से शुद्ध होता है वैसे ही आत्मा तप व ध्यान से शुद्ध होती है।

णासित्तु सव्वकम्मं, जो को वि भव्वो लहदि णिव्वाणं।
सोवसदि सिद्धखेत्ते, णेव पुण आगच्छदि भवम्मि।।946।।

जो कोई भी भव्यजीव सर्वकर्मों का नाश कर निर्वाण प्राप्त करता है वह सिद्धक्षेत्र (सिद्धालय) में वास करता है और पुनः संसार में कभी नहीं आता।

अनेकान्त

जस्स सुहुमदिट्ठीए, दिट्ठिगोयरा अणेगधम्मा तं।
वत्थुम्मि विज्जमाणा, णमामि अणुवममणेगंतं।।947।।

मैं उस अनुपम अनेकान्त धर्म की स्तुति करता हूँ, जिसकी सूक्ष्मदृष्टि से वस्तु में विद्यमान अनेक धर्म दृष्टिगोचर होते हैं।

पत्तेयं पदत्थम्मि, अणेगधम्मा सव्वदा सव्वत्थ।
अणेगधम्मविरहिदं, णेव कं पि वत्थुं विस्सम्मि।।948।।

जह अत्थो सदासदो, णिच्चमणिच्चं भेयाभेयो तह।
खंडाखंडो य दिट्ठिगोयरादिट्ठिगोयरो अवि।।949।।

सुहुमो थूलो दूरो, णिअडो चराचरो दइदद्दइदो।
मुत्तामुत्तो सहाव-विहावजुदो सुद्धासुद्धो।।950।।

अप्पदेसी पदेसी, णेयण्णेयो अणुभवगम्मिदरो।
छउमत्थजीवेहि णो, सम्भवो सव्वधम्मणाणं॥951॥ (चउक्कं)

प्रत्येक पदार्थ में सर्वदा और सर्वत्र अनेक धर्म विद्यमान हैं। विश्व में कोई भी वस्तु अनेक धर्मों से रहित नहीं है। जैसे पदार्थ सत्-असत्, नित्य-अनित्य, भेद-अभेद, खण्ड-अखण्ड, दृष्टिगोचर-अदृष्टिगोचर, सूक्ष्म-स्थूल, दूर-निकट, चर-अचर, द्वैत-अद्वैत, मुक्त-अमुक्त, स्वभाव-युक्त-विभावयुक्त, शुद्ध-अशुद्ध, अप्रदेशी-प्रदेशी, ज्ञेय-अज्ञेय, अनुभवगम्य-अनुभव- अगम्य भी है। किन्तु छद्मस्थ जीवों के द्वारा सभी धर्मों का ज्ञान सम्भव नहीं है।

वत्थूण पुण्ण-धम्मं, विणा अणेगंतालंबणेणं दु।
जाणिदुं णो समत्थो, को वि चिय जीवुल्लो कया वि॥952॥

कोई भी जीव अनेकान्त के आलम्बन के बिना वस्तुओं के पूर्ण धर्म को जानने में कदापि समर्थ नहीं है।

अणेगंतेणं विणा णो, को वि सक्को णादुं जहत्थं।
गहणीयो अणेगंत-धम्मो णाणीजणेहिं तं॥953॥

अनेकान्त के बिना कोई भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने में समर्थ नहीं है। अतः ज्ञानीजनों के द्वारा अनेकान्त धर्म ग्राह्य है।

अणेगंत-मक्कं हं, परियंदामि सवरहिदत्थं जस्स।
उदयादु लहदि जीवो, सवरपयासगं सण्णाणं॥954॥

उस अनेकान्त रूपी सूर्य को मैं स्वपरहित के लिए नमस्कार करता हूँ, जिसके उदय से जीव स्वपर प्रकाशक सम्यग्ज्ञान प्राप्त करता है।

चेयणं विणा जीवो, पवणेणं विणा आणपाणो तह।
उण्हत्तं अग्गी जह, णीरं विणा सीयलत्तेण॥955॥

खं विणा अवगाहणं, धम्मेणं गमण-मधम्मेण ठिदी।
कालेण वट्टणं तह, पमाणणाण-मणेगंतेण॥956॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार चेतना के बिना जीव, पवन के बिना श्वासोच्छ्वास, ऊष्णता के बिना अग्नि, शीतलता के बिना नीर, आकाश के बिना अवगाहना, धर्मद्रव्य के बिना गमन, अधर्मद्रव्य के बिना स्थिति व कालद्रव्य के बिना वर्तना सम्भव नहीं है उसी प्रकार अनेकान्त के बिना प्रमाण ज्ञान सम्भव नहीं है।

जोगी अट्ठकम्माणि, जयदि अणेगंतधम्म-चक्केणं।
जह तह चक्की जयदे, छक्खंडं चक्करयणेणं॥957॥

अनेकान्त रूपी धर्मचक्र के द्वारा योगी अष्टकर्मों पर वैसे ही विजय प्राप्त करता है जैसे चक्रवर्ती चक्ररत्न से छह खण्डों पर विजय प्राप्त करता है।

तमच्छिण्णं पि विसाल-भवणं विणा दीवाइ-पयासेण।
णाणं अवि णिरत्थगं, अणेगंतदीववज्जिदं दु॥958॥

जिस प्रकार दीपक आदि के प्रकाश के बिना विशाल भवन भी अन्धकारमय होता है, उसी प्रकार अनेकांत रूपी दीपक से रहित ज्ञान भी निरर्थक होता है।

सव्वपइडीसु पहाण-तित्थयरो धम्मपवट्टगेसु जह।
तह अणेगंत-धम्मो, विस्सस्स दु सव्वधम्मेसुं॥959॥

जिस प्रकार धर्मप्रवर्तक-तीर्थङ्करों में सभी प्रकृतियों में तीर्थंकर प्रकृति प्रधान होती है उसी प्रकार विश्व के सभी धर्मों में अनेकान्त धर्म प्रधान है।

अणेग-धम्मजुदं पत्तेयं वत्थुं सहावेण लोए।
किण्णु णो सव्वधम्मं, कहिदुं समत्थो छउमत्थो॥960॥

लोक में प्रत्येक वस्तु स्वभाव से अनेक धर्मों से युक्त है, किन्तु छद्मस्थ जीव सभी धर्मों को कहने में समर्थ नहीं है।

पव्वदसिहरे णिम्मिद-मंदिरं गमिदु-मणेगलहुमग्गा।
सम्भवा किण्णु जीवो, समयेगे गच्छदि एगेण॥961॥

जह तह सिआवाओ दु, पुण्ण-धम्मं जाणिदुं सक्कंतो।
वत्थुस्सएगसमयेसक्कदि हि कहिदुमेग-धम्मं॥962॥ (जुम्मं)

जैसे पर्वत के शिखर पर निर्मित मन्दिर में जाने के लिए अनेक लघु मार्ग सम्भव हैं किन्तु जीव एक समय में एक ही मार्ग से जा सकता है। उसी प्रकार स्याद्वाद पूर्ण धर्म को जानने में समर्थ होता हुआ भी एक समय में वस्तु के एक धर्म को ही कहने में समर्थ होता है।

एगावेक्खाए जो, धम्मो खलु भासदे पुण्णसच्चं।
विदियावेक्खाए पुण, सक्को पुण्णं असच्चं अवि॥963॥

एक किसी अपेक्षा से जो धर्म पूर्ण सत्य प्रतिभासित होता है, वही दूसरे धर्म की अपेक्षा से पूर्ण असत्य भी सम्भव है।

सावेक्खवयणं सम्म-अवेक्खाजुद-वयणं सियावायो।
सव्वविवादणासगो, सण्णाणपयासगो णिच्चं।।964।।

सापेक्ष वचन वा सम्यक् अपेक्षा से युक्त वचन स्याद्वाद है। यह स्याद्वाद नित्य ही सर्व विवाद का नाशक और सम्यग्ज्ञान का प्रकाशक है।

सिआवायो हु सम्मं, कहणविही जाण जहत्थ-णाणस्स।
वत्थूणं विज्जेदि हु, सव्वत्थ सया खे दव्वोव्व।।965।।

सम्यक् कथन विधि स्याद्वाद जाननी चाहिए। वस्तुओं के यथार्थज्ञान के लिए यह सर्वत्र व सर्वदा उस प्रकार विद्यमान रहती है जैसे आकाश में द्रव्य।

जहा रसालो मिट्ठो, अंबो मिस्सो हरिदो पीदो वा।
णिद्धं च लुक्खं लहू, गुरू मिदू कढोरो आहो।।966।।

रसाल-मिट्ठो अंबो, मिस्सो अहवा सादावेक्खाए।
पुण वण्णावेक्खाए, हरिदो दु पीदादी अहवा।।967।।

फासवेक्खाइ णिद्धं, लुक्खं लहू-गुरू मिदू कढोरो।
सव्ववयणंहि सच्चं, सावेक्ख-मिमो सिआवायो।।968।।(तिगं)

जैसे आम मीठा, खट्टा, मिश्र वा हरा-पीला वा स्निग्ध रूक्ष वा छोटा-बड़ा या मृदु-कठोर है। आम स्वाद की अपेक्षा से मीठा, खट्टा या खट्टा मीठा होता है। पुनः वर्ण की अपेक्षा हरा अथवा पीला आदि होता है। स्पर्श की अपेक्षा से आम रूखा-चिकना, छोटा-बड़ा, मृदु या कठोर है। सापेक्ष सर्ववचन ही सत्य है, यही स्याद्वाद है।

जो को वि चिय वण्णेदि, वत्थु-मवेक्खाए जाए जाए।
सव्वसावेक्खवयणं, जहत्थं मण्णदि सय णाण॥969॥

जो कोई भी जिस-जिस अपेक्षा से वस्तु का वर्णन करता है वे सभी सापेक्ष वचन हैं। ज्ञानीजन उन्हें सदा यथार्थ मानते हैं।

अण्ण-सावेक्ख-वयणं, णो कयावि विरोहदि सिआवायो।
परकहण-विरोहगो दु, णेव जाणेदि सिआवायं॥970॥

स्याद्वाद कभी भी अन्य सापेक्ष वचन का विरोध नहीं करता। जो दूसरे के कथन का विरोध करता है, वह स्याद्वाद को नहीं जानता।

एयरायस्स आसी, जम्मंधा छपुत्ता पावुदयेण।
कंखजुदा सव्वा ते, हत्थिदंसणस्स जाणणस्स॥971॥

एक बार पापोदय से एक राजा के जन्म से अन्धे छह पुत्र थे। वे सभी हाथी को देखने, उसको जानने की इच्छा से युक्त थे।

केरिसो दु गयो पसू, तत्थ कोउगेण गच्छीअ सव्वा।
सुंडं फासिय पढमो, आइक्खीअ सो तुरिअं व॥972॥

एक दिन 'वह गज पशु कैसा है' इस तरह कौतूहलवश वे सभी गए। प्रथम पुत्र ने हाथी की सूण्ड को छूकर कहा कि वह निश्चय से तूर्य की तरह है।

विसालमुदरं फरिसिय, विदिय-पुत्तेणं तदा वज्जरिदं।
णेव तुरिअं व हत्थी, भित्ती व जाण णिच्छयेणं॥973॥

तब द्वितीय पुत्र ने हाथी के विशाल उदर को स्पर्श करके कहा हाथी तूर्य के समान नहीं है। वह निश्चय ही दीवार के समान जानो।

गयपादं आमुसित्तु, आअक्खिदं तिदिय-अंधपुत्तेण।
ण तुरिअं व ण भित्तीव, णिच्छयेण हवेदि थंभोव्व॥974॥

पुनः तृतीय अन्धे पुत्र ने हाथी के पैर को स्पर्श कर कहा कि हाथी न तो तूर्य के समान है न दीवार के समान है, वह निश्चय से स्तंभ के समान है।

कण्णं आलिहदूणं, उप्पालिदं चदुत्थंधपुत्तेण।
ण तुरिअ-भित्ति-थंभोव्व, णिच्छयेण हवेदि विअणोव्व॥975॥

पुनः चौथे अन्धे पुत्र ने हाथी के कान को छूकर कहा कि हाथी न तो तूर्य के समान है न दीवार के समान है और न ही स्तम्भ के समान है, वह निश्चय से बीजने (पङ्खे) के समान होता है।

दंतं पम्हुसदूणं, पंचमपुत्तेण कहिदं सूलोव्व।
णो तुरिअं व भित्तीव, णो थंभोव्व णेव विअणोव्व॥976॥

पुनः पाँचवे पुत्र ने हाथी का दाँत छूकर कहा कि हाथी न तूर्य की तरह होता है, न दीवार की तरह होता है, न स्तम्भ की तरह होता है और न पङ्खे की तरह होता है, वह शूल की तरह होता है।

लंगूलं आलुंखिय, रज्जुव्व सीसिदं छट्ठमंधेण।
ण तुरिय-भित्ति-थंभोव्व, णो विअणोव्व णेव सूलोव्व।।977।।

पुनः छठे अन्धे पुत्र ने हाथी की पूँछ छूकर कहा कि वह न तूर्य, न दीवार, न स्तम्भ, न पङ्खे और न शूल की तरह होता है वह तो रस्सी की तरह होता है।

अंधादु ते ण सक्का, विआणिदुं गयं जं गयोव्व गयो।
तेहिं सच्चं वदिदं, सव्वंगा हत्थिअंगादो।।978।।

पुनः सखा बोला कि वे अन्धे होने के कारण हाथी को जानने में समर्थ नहीं थे, जबकि हाथी तो हाथी के समान ही होता है, तब महामात्य ने कहा कि सभी अङ्ग हाथी के अङ्ग होने से, वे सभी सच कह रहे थे।

सिआवाओ दु णेयो, वत्थुसरूवकहणविही सम्मेण।
एगवत्थुम्मि बहुआ, धम्मा विज्जंति णियमेणं।।979।।

सम्यक् रूप से वस्तु स्वरूप के कहने की विधि स्याद्वाद जानना चाहिए। नियम से एक वस्तु में बहुत धर्म विद्यमान होते हैं।

सम्भवा दु अत्थि-णत्थि-आइ-रूवेणं विवरीय-धम्मा।
णयेहि ताण सम्भवो, वण्णाण-मप्पिदणप्पिदेहि।।980।।

वस्तु में अस्ति, नास्ति आदि रूप से विपरीत धर्म सम्भव हैं। उन सभी धर्मों का वर्णन अर्पित व अनर्पित रूप से नयों के द्वारा सम्भव है।

अंसं ण पुण्णणाणं, भण्णेदि सिआवायजुदो इत्थं।
कंपिसावेक्ख-णाणं,णेवबोहदि मिच्छाकयावि।।981।।

इस प्रकार स्याद्वाद से युक्त पुरुष अंश ज्ञान को पूर्णज्ञान नहीं कहता एवं किसी भी सापेक्ष ज्ञान को कदापि मिथ्या नहीं समझता।

सत्तभंगा पसिद्धा, जिणदंसणे चिय अणाइणिहणम्मि।
पदत्थाणं च जहत्थ-णाणं च ओग्गहिदुं सया हि।।982।।

पदार्थों के यथार्थ ज्ञान को ग्रहण करने के लिए अनादिनिधन जिनदर्शन में सप्तभङ्ग सदा ही प्रसिद्ध हैं।

पत्तेयं वत्थु-मत्थि-रूवं विज्जदि सदवेक्खाइ जगे।
जह घड-पड-पव्वयाय,सिंधू रुक्खो सुर-णरादी983।।

सत् अपेक्षा से इस संसार में प्रत्येक वस्तु अस्ति रूप है जैसे-घट, पट, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, देव, मनुष्यादि।

जहवि सदावेक्खाए, जं वत्थुं खलु विज्जदे लोयम्मि।
तहवि तम्मि दु सम्भवा,सद-अदिरित्त-अणेग-धम्मा।।984।।

यद्यपि सत् की अपेक्षा से वस्तु लोक में विद्यमान है, तथापि उसमें सत् के अतिरिक्त अनेक धर्म भी सम्भव हैं।

असदावेक्खाए वा, णत्थिरूव-मण्णवत्थु-अवेक्खाइ।
सो हि जाणेज्जा सया, जइणदंसणे णत्थि-धम्मो।।985।।

असत् की अपेक्षा अथवा अन्य वस्तु की अपेक्षा वह वस्तु नास्ति रूप है। वह ही जैनदर्शन में सदा नास्ति धर्म जानना चाहिए।

जह घडावेक्खाइ सो, पडो णत्थि पडावेक्खाइ घडो ण।
सेलवेक्खाइ सिंधू, णो सायरवेक्खाइ सेलो।।986।।

जैसे घट की अपेक्षा वह पट (कपड़ा) नहीं है और पट की अपेक्षा वह घट नहीं है। पर्वत की अपेक्षा वह सागर नहीं है और सागर की अपेक्षा पर्वत नहीं है।

सगचदुट्ठयादु सदो, परचदुट्ठयादो य असदो एव।
पत्तेयं वत्थुं इग-समये अत्थि णत्थि इत्थं दु।।987।।

प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टय की अपेक्षा सत् है एवं परचतुष्टय की अपेक्षा असत् है। इस प्रकार वह एक समय में अस्ति, नास्ति रूप है।

मिहो विरोही पूरग-अणेगधम्मा विज्जंति वत्थुम्मि।
अत्थिणत्थिधम्मो अवि, सावेक्खाइ दिट्ठिगोयरा।।988।।

प्रत्येक वस्तु में परस्पर में विरोधी किन्तु एक-दूसरे के पूरक अनेक धर्म विद्यमान होते हैं जिससे अस्ति-नास्ति धर्म सापेक्ष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

घडो सदावेक्खाए, अत्थि तहा पडावेक्खाए णत्थि।
अत्थि-णत्थि-अवेक्खाइ, सम्भवो दु वत्थु-कहणं अवि।।989।।

घट सत् की अपेक्षा से है तथा पट की अपेक्षा नहीं है। अस्ति-नास्ति अपेक्षा से भी वस्तु का कथन सम्भव है।

जइणमदे हि सम्भवो, मेत्तं अवत्तव्वं कहण-विही दु।
वत्थुपुण्णधम्मकहण-मसम्भवो समयेगम्मि जं।।990।।

अवक्तव्य कथन विधि मात्र जैनमत में ही सम्भव है। क्योंकि एक समय में वस्तु के पूर्ण धर्म का कथन असम्भव है।

घडे धम्मणेगा वा, पत्तेयं वत्थुम्मि धम्मणेगा।
ण सम्भवो समयेगे, ताण कहण-मवत्तव्वं तं।।991।।

घट में अनेक धर्म विद्यमान हैं वा प्रत्येक वस्तु में अनेक धर्म विद्यमान हैं। एक समय में उनका कहना सम्भव नहीं है, अतः अवक्तव्य है।

घडे सदरूव-अणेग-धम्मा विज्जंते तहवि ताणं दु।
कहणं समयेगे णो, सम्भवो अत्थि-अवत्तव्वं।।992।।

घट में सत् रूप अनेक धर्म विद्यमान हैं तथापि एक समय में उनका कथन सम्भव नहीं है, यह अस्ति अवक्तव्य है।

पत्तेयं वत्थुम्मि दु, णत्थि-रूवा तहा अणंतधम्मा।
तहवि ताण धम्माणं, कहण-मसम्भवो समयेगे।।993।।

प्रत्येक वस्तु में परचतुष्टय की अपेक्षा से नास्ति रूप अनन्त धर्म विद्यमान हैं; तथापि उन सभी धर्मों का एक समय में कहना असम्भव है, यह नास्ति अवक्तव्य है।

पत्तेयं वत्थुम्मि दु, अणंता अत्थिरूवधम्मा सया।
तम्मि वत्थुम्मि तदा य, अणंता णत्थिरूवधम्मा।।994।।

प्रत्येक वस्तु में अनन्त अस्ति रूप धर्म सदा विद्यमान हैं उस वस्तु में तब अनन्त नास्ति रूप धर्म भी विद्यमान हैं।

समयेगे वत्थुम्मि दु, अणंता अत्थि-णत्थि-रूव-धम्मा।
ताण कहण-मसम्भवो, अत्थिणत्थि-अवत्तव्वं तं॥995॥

वस्तु में अनन्त अस्ति-नास्ति रूप धर्म विद्यमान हैं। किन्तु उन सबका कथन एक समय में सम्भव नहीं है। अतः अस्ति-नास्ति- अवक्तव्य है।

विज्जंताविज्जंता, सव्वधम्मा कहिदुं जहत्थविही।
वत्थुम्मि मुणेदव्वो, सिद्धंतो दु सिआवायस्स॥996॥

वस्तु में विद्यमान व अविद्यमान सभी धर्मों को कहने की यथार्थ विधि ही स्याद्वाद का सिद्धान्त जानना चाहिए।

सिआवायं विणा तह, कहिदुं समत्थो वत्थुसरूवं ण।
को अवि जह णयणेहिं, विणा वत्थुं पस्सिदुं णेव॥997॥

कोई भी व्यक्ति स्याद्वाद के बिना वस्तु के स्वरूप को कहने में समर्थ वैसे हीं नहीं है, जैसे व्यक्ति नेत्रों के बिना वस्तु देखने में समर्थ नहीं होता।

विविहेहिं दिट्ठीहिं, वत्थुस्स सरूवं दिस्सदि विविहं।
दिट्ठि-परिवट्टणेणं, दिट्ठिकोणं पि परिवट्टेदि॥998॥

विविध दृष्टियों से वस्तु का स्वरूप विविध दिखाई देता है। दृष्टि के परिवर्तन से दृष्टिकोण भी बदल जाता है।

सिआवायो दु णेयो, पमाणिगविही सय सिआ-कहणस्स।
भवणस्स विविह-दिसाइ, ओग्गहिदं छायाचित्तं व॥999॥

स्यात् (कथञ्चित्) कहने की प्रमाणिक विधि स्याद्वाद जानना चाहिए। जैसे—भवन के विभिन्न दिशाओं से लिए गए छायाचित्र।

सिट्ठी अणाइणिहणा, अकिट्टिमा सहावेण संजादा।
णिच्चा तहा समिद्धा, जीवाजीवदव्वेहिं खलु।।1000।।

यह सृष्टि अनादिनिधन, अकृत्रिम, स्वभाव से उत्पन्न, जीव व अजीव द्रव्यों से व्याप्त और नित्य है।

अप्प-सुद्धावस्था य, हीणा दव्वभावणोकम्मादो।
मोक्खो जम्ममरणाइ-सव्वदोसवज्जिदो णेयो।।1001।।

द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्म से हीन आत्मा की शुद्धावस्था मोक्ष जानना चाहिए। यह जन्म-मरणादि सभी दोषों से वर्जित है।

ववहारेणं सद्दंसणणाण-चरित्ताणि मोक्खमग्गो।
तत्तियमइयो अप्पा, कम्मं खयिय पावदि मोक्खं।।1002।।

व्यवहार से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग है। और निश्चय से इन तीनों रूप परिणत आत्मा कर्म क्षयकर मोक्ष प्राप्त करता है।

आस्तिक-नास्तिक विचार

जो ईसर-अत्थित्तं, मण्णेदि तं ण सिट्ठि कत्ता किण्णु।
सो जहत्थ-अत्थिगो दु, जं सिट्ठी ण रयिदा केणं।।1003।।

जो ईश्वर के अस्तित्व को जानता है किन्तु उनको सृष्टि का कर्ता नहीं मानता वह यथार्थ आस्तिक है, क्योंकि सृष्टि किसी के द्वारा भी नहीं रची गई।

णत्थिगो हंदि ईसर-अत्थित्त-अगाहगो चिय किण्णु जो।
ईसरोअविसिट्ठि-कत्ता,मण्णेदि सोअवि णत्थिगो दु॥1004॥

जो ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, वह तो नास्तिक है ही किन्तु जो ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानता है, वह भी नास्तिक है।

जीवाइ-छद्दव्वेसु, सद्दहदि मण्णदि भवभमणं तस्स।
हेदू कम्माइं तह, मोक्खं चिय अत्थिगो जो सो॥1005॥

जो जीवदि छह द्रव्यों में श्रद्धान करता है। भवभ्रमण मानता है। उस भवभ्रमण के निमित्तभूत कर्मों को और मोक्ष को मानता है, वह आस्तिक है।

मण्णदि पुण्णं पावं, जीवस्स सुद्धासुद्धावत्थं पि।
सुहं दुहं ईसरस्स, अत्थित्तेण सह सत्थित्तं॥1006॥

सुहं दुक्खं पप्पोदि, सग-सग-कम्माणुसारेण जो सो।
ईसरोणेवकता,सिट्ठीए मण्णदि अत्थिगो॥1007॥(जुम्मं)

जो पुण्य, पाप, सुख, दुःख को मानता है। जीव की शुद्ध व अशुद्ध अवस्था को मानता है एवं ईश्वर के अस्तित्व के साथ स्व-अस्तित्व को भी स्वीकार करता है। जो मानता है कि जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख प्राप्त करते हैं एवं ईश्वर सृष्टि का कर्ता नहीं है, वह आस्तिक है।

मम कम्मफलं ण को वि, भुंजिदुं सक्को अण्ण-संसारी।
अण्णस्स कम्मफलं च, णेव समत्थो हं पि तहेव॥1008॥

जो मानता है कि मेरे कर्म का फल अन्य कोई भी संसारी जीव भोगने में शक्य नहीं है और उसी प्रकार अन्य के कर्मों का फल भोगने में मैं भी समर्थ नहीं हूँ, वह आस्तिक है।

अत्थिगो विस्सस्सेदि, णिय-अत्थित्ते अवि धम्मे मोक्खे।
तव्विवरीय-णत्थिगो, मण्णेज्ज दु दीहसंसारी॥1009॥

जो अपने अस्तित्व में, धर्म व मोक्ष में विश्वास करता है, वह आस्तिक है। इससे विपरीत दीर्घसंसारी नास्तिक मानना चाहिए।

णत्थिगो मण्णदि णेव, अणेगंतं सिआवायं णयं च।
णाणाभासमदेणं, पच्चक्ख-परोक्ख-पमाणं पि॥1010॥

नास्तिक अनेकान्त ,स्याद्वाद और नय को नहीं मानता। एवं ज्ञानाभास के अहङ्कार से प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाण को भी नहीं मानता।

अत्थिग-णत्थिग-उहयो, विज्जंति इह वरं णाणमदेणं।
पराण कहदि णत्थिगो, सो कहं दु अत्थिगो सयं पि॥1011॥

इस लोक में आस्तिक व नास्तिक दोनों विद्यमान हैं किन्तु जो ज्ञान के अहङ्कार से दूसरों को नास्तिक कहते हैं, वे स्वयं भी आस्तिक कैसे हो सकते हैं?

पराण कहण-मेत्तेण, णेव अत्थिगो वा णत्थिगो को वि।
उत्तलक्खणजुद-अत्थिगो विहीणो णत्थिगो जाण॥1012॥

दूसरों के कहने मात्र से कोई आस्तिक नहीं हो जाता और कोई नास्तिक भी नहीं हो जाता। उक्त लक्षणों से युक्त आस्तिक और उक्त लक्षणों से रहित नास्तिक जानना चाहिए।

उपसंहार

णिय-मदाहिमाणेणं, डज्झंत-एगंतवादी लोए।
सण्णाणक्कपयासं, विणा भमंति अण्णाणतमे।।1013।।

लोक में अपने मद के अभिमान से जलते हुए एकान्तवादी जन सम्यग्ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश के बिना अज्ञान रूपी अन्धकार में भ्रमित हो रहे हैं।

अणेगंत-सायरम्मि, समाविट्ठा एगंत-बहु-सरिदा।
णो अणेगंत-सिंधू, भिण्ण-भिण्ण-एगंत-णदीसु।।1014।।

अनेकान्त रूपी सागर में एकान्त रूपी बहुत नदियाँ समाविष्ट हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न एकान्त रूपी नदियों में अनेकान्त रूपी सागर दृष्टिगोचर नहीं होता।

अणेगंत-बलवंतो, तेण सह सव्वकहणं अविरुद्धं।
अणेगंतेणं विणा, सव्वकहणं तहा विरुद्धं।।1015।।

अनेकान्त बलवान् है। उस अनेकान्त के साथ सर्व कथन अविरुद्ध होते हैं और अनेकान्त के बिना सर्व कथन विरुद्ध हो जाता है।

वत्ताहिप्पायेणं, भिण्णत्थपरूवणं छलं किण्णु ण।
मुक्खगोणेहि अणेग-धम्म-पडिपादगणेगंतो।।1016।।

यदि कोई अनेकान्त को छल कहते हैं तब आचार्य भगवन् कहते हैं कि वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ

की प्ररूपणा करना छल है, किन्तु मुख्य-गौण व्यवस्था से सम्भव अनेक धर्मों का प्रतिपादक अनेकान्त छल नहीं है।

णय-पमाण-जुत्तिजुत्त-णाणं सक्कं पदंसिदुं सुपहं।
तं जहत्थणाणं अवि, देदि सय अणेगंत-धम्मो॥1017॥

नय, प्रमाण व युक्तियुक्त ज्ञान ही सम्यक् पथ प्रदर्शित करने में शक्य है। वह यथार्थज्ञान भी सदा अनेकान्त धर्म देता है।

जीविदासारहिदाण, एगंतविसडंसिदाण-णादी दु।
अणेगंतधम्मो, सव्वण्हुकहिदो संजीवणीव॥1018॥

अनादिकाल से एकान्त रूपी विष से डसे हुए, जीवन की आशा से रहित जीवों के लिए सर्वज्ञ द्वारा कहा गया अनेकान्त धर्म संजीवनी के समान है।

अणेगंतरूवमहुरजलं विणा सव्वेगंतंबरसं।
समिदुं णाणपिवासं, ण सक्कं देदु-मप्पसंतिं॥1019॥

अनेकान्त रूपी मधुर जल के बिना सभी एकान्त अम्ल रस के समान हैं। अनेकान्त रूपी मधुर जल के बिना ज्ञान की पिपासा शमन करने एवं आत्मशान्ति को देने में कोई भी शक्य नहीं है।

अणेगंतेगगयस्स, अणेगेगंत - भमरा समत्था हु।
णेव कुव्विदुमणिट्ठं, विरोहो असंभवो जइणे॥1020॥

अनेक एकान्त भ्रमर के समान हैं एवं अनेकान्त एक गजराज के समान है। अनेक एकान्त भी अनेकान्त का

अनिष्ट करने में समर्थ नहीं हैं। एकान्तवादियों के द्वारा जैनों में विरोध असम्भव है।

चक्केगेण जह जयदि, बत्तीससहस्सभूवदी चक्की।
सुरिंदो देवसंखा सासेदि तह अणेगंतो वि॥1021॥

जैसे एक चक्रवर्ती एक चक्र से बत्तीस हजार राजाओं को जीतता है एवं सौधर्मेन्द्र असंख्यात देवों पर शासन करता है, उसी प्रकार एक अनेकान्त भी अनेक एकान्तों को जीतता है एवं एकान्तों पर शासन करता है।

(छन्द इन्द्रवज्रा)

जेणं सिआवाय-सुदंसणेणं, सव्वा पराभूद-एगंतवादी।
सच्चं सुधम्मं च पयासदे सो, णिच्चं अणेगंत-उसो जयेदु॥1022॥

जिस स्याद्वाद रूपी सुदर्शन चक्र से सभी एकान्तवादी हराए गए। जो सत्य व सम्यक् धर्म को नित्य प्रकाशित करता है, वह अनेकान्त धर्म जयवन्त होवे।

वरजीवणं जीविदुं, णायो वि आवसियो सिद्धंतोव्व।
असिद्धंतो णिप्फलो, णायविहीणो पहभट्टो य॥1023॥

श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए न्याय भी सिद्धान्त के समान आवश्यक है। जो सिद्धान्त से रहित हैं उनका जीवन निष्फल है और जो न्याय से विहीन हैं, वे पथभ्रष्ट हैं।

सुहणीदी महच्च-मज्झप्पं, वागरणं जुत्ती वि किण्णु।
णेवणाय-माहप्पं, णूणं हंदि कत्थ वि कया वि॥1024॥

अच्छी नीति, अध्यात्म, व्याकरण व युक्ति भी महत्वपूर्ण है; किन्तु न्याय का माहात्म्य कभी भी कहीं भी कम नहीं है।

संगीदादी-कला व, सुहासिदोव्व अहिणय-धम्मकहा व।
णाणाविहा किड्डा व, जीवणे आवसियो णायो।।1025।।

संगीत आदि कला के समान, सुभाषित के समान, अभिनय के समान, धर्मकथा के समान और नाना प्रकार की क्रीड़ा के समान जीवन में न्याय आवश्यक है।

(छन्द-इन्द्रवज्रा)

पक्खीसु हंसो मणुसेसु चक्की,
देवेसु इंदो सुवदेसु सीलो।
चारूसु कामो रदिहा य थीसुं,
सत्थेसु णायो सुबुहेहि णेयो।।1026।।

जिस प्रकार पक्षियों में हंस, मनुष्यों में चक्रवर्ती, देवों में इन्द्र, व्रतों में शील, सुन्दर जनों में कामदेव, स्त्रियों में रति है, उसी प्रकार बुद्धिमानों को शास्त्रों में न्याय शास्त्र जानना चाहिए।

अन्तिम मङ्गलाचरण

विण्हुं णंदिमित्त-मवराजिद-गोवड्ढण-भद्दबाहू य।
सुदकेवलिणो पुव्वंगधरा पंच-अंगधरा हं।।।।1027।।

णक्खत्तं - जयपालं, पंडुं धुवसेणं कंसाइरियं।
अंगंसधारगाअवि,णिमित्त-णाणिणो सय वंदे।।1028।।(जुम्मं)।

आचार्य विष्णु, नंदीमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन, भद्रबाहु स्वामी सभी श्रुतकेवलियों को, पूर्व व अङ्ग के धारक, पाँच अङ्ग के ज्ञाता श्री नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन व कंसाचार्य अंङ्गांश के ज्ञाता व निमित्तज्ञानियों की मैं सदा वंदना करता हूँ।

विणयगुत्त - माघणंदि - जिणचंद - धरसेणाइरिया सया।
थुवमि णाणदिवायरा, हरिदुं घोर-अण्णाणतमं।।1029।।

ज्ञान दिवाकर आचार्य विनयगुप्त, माघनन्दी, जिनचन्द्र व धरसेनाचार्य की घोर अज्ञान अन्धकार के नाश के लिए मैं सदा स्तुति करता हूँ।

अज्जमंछु-कण्णबिच्छु-गुणहर-जदिउसहाइरिया वंदे।
सीहोव्व णायविविणे, सूरिं सिरीसमंतभद्दं।।1030।।

आचार्य श्री आर्यमंक्षु, कर्णबिच्छु, गुणधर व यतिवृषभाचार्य की वंदना करता हूँ। जो न्याय रूपी वन में सिंह के समान हैं, उन आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी की वंदना करता हूँ।

जाण वयणविज्जुदेण, पज्जलीअ एगंतवाइ-मिच्छं।
ताण णाय-गइंदाण णमो पुज्जवादकलंकाण॥1031॥

जिनके वचन रूपी विद्युत् से एकान्तवाद रूप मिथ्यात्व भस्म हो गया उन न्याय रूपी गजेन्द्र आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी एवं आचार्य अकलङ्कदेव को नमस्कार हो।

सीहोव्व हु वादिसिआलाण देवसेण-माणिक्कणंदी।
विज्जाणंदिं सूरिं, जोदिसेसु चंदोव्व थुवमि॥1032॥

जो वादी रूपी सियारों के लिए सिंह के समान हैं, उन आचार्य देवसेन व आचार्य माणिक्यनन्दी जी मुनिराज की स्तुति करता हूँ, एवं ज्योतिषग्रहों में चन्द्रमा के समान मुनियों में प्रमुख आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज की मैं स्तुति करता हूँ।

चरियचक्कि-माइरियं, संतिसिंधु-जुगपुरिस-विस्सपुज्जं।
आयंससूरिपवरं, वंदे संकिलेस - हाणीइ॥1033॥

आदर्श आचार्य प्रवर, युगपुरुष, विश्वपूज्य, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी मुनिराज को संक्लेशता की हानि के लिए वन्दन करता हूँ।

सुद्धोवजोगिं महातवस्सिं, णिव्विअप्पझाणि-सूरिं।
संवेगि-पायसिंधुं, परमवेरग्गिं णमंसामि॥1034॥

शुद्धोपयोगी, महातपस्वी, निर्विकल्प ध्यानी, संवेगी, परमवैरागी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

अज्झप्प-महाजोगिं, पसंतमुत्ति-मणिलोव्व णिस्संगिं।
पणिंदिय-मण-विजेदुं,जयकित्ति-सूरिं च पणमामि॥1035॥

अध्यात्म महायोगी, प्रशान्तमूर्ति, पवन के समान निःसङ्गी, आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज को पञ्चेन्द्रिय व मन पर विजय प्राप्त करने वाले आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज को नमस्कार करता हूँ।

देसस्स वरभूसणं, चउविहसंघ-महाणायग-सूरिं।
जिणसासणुण्णदियरं, देसभूसणं परियंदामि॥1036॥

जिनशासन उन्नतिकरा, चतुर्विध संघ के महानायक, देश के उत्तम आभूषण स्वरूप आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज को नमस्कार करता हूँ।

सायरोव्व गंभीरं, गुणरयणजुदं सिदपिच्छि - धारगं।
सिद्धंतचक्कि रट्ठ-संत - खवगरायसिरोमणिं॥1037॥

अयलसद्दिट्ठिं गुरुं, मे विदु - समायगिरीसु वडिंसोव्व।
विज्जाणंदं सूरिं, णाणमुत्तिं णमामि णिच्चं॥1038॥ (जुम्मं)

सागर के समान गम्भीर, गुण रूपी रत्नों के धारक, श्वेत पिच्छीधारक, सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्र सन्त, क्षपकराज शिरोमणि, अचल सम्यग्दृष्टि, विद्वत् समाज रूपी पर्वतों में सुदर्शन मेरु के समान, ज्ञानमूर्ति, मेरे गुरु आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

णायविण्णाणि-सुमेरु-सम्मुहम्मि कणोव्व वसुणंदी हं।
णायगंथं लिहेदुं, तप्परो तो वि गुरुकिवाए॥1039॥

न्यायरूपी विशिष्ट ज्ञानियों के सुमेरु के समक्ष मैं आचार्य वसुनन्दी मुनि कण के समान हूँ। तो भी गुरु की कृपा से मैं न्याय ग्रन्थ लिखने के लिए तत्पर हुआ।

महारहिअ-आकिण्णे, खयिदु-मेगंतं णाय-समरथले।
तेसुंलहु-सेणिगोव्व,अणेगंत-करवालेणसह।।1040।।

महारथियों से आकीर्ण न्यायरूपी युद्धभूमि में, उन महारथियों में मैं आचार्य वसुनन्दी, अनेकान्त रूपी तलवार के साथ छोटे सैनिक के समान हूँ।

अस्सिं गंथम्मि तुडी, संभवा किण्णु महाजण-उराला।
संजद-अभेदणाणी, खमंतु मे सोधयंतु इमं।।1041।।

इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ सम्भव हैं किन्तु महापुरुष उदार होते हैं। अभेदज्ञानी संयत मुनिराज मुझे क्षमा करें एवं ग्रन्थ संशोधित करें।

अनुष्टुप् छंद

मम गुरु-पसादेणं, गंथो विरइदो इमो।
लहुधीए विसुद्धीए, आइरिय-वसुणंदिणा।।1042।।

मेरे गुरुवर आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज की कृपा से, मुझ आचार्य वसुनन्दी के द्वारा, लघु बुद्धि से, विशुद्धिपूर्वक यह ''दर्शन परीक्षा'' नामक ग्रन्थ लिखा गया।

प्रशस्ति

सिद्धसिला-परमेट्ठी-अत्थिकाय-परमप्पा-वीरद्धे।
अंककमे दु सेयंस-मोक्खदिणे रक्खाबंधणे।।1043।।

भारदुत्तरपदेसे, बरेलिपंते रामणयरगामे।
अहिखेत्ते पासणाह-केवलणाणमहीइ पुण्णो।।1044।।

सिद्धशिला (1), परमेष्ठी (5), अस्तिकाय (5), परमात्मा (2) अंक क्रम 2551 वीर निर्वाण संवत्, श्री श्रेयांसनाथ भगवान के मोक्ष कल्याणक के दिन, रक्षाबन्धन पर्व पर अर्थात् श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन भारत देश के उत्तरप्रदेश के बरेली प्रान्त के रामनगर गाँव में, श्री पार्श्वनाथ भगवान् की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र में यह 'दर्शन परीक्षा' ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

❀❀❀

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)			
क्र.सं.	नाम	क्र.सं.	नाम
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	6.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
7.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	8.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)	10.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
11.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)	12.	तच्चसारो (तत्त्व सार)
13.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)	14.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
15.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)	16.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)
17.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)	18.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
19.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)	20.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
21.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)	22.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
23.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)	24.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
25.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)	26.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
27.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)	28.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
29.	को विवेगी (विवेकी कौन)	30.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
31.	तित्थियर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	32.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)
33.	धम्मस्स सुत्ति संगहो	34.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
35.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)	36.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
37.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)	40.	लोगुत्तरविट्टी (लोकोत्तर वृत्ति)
41.	समणभावो (श्रमण भाव)	42.	झाणसारो (ध्यानसार)
43.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)	44.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)
45.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	46.	पसमभावो (प्रशम भाव)
47.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)	48.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)
49.	विणयसारो (विनय सार)	50.	तव-सारो (तप सार)
51.	भाव-सारो (भाव सार)	52.	दाण-सारो (दान सार)
53.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	54.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
55.	णाण-सारो (ज्ञान सार)	56.	णीदि-सारो (नीति सार)

57.	आयंस-सिक्खाविही (आदर्श शिक्षाविधि)	58.	दंसण-परिक्खा (दर्शन परीक्षा)
59.	महाणुभावो (महानुभाव)	60.	उववासो (उपवास)
61.	संजम-सारो (संयमसार)	62.	सम्मत्त-सारो (सम्यक्त्व सार)

टीका ग्रंथ

1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य

1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य

1.	इष्टोपदेश (मुक्ति का वाग्दान)	2.	प्रश्नोत्तर रत्नमालिका (बोधि वृक्ष)
3.	सामायिक पाठ (शिवपथ का रथ)	4.	समाधि तंत्र (स्वात्मोपलब्धि)
5.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार (श्रावकधर्म-संहिता)	6.	ज्ञानांकुश (तत्त्व चिंतन के सूत्र)

प्रवचन साहित्य

1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	गुरुत्तं भाग 18	32.	चूको मत
33.	जय बजरंगबली	34.	जीवन का सहारा
35.	ठहरो! ऐसे चलो	36.	तैयारी जीत की
37.	दशामृत	38.	धर्म की महिमा
39.	ना मिटना बुरा है न पिटना	40.	नारी का धवल पक्ष

41.	शायद यही सच है	42.	श्रुत निर्झरी
43.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा	44.	सीप का मोती (महावीर जयंती)
45.	स्वाती की बूँद		

हिंदी गद्य रचना			
1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना			
1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना			
1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दु:खों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान

17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
27.	अभिनव सिद्धचक्र मंत्रार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य			
1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य
1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक

4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		

परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज कृत

जिणवाणी-थुदी

महुरं विसदं पिय-गंभीरं

हिदयरं मिदं सिरिजिणवाणिं।

अणेगंतमयं सिआवायमयं

णिरुवमं समं सिरिजिणवाणिं।

जिणसव्वंगादो णिस्सरिदं

भविचित्तहरं सिरिजिणवाणिं।

बारस-अंगेहिं संजुत्तं

लोएपुज्जं सिरिजिणवाणिं।

कंठादिवचोकारणरहिदं

तयरोयहरं सिरिजिणवाणिं।

जगमंगल्लं जगकल्लाणिं

पणमामि सया सिरिजिणवाणिं।

NOTES